विदुरनीतिः

डॉ. गुन्जेश्वर चौधरी

रा. शा. ८८२ R.

क्र.सं. ६४

॥ श्रीः ॥

चौखम्बा सुरभारती ग्रन्थमाला
२६६

महाभारतान्तर्गता

विदुरनीतिः

'मनोरमा'-हिन्दीव्याख्यासंवलिता

व्याख्याकार

डॉ० गुञ्जेश्वर चौधरी

साहित्याचार्य, एम० ए० (हिन्दी), विद्यावारिधि (पी-एच्० डी०)

वरिष्ठ प्रवक्ता : हरियाणा संस्कृत विद्यापीठ

बघौला, पलवल, फरीदाबाद

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन

वा रा ण सी

प्रकाशक

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन

(भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के प्रकाशक तथा वितरक)

के० ३७/११७, गोपालमन्दिर लेन

पो० बा० नं० ११२९, वाराणसी २२१००१

दूरभाष : ३३३४३१

सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन

पुनर्मुद्रित संस्करण 2003 ई.

मूल्य ७५-००

अन्य प्राप्तिस्थान

चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान

३८ यू. ए., बंगलो रोड, जवाहरनगर

पो० बा० नं० २११३

दिल्ली ११०००७

दूरभाष : २३६३९१

NEPAL SANSKRIT UNIVERSITY
पुस्तकालय
ACC 30068
30078

*

प्रधान वितरक

चौखम्बा विद्याभवन

चौक (बनारस स्टेट बैंक भवन के पीछे)

पो० बा० नं० १०६९, वाराणसी २२१००१

दूरभाष : ३२०४०४

मुद्रक

फूल प्रिण्टर्स

वाराणसी

प्राक्कथन

प्राचीन भारतीय संस्कृति का मूलाधार वेद हैं और वैदिक संस्कृति में आचार ही प्रथम धर्म है (आचारः प्रथमो धर्मः)। सज्जनों का जो आचार है, वही सदाचार कहा जाता है। इसका वास्तविक स्वरूप मन्वादि स्मृतियों में वर्णित है। यथा—

> 'यस्मिन् देशे य आचारः पारम्पर्यक्रमागतः ।
> वर्णानां सान्तरालानां स सदाचार उच्यते' ॥

इससे यह भी स्पष्ट होता है कि जिस देश अथवा प्रदेश में आप्त जनों के द्वारा आचरित जैसा भी आचार-व्यवहार है, वही वास्तविक सदाचार है। इसी सदाचार को पुष्ट करने के लिए नीतिशास्त्रों का उदय हुआ। धर्मनीति, राजनीति और दण्डनीति इसी के परिणत फल हैं। इन तीनों का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। बिना धर्मनीति की राजनीति अधूरी है निष्प्राण है। यह कहना अविवेकपूर्ण है कि राजनीति में धर्म का कोई स्थान नहीं है। वस्तुतः धर्म-नियन्त्रित राजनीति ही श्रेयस्कर है। हाँ 'नहि सत्यात् परो धर्मः' 'अहिंसा परमो धर्मः' यही धर्म का वीजमन्त्र है। इन्हीं से युक्त होना चाहिए।

हम जब संस्कृत-साहित्य के इतिहास का आलोडन करते हैं तो उसकी कृतियों काव्य-नाटकादि ग्रन्थों में नीति-विषयक सूक्तियों की बहुलता प्राप्त होती है। महाभारतकार की तो स्पष्ट घोषणा है कि 'यन्नेहास्ति न तत्क्वचित्' अर्थात् जो यहाँ नहीं है, वह कहीं नहीं है। महाकवि कालिदास के काव्य-नाटकों में, भारवि एवं माघ के महाकाव्यों में शायद ही कोई श्लोक नीति रहित हो। इन नीतियों में सदाचार की प्रधानता है, जिनसे धर्म और दर्शन दोनों प्रभावित हैं। इतना ही नहीं इन महाकवियों ने अपनी सरस वाणियों के द्वारा सामाजिक सद्भाव की स्थापना एवं मैत्री भावना का उदय कर महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। वैसे तो संस्कृत, पाली और प्राकृत वाङ्मय में जैसा कि ऊपर कहा गया है, छिटपुट सूक्तियों के द्वारा नीतियों का निर्वचन हुआ है, किन्तु पुस्तकाकार रूप में 'चाणक्य-शतक' प्रथम नीति-ग्रन्थ है, जिसमें ३४० श्लोक गुम्फित हैं। इसके प्रणेता सुप्रसिद्ध अर्थशास्त्री कौटिल्य चाणक्य या विष्णुगुप्त ही हैं। इन्हीं के राजनीतिसमुच्चय और वृद्धचाणक्य ये दो ग्रन्थ भी उपलब्ध होते हैं। इसी क्रम में बौद्धों का 'धम्मपद' भी नीतियों का आकर है।

छठी शताब्दी में मदुरा निवासी 'सुन्दर' की 'नीतिद्विषष्टिका' की रचना हुई। इसी समय में बौद्धमनीषी 'शान्तिदेव' ने बोधिचर्यावतार, शिक्षासमुच्चय, सूत्रसमुच्चय नामक नीति संवलित ग्रन्थ लिखे।

इसी प्रकार आचार्य भर्तृहरि के शतकत्रय प्रसिद्ध ही हैं, जिनमें नीति-शतक तो नीतिविद्या में 'गागर में सागर' ही है।

अद्वैत-वेदान्त के प्रवक्ता जगद्गुरु श्रीमदाद्यशङ्कराचार्य ने परमार्थ नीति का 'मोहमुद्गर' में प्रतिपादन किया। इसी प्रकार अनेक कवियों एवं आचार्यों ने नीति-ग्रन्थों के क्रमिक विकास के रूप में विविध ग्रन्थों की रचना की, जिनमें श्रीदामोदर कृत कुट्टनीमत, शम्भलीमत; जैनाचार्य अमितगति विरचित मुग्धोपदेश; बिल्हण रचित शान्तिशतक, वेदान्तदेशिक की सुभाषितनीति घा द्विवेदी की नीतिमञ्जरी तथा सोलहवीं शती के यशस्वी और प्रतिनिधि साहित्यकार पण्डितराज जगन्नाथ का भामिनीविलास और सत्रहवीं शती के नीलकण्ठदीक्षित कृत 'कलिविडम्बन' नीति विषय के उज्ज्वल रत्न हैं।

विदुरनीति महाभारत का सर्वमान्य सार्वदेशिक नीतिसर्वस्व है। इसके अनेक संस्करण होने पर भी डॉ० चौधरी का यह प्रयास विद्वानों एवं सर्व-साधारण पाठकों के लिए उपादेय है। इसमें नाना नीति-ग्रन्थों एवं काव्य-साहित्य के साथ जो तुलनात्मक समीक्षा की गयी है, विशेष प्रयोजनीय बातें लिखी गयी हैं, यही इसकी विशेषता है। नीतियों को आचार-संहिता के रूप में बदलने की प्रेरणा है।

आशा है प्रस्तुत संस्करण विज्ञ पाठकों एवं सामान्य अध्येताओं के लिए उपयोगी सिद्ध है—ऐसी मेरी दृढ धारणा है। शुभं भूयात्।

मञ्जनि-मातृ-स्मृति भवन, चकौती
ज्येष्ठी-सोमवती अमावास्या,
सं० २०५२ वै०

विद्वद्वशंवदः
डॉ० नरेश झा

भूमिका

धर्मे ह्यर्थे च कामे च मोक्षे च भरतर्षभ।
यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत्क्वचित् ।।

(महाभारत)

महाभारत भारतीय संस्कृति का सर्वस्व एवं संस्कृत साहित्य का विश्वकोष है। एक लाख श्लोकों में महर्षि वेदव्यास द्वारा विरचित यह एक जाज्वल्यमान रत्नस्वरूप है। इसमें कौरव-पाण्डवों के भीषण युद्ध के वर्णन के साथ ही भारतवर्ष के सर्वस्व नष्ट होने का भीषण एवं विस्तृत कथा वर्णित है। संस्कृत वाङ्मय का अजस्र स्रोत तथा उसका उपजीव्य आधारस्तम्भ भी है। इसकी विशेषता इससे अधिक और क्या हो सकती है कि 'जो यहाँ वर्णित है वही सर्वत्र है और जो यहाँ नहीं है, वह कहीं नहीं है'। इस महत्त्व को ख्यापित करने के लिए यह पर्याप्त आधार स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर हो रहा है।

इसी विश्वकोष महाभारत के उद्योग पर्व के अन्तर्गत प्रजागर पर्व से लिया गया अमूल्यरत्नस्वरूप विदुरनीति ग्रन्थ भारतीय संस्कृति की राजनीति से सम्बन्ध रखने वाला अमूल्य, अन्वर्थ, कामद कोष है। जिसे महाभारत में ही महात्मा विदुर ने पुत्रमोह में ग्रस्त जन्मना और कर्मणा अन्ध धृतराष्ट्र को उपदेश दिया था। परन्तु 'मोहान्धा नैव पश्यन्ति' के अनुसार मोहान्ध धृतराष्ट्र ने तद्वत् आचरण किया। जिसके कारण इस भव्य भारतवर्ष का सर्वस्व एक अविवेकी की मोहान्धता के कारण स्वाहा हो गया। यह ग्रन्थरत्न अपने में स्वतः प्रमाण है कि जिस प्रकार उस समय भारतवर्ष की समृद्धता और धन-जन का विनाश हुआ, करीब पाँच हजार वर्ष बीत जाने के बाद भी उसे भुलाया नहीं जा सकता है तथा परम्परा में एक अभिशप्त के रूप में यह ग्रन्थरत्न देखा जाने लगा। साथ ही एक सद्गृहस्थ इसे अपने घर में रखना भी उचित नहीं समझता। इसका एकमात्र कारण धृतराष्ट्र की कुण्ठा और मोहान्धता ही कहा जा सकता है। वास्तव में 'धृतं राष्ट्रं येन सः धृतराष्ट्रः' यह व्युत्पत्ति भी इसी ओर इंगित कर रही है।

वैसे तो धृतराष्ट्र विदुर का बड़ा भाई था, लेकिन विचार और ज्ञानगरिमा में दोनों में आकाश-पाताल का अन्तर था। महात्मा विदुर भगवद्भक्त, धर्मपरायण, कर्त्तव्याकर्त्तव्य का विचार करने वाला युगद्रष्टा और नीति-उपदेशक था; वहीं धृतराष्ट्र स्वार्थपरायण, मोहान्ध, कुण्ठाग्रस्त, भाग्य के भरोसे चलने वाला, जन्मना और कर्मणा वास्तविक रूप से अन्धा था। वह अपने क्षुद्र-स्वार्थ में कुलवृद्ध, नीतिपरायण, प्रजापालक और वंशोद्धारक राजा के कर्त्तव्य को भी भूल गया। हठी, अन्यायी दुर्योधन के द्वारा पाण्डवों के प्रति किये गये

अन्यायों और अत्याचारों को मूक दर्शक बनकर उनका समर्थन करता रहा। उसे प्रबोधन के बाद भी होश नहीं आया। सर्वत्र सशक्त के स्थान पर स्वतः निर्बल अशक्तता का परिचय दिया। उसने पुत्र को देखा, परिवार को नहीं। उसने केवल अपने पुत्रों की ही बात की, राष्ट्र और समाज की नहीं। उसने अपने गुरुजनों और इष्टजनों की भी अनदेखी की। सदा कायर की भांति अपने लिए बिलखता रहा, अपने आपको कोशता रहा, कभी लोककल्याण की मङ्गल कामना नहीं की। अतः उसे अन्त तक पश्चात्ताप और विवशता के अतिरिक्त कुछ भी हाथ नहीं लगा।

विदुरनीति की अवतारणा में महात्मा विदुर को नहीं भुलाया जा सकता। महात्मा विदुर के रूप में माण्डव्य ऋषि के शाप से स्वयं धर्मराज पृथिवी पर दासीपुत्र के रूप में अवतरित हुए। ये व्यास के क्षेत्रज्ञ पुत्र थे, जिसे महारानी सत्यवती ने अपनी वंश-परम्परा को आगे चलाने के लिए चित्रवीर्य और विचित्रवीर्य के आकस्मिक काल-कवलित हो जाने के बाद प्रयास किया था। पितामह भीष्म ने अपने भाई के लिए काशीराज की दो कन्याएँ अम्बिका और अम्बालिका को हर कर दोनों भाई चित्रवीर्य और विचित्रवीर्य से विवाह करवा दिया। लेकिन आकस्मिक निधन के कारण कोई सन्तान नहीं हो सकी। भीष्म से प्रार्थना की, लेकिन अपनी प्रतिज्ञा के कारण भीष्म कहलाने वाले देवव्रत कहाँ मानते ? अन्त में उन्होंने अपने ही पुत्र व्यास का स्मरण किया। उस समय व्यास के विकट रूप साधने के कारण अम्बिका ने आँखें बन्द कर लीं, अतः अन्धा पुत्र धृतराष्ट्र पैदा हुआ। अम्बालिका भी उस रूप के सामने पीली पड़ गयी, अतः दूसरा पुत्र पाण्डु हुआ। इसके बाद सत्यवती ने अम्बिका की दासी को भेजा। वह हँसती, इठलाती और खेलती हुई व्यास के पास गयी, जिसके कारण विदुरजी पैदा हुए। यही इनका संक्षिप्त इतिहास है।

विदुर जन्मना दासीपुत्र हो सकते हैं, लेकिन कर्मणा कर्मयोगी और धर्मपरायण थे। दासीपुत्र होने के कारण भले ही उन्हें राज्य का भार नहीं सौंपा गया, लेकिन उन्होंने सदा राज्य का हितचिन्तन ही किया। उनका मत सदा एक युगद्रष्टा का-सा रहा। कृष्ण ने अपने अवतार और शक्तिमान् शक्ति होने के कारण जैसा कहा वैसा ही कर्म किया तथा इसके लिए जो बाधक हुआ उसका समूल विनाश कर दिया। लेकिन महात्मा विदुर वैसा नहीं कर पाये, परन्तु अपनी वाणी को सदा जागरूक रखा, राज्य का कभी मोह नहीं किया, जिससे उन्होंने उपेक्षा की घूंट को भी पिया और सतत न्याय के पक्ष में ही प्रयास कियां। फल की इच्छा किये बिना इस कर्मयोगी का प्रयास सफल नहीं हुआ, इससे इन्हें कभी दोषी नहीं बनाया जा सकता। कर्मयोगी विदुर अपने कर्मों से सबके लिए आदर के पात्र बने रहे। इनके इन सार्वभौम गुणों के परिणामस्वरूप भावी इतिहास सदा नतमस्तक रहेगा।

इसमें सन्देह नहीं कि विदुरनीति महाभारत का ही अंश है। उद्योग पर्व के ३३ से ४० अध्याय तक का यह आठ अध्याय विदुरनीति के नाम से ही जाना जाता है। इसकी अवतारणा इस प्रकार समझनी चाहिए। दुर्योधन ने पाण्डवों के ऊपर द्यूतक्रीडा, वनवास, लाक्षागृहनिवास तथा लाक्षागृहदाह, भीम को मारने के लिए विषदान, द्रौपदी का राज्यसभा में प्रवेश, केशाकर्षण तथा न जाने कितने धन-जन पर अत्याचार किया, लेकिन पाण्डव पितृविहीनता और धर्मपरायणता के कारण विधि की परवशता के कारण सदा सहते रहे। कभी अनिष्ट और प्रतिकार की बात तक नहीं सोची, परन्तु आधे राज्य की बात दूतों के द्वारा की। उसने पहले विराटनरेश के पुरोहित को भेजा, लेकिन दुर्योधन ने उसे नहीं माना। धृतराष्ट्र ने सञ्जय को युधिष्ठिर के पास भेजा। सञ्जय ने सविस्तर बात की, पाण्डवों में युद्ध की प्रवृत्ति नहीं है, लेकिन युधिष्ठिर सन्देश के रूप में अपना दायांश माँगते हैं। इस बीच भगवान् श्रीकृष्ण युद्ध से विरत करने का प्रयास करते हैं तथा युद्ध और सन्धि दोनों की बात करते हैं। इस कर्त्तव्याकर्तव्य का विचार धृतराष्ट्र पर ही छोड़ते हैं। संजय का समाचार धृतराष्ट्र स्वयं सुनकर अगले दिन राज्यसभा में सुनाने के लिए आदेश देते हैं। इस बीच दूत के द्वारा रात्रि में विदुर को बुलाते हैं तथा विदुर आकर धृतराष्ट्र के साथ जो वार्तालाप करते हैं एवं प्रश्नोत्तर का यह प्रसंग विदुरनीति के रूप में प्रसिद्ध है।

विदुरनीति महाभारत का एक देदीप्यमान अमूल्य रत्न है, जिसमें व्यवहार, नीति, सदाचार, धर्म, सुख-दुःख प्राप्ति के साधन, त्याज्य और ग्राह्य गुणों तथा कर्मों का निर्णय, त्याग की महिमा, न्याय का स्वरूप, सत्य, परोपकार, क्षमा, अहिंसा, मित्र के लक्षण, कृतघ्न की दुर्दशा, निर्लोभिता आदि का विशद वर्णन करते हुए राजधर्म का सुन्दर निरूपण किया गया है। यह पुस्तक अपठित, विद्वान्, मूर्ख, तरुण, वृद्ध, बालक, स्त्री-पुरुष, शासक, प्रजा, धनी, गरीब, विद्यार्थी, शिक्षक, सेवाव्रती और युद्ध तथा सुखी जीवन-निर्वाह चाहने वाले प्रत्येक व्यक्ति के लिए समान उपयोगी है।

महात्मा विदुर ने चिन्तित एवं विचलित धृतराष्ट्र के प्रति उनके कर्त्तव्य का बड़े ही मार्मिक व सारगर्भित शब्दों में उपदेश दिया है। प्रसङ्गवश उन्होंने पण्डित एवं मूढ का लक्षण, बुद्धि का स्वरूप एवं महत्त्व, सत्य, धर्म, क्षमा, विद्या और अहिंसा की प्रशंसा, वाणी का सदुपयोग, जीवलोक के सुख-दुःख, राजा के कर्त्तव्य, विजितेन्द्रिय की गरिमा, सदाचार की महत्ता, संघशक्ति की प्रशंसा, श्रेष्ठ आचारसंहिता एवं विद्यार्थी के लक्षण तथा कर्त्तव्याकर्त्तव्य का सुन्दर विचार प्रस्तुत किया है। इसका प्रत्येक श्लोक मानव को कल्याण के लिए उन्मुख तथा प्रवृत्त करता हुआ दीख रहा है।

अपि च—इसका प्रधान विषय राजधर्म का निरूपण है। राजा को

अल्पमति, दीर्घसूत्री, शीघ्रता और अविवेकपूर्ण निर्णय नहीं लेना चाहिए। उसे स्त्री-विषयक आसक्ति, जुआ, शिकार, मद्यपान, वाणी की कठोरता, धन का दुरुपयोग करने वाली बातों का परित्याग कर देना चाहिए। राजा काम-क्रोध का त्याग करने वाला, विशेषज्ञ, शास्त्रज्ञ, कर्मनिष्ठ, सत्पात्र में धन देने वाला और शत्रुओं के साथ यथोचित व्यवहार करने वाला होता है। उसका सर्वत्र सम्मान होता है। राजा को स्थिति, लाभ-हानि, कोश तथा दण्ड आदि की मात्रा को जानना परम आवश्यक है। इसके बिना राज्य स्थिर नहीं रह सकता। उच्छृङ्खलता राजा की स्थिरता में सबसे बड़ा बाधक है। राजा को वृक्ष के पके फल के समान ही प्रजा से कर लेना चाहिए। जो कच्चे फलों को तोड़ता है वह फलों के रसों को तो प्राप्त नहीं करता, वृक्षों का भी नाश कर देता है। राजा आय-व्यय का सुदृढ निश्चय करके विनियोग हेतु सुयोग्य सहायकों का संग्रह करे। राजदूतों की नियुक्ति में पूर्ण सावधानी और योग्यता का परीक्षण करना चाहिए। अविश्वसनीय व्यक्ति का कभी विश्वास नहीं करना चाहिए। विश्वस्त पर भी अत्यन्त विश्वास नहीं करना चाहिए, क्योंकि विश्वास से भय उत्पन्न होता है, जो मूल का भी विनाश कर देता है—

'न विश्वसेदविश्वस्ते विश्वस्ते नातिविश्वसेत्।
विश्वासाद् भयमुत्पन्नं मूलान्यपि निकृन्तति' ॥ (विदु० ६।९)

व्यावहारिक दशा में यह वचन कितना सटीक उतरता है, इसे एक व्यवहारविद् ही जान सकता है।

राजनीति के अतिरिक्त धर्म और सदाचार का प्रतिपादक यह ग्रन्थरत्न विदुरनीति कल्याणकारी समाज का सदा हितचिन्तन करता है। अतः अपना भला चाहने वाला--निद्रा, तन्द्रा, भय, क्रोध, आलस्य, अकर्मण्यता और दीर्घसूत्रता को छोड़ दे तथा सत्य, दान, अनसूया, क्षमा और धैर्य—इन गुणों का सदा संग्रह करे। इन थोड़े से शब्दों में नीतिकार ने मनुष्य के लिए गागर में सागर भरने वाले कथन का दिग्दर्शन कराया है।

धर्ममूलक प्रवृत्ति वाले लोगों को लक्ष्मी न कभी छोड़ती है और न वह कभी कम होती है—'धर्ममूलां श्रियं प्राप्य न जहाति न हीयते' (२।३१)। धर्म की रक्षा सत्य से और सत्य ही सब कुछ है, इस प्रकार का व्यावहारिक ज्ञान-मूलक विचार सबके सामने उपस्थित करता है। 'सदाचारः प्रथमो धर्मः' का उल्लेख करते हुए मानव को धर्म में प्रवृत्त करने के लिए आचार के कई प्रभेद बताकर उनका आचरण करने के लिए आग्रह किया है। क्योंकि धन, कुल, यश इत्यादि आते-जाते रहते हैं, लेकिन 'आचारहीनं न पुनन्ति वेदाः' 'यस्तु क्रियावान् पुरुषः स विद्वान्' इस विषय पर गम्भीर आग्रह पाठकों के सामने उपस्थित किया है।

अपरञ्च—विदुरनीति भारतीय संस्कृति और मानवता का मानक एवं

प्रतिपादक ग्रन्थ है। भारतीय संस्कृति की सभी विशेषताएँ इसमें समाहित हैं। भारतीय संस्कृति मानवता का नामान्तर है। जीवन-मूल्यों को सुदृढ़ करने वाले अनेक विचार अनमोल मोती के समान सर्वत्र बिखरे हुए दिखायी देते हैं। 'जिन खोजा तिन पाइयाँ गहरे पानी पैठ' के कथनानुसार इन अनमोल रत्नों का चयन इसके गम्भीर अध्ययन से ही सम्भव हो सकता है।

साहित्यिक गरिमा की दृष्टि से विदुरनीति अपनी खास विशेषता रखता है। भाषा की सरलता, भावुकता, प्रसादगुणों का लालित्य, कान्तासम्मितोपदेश एवं सरल स्वाभाविक अलङ्कारों की छटा से सहृदयों के हृदय को बलात् वशीभूत करता है। उपमा की सुन्दरता देखते ही बनती है—

'यथा मधु समादत्ते रक्षन् पुष्पाणि षट्पदः।
तद्वदर्थान् मनुष्येभ्य आदद्यादविहिंसया'॥ (विदु० २।१७)

इसी प्रकार रूपक, एकावली, अन्योन्य, व्यतिरेक इत्यादि अलङ्कारों की सुषमा सर्वत्र दिखायी देती है।

अर्थगाम्भीर्य भी विदुरनीति में सर्वत्र दिखायी देता है। छोटे-छोटे अनुष्टुप् छन्दों में पारिभाषिक शब्दों का समूह एवं अर्थगुरुता से परिपूर्ण श्लोक की छटा देखते ही बनती है।

इस प्रकार विदुरनीति एक नीतिशास्त्र ही नहीं, अपितु भारतीय संस्कृति का प्रतिपादक धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष प्राप्ति का साधक, साहित्यिक अवदानों से भरा हुआ एक अमूल्य भारतीय परम्परा का लेखा-जोखा रखने वाला मानक ग्रन्थरत्न है।

नीतिशास्त्र का दूसरा नाम धर्मशास्त्र है। वैदिक विचारधारा के अनुसार धर्म शब्द प्रधानरूप से कर्त्तव्य का बोधक है। अतः धर्मशास्त्र और कर्त्तव्यशास्त्र परस्पर पर्याय हैं। धर्मशास्त्र में उन सब विषयों का संविधान दिया गया है, जिसकी पूर्ति करना मानव मात्र के जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त समाज, देश, राष्ट्र-परराष्ट्र के सम्बन्ध में कर्त्तव्याकर्त्तव्य का विवेचन प्रस्तुत करता है।

धर्मशास्त्रकारों ने मानव-समाज को गुण-कर्म-स्वभाव के अनुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चार विभागों में बाँटकर उनके कर्त्तव्यों का विधान किया है। तदनुसार राज्य एवं उससे सम्बद्ध कर्तव्य प्रधानतया क्षत्रिय से सम्बन्ध रखता है। इसलिए धर्मशास्त्रकारों ने धर्मशास्त्रों में राजधर्म अथवा राजनीति का विस्तार से वर्णन किया है। इसके प्राचीनतम आचार्य स्वायम्भुव मनु ने अपने शिष्यों को यह उपदेश दिया था। उनमें वर्तमान 'मनुस्मृति' भृगु-प्रवचन मानव मात्र के प्राचीनतम संविधान का निदर्शक ग्रन्थ है। नारद प्रवचन में केवल राजनीति का ही वर्णन मिलता है।

धर्मशास्त्रों के द्वारा प्रोक्त सामान्य मानव-संविधान के अन्तर्गत राजनीति-विषयक संविधान का अनेक अर्थशास्त्रकारों ने पृथक् रूप से बड़े विस्तारपूर्वक

प्रवचन किया है। भारतीय वाङ्मय में 'अर्थशास्त्र' शब्द राजनीतिबोधक है, न कि वर्तमान में प्रसिद्ध केवल अर्थ=धन और सम्पत्ति का बोधक धन-विज्ञान। वर्तमान में अर्थशास्त्र के नाम से कहा जाने वाला अंश भी प्राचीन विस्तृत विषय वाले अर्थशास्त्र का ही एक भाग है।

भारतवर्ष में अर्थशास्त्र के रूप में राजनीतिशास्त्र के प्रवचन की परम्परा अतिप्राचीन है। महाभारत के शान्ति पर्व के अध्याय सत्तावन में ब्रह्मा, शंकर (विशालाक्ष), इन्द्र (बाहुदन्ती-पुत्र=बाहुदन्त), बृहस्पति (देवगुरु), उशना (शुक्राचार्य) इत्यादि के नाम मिलते हैं। इनमें अर्वाचीन आचार्य नन्दवंश का समूल नाश करने वाला, मौर्यवंश के संस्थापक चणक के पुत्र कौटिल्य-गोत्रोत्पन्न चाणक्य (विष्णुगुप्त) का नाम अति प्रसिद्ध है। इन्होंने पूर्ववर्ती आचार्यों के मतों के संग्रह के आधार पर अर्थशास्त्र की रचना की है। इस अर्थशास्त्र में मनु, बृहस्पति, उशना, भारद्वाज, विशालाक्ष, पराशर, पिशुन (नारद), कौणपदन्त (भीष्म), वातव्याधि (उद्धव), बाहुदन्ती-पुत्र इन्द्र एवं अन्य आचार्यों के मतों का उल्लेख मिलता है।

प्राचीनता की दृष्टि से कौटिल्य-अर्थशास्त्र के अतिरिक्त शुक्रनीतिसार नामक ग्रन्थ भी मिलता है। नीतिसार शब्द के प्रयोग से विदित होता है कि वह शुक्राचार्य प्रोक्त अर्थशास्त्र का ही संक्षिप्त रूप है।

इसी प्रकार कामन्दक विरचित अर्थशास्त्र-विषयक कामन्दकीय नीतिसार नामक संक्षिप्त ग्रन्थ उपलब्ध होता है। अर्वाचीन नीतिग्रन्थों में कामन्दक-नीतिसार, सोमदेव विरचित नीतिवाक्यामृत, धारेश्वर भोजकृत युक्तिकल्पतरु, चण्डेश्वर कृत नीतिरत्नाकर एवं नीतिप्रकाशिका आदि ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं। महाभारत में भी विदुरनीति के अतिरिक्त आचार्य कणिक के नीतिशास्त्र का भी उल्लेख मिलता है।

इन सबसे विदुरनीति अपने में निराला है। इसमें आठ अध्याय हैं, जिसके प्रत्येक अध्याय में विभिन्न विषयों के विषय में विस्तारपूर्वक समास व्यास-वृत्ति से वर्णित हैं। जिनका दिग्दर्शन मात्र कराया जाता है—

प्रथम अध्याय में—संजय के वाक्य से उद्विग्न धृतराष्ट्र द्वारा द्वारपाल के माध्यम से विदुर को बुलाना, विदुर का आना तथा द्वारपाल के द्वारा अन्तःपुर में धृतराष्ट्र को सन्देश भेजना। इसके बाद धृतराष्ट्र ने कहा कि तुमसे धर्मानुकूल वचन सुनना चाहता हूँ। इस पर विदुर ने प्रथम उपदेश दिया—पण्डित और मूर्ख का लक्षण, एक से दस तक प्रत्येक संख्या के ऊपर विविध उपदेश, असुरेन्द्रगीत का इतिहास और राजधर्म का उपदेश वर्णित है।

द्वितीय अध्याय में—धृतराष्ट्र का पुनः प्रश्न तथा इसी प्रसंग में कर्त्तव्या-कर्त्तव्य के विवेचन से सम्बन्धित प्रश्न हैं, जिसके बाद महात्मा विदुर ने सर्व-साधारणोपयोगी सुन्दर नीति-विवेचन किया है।

तृतीय अध्याय में—धृतराष्ट्र का धर्मार्थ सम्बन्धी पुनः प्रश्न। इस पर विदुर द्वारा केशिनी, विरोचन और सुधन्वा के संवाद के रूप में इतिहास का कथन, भूमि के लिए असत्य बोलने का फल, मद्यपानादि निषेध साक्ष्य, अयोग्य पुरुषों का निर्देश, ब्रह्महत्या के समान पापियों की गणना तथा सामान्य नीति-विषयक उपदेश वर्णित हैं।

चतुर्थ अध्याय में—विदुर द्वारा आत्रेय और साध्यों के संवादरूप इतिहास, धृतराष्ट्र के कथनानुसार महाकुलों के लक्षण तथा इसके दूषित कर्मों का निर्देश, हितकारी वचनों का उपदेश, धृतराष्ट्र की उद्विग्नता हटाने के लिए प्रश्न तथा इससे सम्बन्धित विदुर की नीति का उपदेश वर्णित है।

पञ्चम अध्याय में—विदुर के द्वारा सत्रह प्रकार के मूर्खों की गणना, योग्य और व्यवहार धर्म, रूप आदि नाश के कारण, धृतराष्ट्र के आयु-विषयक प्रश्न, आयुनाशक कारणों का विदुर द्वारा उपदेश तथा नीति-विषयक प्रसङ्गों का वर्णन है।

षष्ठ अध्याय में—वृद्धों का सत्कार, सत्कार के अयोग्य व्यक्ति, बेचने एवं न बेचने योग्य वस्तुओं का निर्देश, भिक्षुक-लक्षण, तापस-लक्षण एवं राजनीति का उपदेश सामान्यतया वर्णित हैं।

सप्तम अध्याय में—भाग्यवादी धृतराष्ट्र का प्रश्न, असामयिक विषयों की निन्दा, प्रिय-अप्रिय, क्षय-वृद्धि की विवेचना, दुर्योधन के प्रति धृतराष्ट्र का मोह, नीचों का संग त्याज्य, ज्ञाति-विग्रह से दोष एवं सामान्य नीति का उपदेश हैं।

अष्टम अध्याय में—विद्यार्थियों के सात दोष, आशादि के द्वारा धृत्यादि का नाश होना, घर में नित्य रखने योग्य पदार्थ, वैराग्यपरक वचन, धृति आदि से इन्द्रिय-जय एवं चारों वर्णों का धर्म-विवेचन इस अध्याय में वर्णित हैं।

इस प्रकार विदुरनीति के वर्णित विषयों का सारांश समझना चाहिए।

इस विदुरनीति की (शब्दार्थ, अर्थ एवं विशेष) व्याख्या लिखने की प्रेरणा चाणक्यनीति के प्रकाशन के बाद ही मुझमें जागृत हुई। क्योंकि इस ग्रन्थ की व्याख्या के बाद गुरुजनों एवं इष्टमित्रों के द्वारा बहुत से उत्साह-वर्धक प्रेरणास्रोतमूलक आशीर्वचन मिलें, जिनसे उत्साहित होकर चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन के अन्यतम व्यवस्थापक नवनीतदासजी की प्रेरणा से इसे लिखने की प्रवृत्ति हुई। यद्यपि इसकी व्याख्या शीघ्र ही पूर्ण हो जानी चाहिए थी, परन्तु संस्थागत छात्रों की आकांक्षाओं को ध्यान में रखने के कारण इसमें अधिक समय नहीं दे सका। जिसके कारण शीघ्र कार्य का समापन नहीं हो सका। परीक्षा समीप आने के कारण छात्र अपने स्वाध्याय में लग गये, सावकाश होने पर यह मनोरमा व्याख्या पूर्ण हुई।

इस व्याख्या की पूर्णता के लिए डॉ० नरेश झा पूर्व प्राचार्य, आदर्श रामी

चन्द्रावती श्यामा (संस्कृत) महाविद्यालय का हार्दिक सहयोग कभी नहीं भुलाया जा सकता। सारस्वत साधना में अनवरत लगे हुए इस मनीषी ने अपना अधिकांश काल काशीवास एवं छात्रों के हितचिन्तन में ही बिताया। सेवा-निवृत्त हो जाने के बाद भी अनके ग्रन्थों का सम्पादन, प्रणयन एवं सारस्वत सृजन को छोड़कर कभी कोई सांसारिक प्रपञ्च सामने रखा ही नहीं। चाणक्य-नीतिदर्पण का सम्पादन तथा विदुरनीति की व्याख्या में भी ये सतत प्रेरणा-स्रोत बने रहे। अतः विदुरनीति की यह कृति मैं उनके करकमल में अर्पित कर रहा हूँ।

साथ ही विज्ञजनों से मेरा नम्र निवेदन है कि—इस मनोरमा व्याख्या में जो विशेषता है, वह तो जाने-अनजाने गुरुजनों एवं विज्ञजनों के आशीर्वाद का ही परिणत परिणाम है। परन्तु जहाँ कोई उक्त-अनुक्त-द्विरुक्तिजन्य विच्छृङ्खल-ताएँ दिखाई देती हों, वे मानवसहज दोष एवं—

गच्छतः स्खलनं क्वापि भवत्येव प्रमादतः।
हसन्ति दुर्जनास्तत्र समादधति सज्जनाः॥

के आधार पर गुणग्राही नीरक्षीरविवेकी दोषज्ञ विद्वज्जन अपनी सहज कृपा से समुचित समाधान देकर अनुगृहीत करेंगे। इसी आशा एवं विश्वास के साथ—

३१३, हाउसिंग बोर्ड कालोनी
पलवल
रामनवमी
विक्रम संवत् २०५२

विद्वच्चरणचञ्चरीक
डॉ० गुञ्जेश्वर चौधरी

॥ श्रीः ॥

विदुरनीतिः

'मनोरमा'-हिन्दीव्याख्यासंवलिता

प्रथमोऽध्यायः

वैशम्पायन उवाच—

द्वाःस्थं प्राह महाप्राज्ञो धृतराष्ट्रो महीपतिः।
विदुरं द्रष्टुमिच्छामि तमिहानय मा चिरम् ॥ १ ॥

शब्दार्थ—द्वाःस्थम् = द्वार पर रहनेवाले, द्वारपाल को, महाप्राज्ञः = महान् बुद्धि वाले, महीपतिः = पृथ्वी के राजा, धृतराष्ट्रः = धृतराष्ट्र, दुर्योधन के पिता, प्राह = कहा, विदुरं = धर्मराज के अवतार एवं मांडव्य ऋषि के शाप से सौ वर्ष तक शूद्र योनि में अवतरित होनेवाले, धृतराष्ट्र के भाई को, द्रष्टुमिच्छामि = देखना चाहता हूँ। तम् = विदुर को, मा चिरम् = शीघ्र ही, इह = यहाँ पर, आनय = लाओ।

हिन्दी—वैशम्पायनजी महाराज जनमेजय से कहते हैं कि हे महाराज! आज्ञा प्राप्त कर संजय के चले जाने के बाद महान् विद्वान् राजा धृतराष्ट्र ने द्वारपाल से कहा कि मैं विदुर को देखना चाहता हूँ। उन्हें शीघ्र ही यहाँ पर ले आओ।

विशेष—विदुरनीति का सम्बन्ध महाभारत से है। महाभारत में दुर्योधन के द्वारा द्यूतक्रीड़ा, वनवास, लाक्षागृह-निवास एवं अनेक दुर्नीतियों के बाद भी पाण्डवों के प्रताप को जाननेवाले धृतराष्ट्र संजय को उनके पास भेजते हैं तथा वहाँ से आकर संजय पाण्डव का युद्ध में प्रवृत्त न होने का सन्देश देते हैं, परन्तु पूर्ववत् व्यवस्था के लिए इन्द्रप्रस्थादि को लौटाने की बात करते हैं। युधिष्ठिर की ओर से भगवान् श्रीकृष्ण संजय से कहते हैं कि कुन्तीपुत्र धृतराष्ट्र की सेवा करने लिए उद्यत हैं तथा युद्ध करने के लिए भी तैयार हैं। इस समय धृतराष्ट्र का जो उचित कर्त्तव्य हो, उसका आचरण करें।

चिन्ता एवं विचार में मग्न धृतराष्ट्र द्वारपाल को विदुर को बुलाने के लिए भेजते हैं। विदुरजी धृतराष्ट्र को विविध प्रकार से पाण्डवों को न्याय एवं नीति की बातें बतलाते हैं। प्रस्तुत प्रसंग ही विदुरनीति की पूर्व कथावस्तु है, जिस पर आगे के महनीय नीतिसिद्धान्त का दिग्दर्शन होता है।

प्रहितो धृतराष्ट्रेण दूतः क्षत्तारमब्रवीत्।
ईश्वरस्त्वां महाराजो महाप्राज्ञ दिदृक्षति ॥ २ ॥

शब्दार्थ—धृतराष्ट्रेण = धृतराष्ट्र के द्वारा, प्रहितः = भेजा गया, दूतः = दूत, क्षत्तारम् = विदुर को, अब्रवीत् = कहा, महाप्राज्ञ = बुद्धिमान्, ईश्वरः = प्रभु, महा-राजः = महाराज धृतराष्ट्र, त्वम् = तुमको, दिदृक्षति = देखना चाहते हैं।

हिन्दी—धृतराष्ट्र के द्वारा भेजा गया दूत ने विदुर से कहा कि—बुद्धिमान्! हमारे स्वामी महाराज धृतराष्ट्र आपसे मिलना चाहते हैं।

विशेष—विदुरजी दासी के पुत्र हैं। मांडव्य ऋषि के शाप के परिणामस्वरूप धर्मराज शूद्र के रूप में महर्षि व्यास के तेज से उत्पन्न हुए थे। ये अत्यन्त बुद्धिमान् एवं तत्त्ववेत्ता थे। इसलिए पांडु एवं धृतराष्ट्र को नीति की बातें बतलाते थे।

एवमुक्तस्तु विदुरः प्राप्य राजनिवेशनम्।
अब्रवीत् धृतराष्ट्राय द्वाःस्थं मां प्रतिवेदय ॥ ३ ॥

शब्दार्थ—एवमुक्तस्तु = इस प्रकार कहने के बाद, विदुरः = विदुर, राजनिवे-शनम् = राजमहल में, प्राप्य = आकर, अब्रवीत् = कहा, द्वाःस्थं = द्वारपाल ने, धृत-राष्ट्राय = धृतराष्ट्र को, माम् = मेरा, प्रतिवेदय = आने की सूचना दे दो।

हिन्दी—दूत के वचन को सुनकर विदुर ने राजमहल में आकर द्वारपाल से कहा कि द्वारपाल! मेरे आने की सूचना धृतराष्ट्र को दे दो।

विशेष—राजतन्त्र के समय राजाओं के आदेशों का पालन होता था। अतः विदुर जी राजा धृतराष्ट्र के आदेश को प्राप्त कर तत्काल राजभवन में उपस्थित हुए।

द्वाःस्थ उवाच—

विदुरोऽयमनुप्राप्तो राजेन्द्र! तव शासनात्।
द्रष्टुमिच्छति ते पादौ किं करोतु प्रशाधि माम् ॥ ४ ॥

शब्दार्थ—राजेन्द्र! = हे धृतराष्ट्र, तव शासनात् = आपके आदेशानुसार, अयं = यह, विदुरः = विदुर, अनुप्राप्तः = आया है, ते = आपके, पादौ = चरणों को, द्रष्टु-मिच्छति = देखना चाहता है, माम् = मुझे, प्रशाधि = आज्ञा दीजिए, किं करोतु = क्या करें।

हिन्दी—द्वारपाल ने कहा—हे महाराज धृतराष्ट्र! आपकी आज्ञा से विदुरजी यहाँ आये हैं तथा वे आपको देखना चाहते हैं, मुझे आज्ञा दीजिए कि मैं क्या करूँ।

विशेष—द्वारपाल राजमहल में केवल राजाओं की आज्ञाओं को पालन करता था। उनकी आज्ञा के बिना आवश्यक एवं महत्त्वपूर्ण कार्य भी रुक जाते थे, अतः विदुर के आने की अनुमति द्वारपाल राजा से ग्रहण करता है।

धृतराष्ट्र उवाच—

प्रवेशय महाप्राज्ञं विदुरं दीर्घदर्शिनम्।
अहं हि विदुरस्यास्य नाकल्पो जातु दर्शने ॥ ५ ॥

शब्दार्थ—महाप्राज्ञम् = महान्, प्रतिभावान्, दीर्घदर्शिनम् = दूरदर्शी, विदुरम् = विदुर को, प्रवेशय = प्रवेश कराओ, अहम् = मैं धृतराष्ट्र, अस्य = इस, विदुरस्य =

विदुर के साथ, जातु = कभी भी, दर्शने = दर्शन में, न + अकल्पः = असमर्थ नहीं हैं, अर्थात् विदुर का दर्शन हमेशा करना चाहते हैं।

हिन्दी — धृतराष्ट्र ने कहा — महान् विद्वान् दीर्घदर्शी विदुर को अन्दर प्रवेश कराओ। मुझे विदुर से मिलने में कभी भी कोई बाधा नहीं है। अर्थात् मैं उनसे हमेशा मिलना चाहता हूँ।

विशेष — धृतराष्ट्र विदुर की प्रतिभा और विद्वत्ता को जानते थे। अतः हमेशा नीति एवं व्यवहार की बातों में सलाह किया करते थे।

द्वाःस्थ उवाच —

प्रविशान्तःपुरं क्षत्तर्महाराजस्य धीमतः।
न हि ते दर्शनेऽकल्पो जातु राजाऽब्रवीद्धि माम् ॥ ६ ॥

शब्दार्थ — हे क्षत्तः = विदुरजी, धीमतः = बुद्धिमान्, महाराजस्य = महाराज के, अन्तःपुरम् = राजमहल में, प्रविश = प्रवेश करें। राजा = धृतराष्ट्र, माम् = मुझे, हि = निश्चय ही, अब्रवीत् = कहा है, ते = आपके, दर्शने = दर्शन में, जातु = कभी भी, अकल्पः = बाधा, न हि = नहीं है।

हिन्दी — धृतराष्ट्र की आज्ञा पाकर द्वारपाल ने विदुर से कहा कि — हे विदुर ! आप बुद्धिमान् महाराज धृतराष्ट्र के अन्तःपुर में प्रवेश कीजिए। राजा धृतराष्ट्र ने मुझसे कहा है कि आपसे मिलने में कभी भी बाधा नहीं हैं।

वैशम्पायन उवाच —

ततः प्रविश्य विदुरो धृतराष्ट्रनिवेशनम्।
अब्रवीत् प्राञ्जलिर्वाक्यं चिन्तमा[या] नं नराधिपम् ॥ ७ ॥

शब्दार्थ — ततः = उसके बाद (धृतराष्ट्र के कथन को विदुरजी को निवेदन करने के बाद) विदुरः = विदुर, धृतराष्ट्रनिवेशनम् = धृतराष्ट्र के राजमहल में, प्रविश्य = प्रवेश करके, चिन्तमानम् = चिन्ता करते हुए, नराधिपम् = राजा धृतराष्ट्र को, प्राञ्जलिः = हाथ जोड़कर, वाक्यम् = वाक्य को, अब्रवीत् = कहा।

हिन्दी — वैशम्पायनजी ने जनमेजय से कहा — इसके बाद विदुर धृतराष्ट्र के भवन में प्रवेश करके चिन्ता करते हुए राजा से हाथ जोड़कर बोले।

विदुरोऽहं महाप्राज्ञ सम्प्राप्तस्तव शासनात्।
यदि किञ्चन कर्त्तव्यमयमस्मि प्रशाधि माम् ॥ ८ ॥

शब्दार्थ — महाप्राज्ञ = महान् विद्वान्, अहम् = मैं, विदुरः = विदुर हूँ, तव शासनात् = आपके आदेशानुसार, सम्प्राप्तः = आया} हूँ। यदि = यदि, किञ्चन = कोई, कर्त्तव्यम् = करने योग्य कार्य हो, अयमस्मि = मैं आपके सामने हूँ, माम् = मुझे, प्रशाधि = आज्ञा दीजिए।

हिन्दी — महाप्राज्ञ ! मैं विदुर हूँ, आपके आदेशानुसार यहाँ आया हूँ। यदि

मेरे द्वारा करणीय कोई कार्य हो, तो उसे मुझे आज्ञा दीजिए, मैं उस कार्य को करने के लिए तैयार हूँ ।

धृतराष्ट्र उवाच—

सञ्जयो विदुर ! प्राज्ञो गर्हयित्वा च मां गतः ।
अजातशत्रोः श्वो वाक्यं सभामध्ये च वक्ष्यति ॥ ९ ॥

शब्दार्थ—विदुर ! = हे विदुर ! प्राज्ञः = बुद्धिमान्, सञ्जयः = सञ्जय, माम् = मुझे, गर्हयित्वा = निन्दा करके, गतः = गया, सः = वह, अजातशत्रोः = युधिष्ठिर के, वाक्यम् = वाक्य को, श्वः = कल, सभामध्ये = सभा में, वक्ष्यति = कहेगा ।

हिन्दी—धृतराष्ट्र ने कहा—हे विदुर ! बुद्धिमान् सञ्जय आया था, मुझे नाना प्रकार से समझा कर (भला-बुरा कहकर) गया है । कल सभा के बीच में युधिष्ठिर के सन्देश को सुनायेगा ।

विशेष—अजातशत्रु युधिष्ठिर का ही नाम है । "न जातः शत्रुः यस्य" जिसका कोई शत्रु न हो, वस्तुतः युधिष्ठिर का कोई शत्रु नहीं था । दुर्योधन भीमादि से डाह करता था । परन्तु युधिष्ठिर के प्रति उनकी भावना गलत न थी । केवल उसे राजा नहीं बनाने के लिए उद्योग करता था । युधिष्ठिर का सन्देश लेकर सञ्जय राजा धृतराष्ट्र के पास आया है तथा सम्पूर्ण वृत्तियों को बतलाया है । इस परिस्थिति में राजा धृतराष्ट्र भविष्य के विषय में चिन्तित होकर नीतिमान् विदुर से इस विषय में विचार करता है ।

तस्याद्य कुरुवीरस्य न विज्ञातं वचो मया ।
तन्मे दहति गात्राणि तदकार्षीत् प्रजागरम् ॥ १० ॥

शब्दार्थ—अद्य = आज, तस्य = उसका, कुरुवीरस्य = कुरुवीर युधिष्ठिर का, मया = मेरे द्वारा, वचः = वचन को, न विज्ञातम् = नहीं जान सका, तत् = इसलिए, मे = मेरे, गात्राणि = शरीरों को, दहति = जलाता है, तत् = इसलिए, प्रजागरम् = जागनेवाले, अकार्षीत् = बना दिया है ।

हिन्दी—आज तक उस कुरुवीर युधिष्ठिर की बातों को मैं समझ नहीं पा रहा हूँ । जिससे मेरा शरीर जल रहा है तथा नींद भी नहीं आ रही है, अतः जा रहा हूँ ।

विशेष—यहाँ पर प्रजागर शब्द धृतराष्ट्र के लिए बहुत उपयुक्त है । व्यक्ति मोहादि कारणों से चिन्तित होता है तथा उसे नींद नहीं आती है । धृतराष्ट्र भी दुर्योधन के मोहपास में फँसा था । अतः मोहादि के कारण उसे नींद नहीं आती थी । अतः जागता रहता था ।

जाग्रतो दह्यमानस्य श्रेयो यदनुपश्यसि ।
तद् ब्रूहि त्वं हिं नस्तात धर्मार्थकुशलो ह्यसि ॥ ११ ॥

शब्दार्थ—तात ! = हे भाई विदुर, जाग्रतः = जागने से, दह्यमानस्य = जलते हुए, यत् = जो, श्रेयः = कल्याण, अनुपश्यसि = देखते हो, तद् = उसे, नः = मुझे (हमारे बीच), ब्रूहि = कहो, त्वम् = तुम, धर्मार्थकुशलः = धर्म और अर्थ के विषय में जानकार, हि = निश्चय ही, असि = हो।

हिन्दी—हे तात विदुरजी ! चिन्ता से जलकर जागते हुए मेरे लिए जो कल्याण-कारक हो उसे कहो, क्योंकि तुम धर्मार्थ में कुशल हो।

विशेष—जानकार मनुष्य ही सच्चे मार्ग का उपदेश दे सकता है। जिसे स्वयं जानकारी नहीं है वह "स्वयं नष्टः परान् नाशयति" अर्थात् स्वयं नष्ट होता ही है दूसरों को भी नाश कर देता है। अतः विदुर को विशेष धर्मार्थ कुशल बतलाया है। साथ ही जिससे कुछ ग्रहण करने की इच्छा होती है उसकी प्रशंसा करना भी लोकाचार एवं शिष्टजनों का व्यवहार है।

यतः प्राप्तः सञ्जयः पाण्डवेभ्यो न मे यथावन्मनसः प्रशान्तिः।
सर्वेन्द्रियाण्यप्रकृतिं गतानि किं वक्ष्यतीत्येव मेऽद्य प्रचिन्ता ॥ १२ ॥

शब्दार्थ—यतः = जिस दिन से, सञ्जयः = सञ्जय, पाण्डवेभ्यः = पाण्डवों के नजदीक से, प्राप्तः = आया है, मे = मेरे, मनसः = मन में, यथावत् = यथोचित प्रकार से, प्रशान्तिः = शान्ति, न = नहीं है। सर्वेन्द्रियाणि = सभी इन्द्रियाँ, अप्रकृतिम् = अस्वस्थता को, गतानि = प्राप्त हो गयी हैं, किम् = क्या, वक्ष्यति = कहेगा, इत्येव = यही, मे = मुझे, अद्य = आज, प्रचिन्ता = विशेष रूप से चिन्ता हो रही है।

हिन्दी—जब से सञ्जय पाण्डवों के पास से आया है, उस समय से मेरे मन में शान्ति नहीं है। सभी इन्द्रियाँ विकल हो रही हैं, क्या कहेगा यही चिन्ता खाई जा रही है।

विशेष—चिन्ता की ज्वाला बड़ी तीव्र होती है, मनुष्य चिन्ता में पड़ जाने के बाद केवल छटपटाहट ही अनुभव करता है। अतः इससे बचने के लिए हमेशा उपाय करता है।

विदुर उवाच—

अभियुक्तं बलवता दुर्बलं हीनसाधनम्।
हृतस्वं कामिनं चोरमाविशन्ति प्रजागराः ॥ १३ ॥

शब्दार्थ—दुर्बलम् = कमजोर, हीनसाधनम् = साधनरहित, बलवता = बलवान् के साथ, अभियुक्तम् = विरोध करने के बाद, हृतः = अपहृत होने से, कामिनम् = कामी, चोरम् = चोर, आविशन्ति = प्रवेश करता है, प्रजागराः = जागने का रोग लगता है।

हिन्दी—विदुर ने कहा—जिस मनुष्य को कमजोर और हीनसाधन रहने के बाद बलवान् के साथ विरोध हो जाता है तथा जिसका सब कुछ ले लिया गया है ऐसा मनुष्य और चोर को जागने का रोग लग जाता है।

विशेष—बलवान् के साथ विरोध होने के बाद कमजोर को भय के कारण नींद नहीं आती है। चौर-कार्य रात्रि में ही सम्भव है, कामी लोग रात्रि में जागते हैं। इन कारणों से रात्रि-जागरण स्वाभाविक हो जाता है।

कच्चिदेतैर्महादोषैर्न स्पृष्टोऽसि नराधिप।
कच्चिच्च परवित्तेषु गृध्यन्न परितप्यसे ॥ १४ ॥

शब्दार्थ—हे नराधिप !=हे महाराज धृतराष्ट्र ! कच्चित्=कहीं पर, एतैः=पूर्व में गिनाये गये, महादोषैः=महान् दोषों से, न पृष्टः असि=सम्पर्क में नहीं आये हो, कच्चित्=कहीं, च=और, परवित्तेषु=दूसरों के धनों में, गृध्यन् न=ग्रहण करने में लोभ तो नहीं हो गया है, परितप्यसे=दुःखी हो रहे हो।

हिन्दी—हे महाराज धृतराष्ट्र ! आप कहीं पर महादोषों के सम्पर्क में तो नहीं आ गये हैं, कहीं किसी दूसरों के धन में लोभ तो नहीं हो गया है, जिसके कारण दुःखी हो रहे हैं।

विशेष—मनुष्य लोभ एवं मोह में फँसकर विवेक खो बैठता है। विवेक नष्ट हो जाने के बाद सांसारिक कारणों से दुःख होना स्वाभाविक है। इसलिए विदुरजी धृतराष्ट्र से उपर्युक्त दोषों के विषय में संकेत करते हैं।

धृतराष्ट्र उवाच—

श्रोतुमिच्छामि ते धर्म्यं परं नैःश्रेयसं वचः।
अस्मिन् राजर्षिवंशे हि त्वमेकः प्राज्ञसम्मतः ॥ १५ ॥

शब्दार्थ—ते=तुमसे, धर्म्यम्=धर्म सम्बन्धी, नैःश्रेयसम्=परम कल्याणकारक, वचः=वचनों को, श्रोतुमिच्छामि=सुनना चाहता हूँ। हि=क्योंकि, अस्मिन्=इस, राजर्षिवंशे=राजर्षि वंश में, त्वम्=आप, एकः=अकेले, प्राज्ञसम्मतः=सर्वसम्मत विद्वान् हैं, विद्वानों के द्वारा भी मान्य है।

हिन्दी—धृतराष्ट्र ने कहा—हे विदुर ! मैं आपके द्वारा धर्मयुक्त एवं कल्याणकारक वचनों को सुनना चाहता हूँ। साथ ही इस राजर्षि वंश में एकमात्र आप ही सर्व-सम्मत विद्वान् हैं अथवा विद्वानों के द्वारा भी मान्य हैं।

विशेष—किसी वस्तु या व्यक्ति की मान्यता तब होती है, जब उसे विद्वान् भी स्वीकार कर लेते हैं। विद्वानों के परितोष के बिना कार्य या व्यक्ति की सफलता नहीं मानी जाती है। इस दृष्टि से विदुर पण्डितों में भी पण्डित हैं। उनका वचन सर्वग्राह्य है। अतः धृतराष्ट्र कल्याणकारक वचन उनसे सुनना चाहते हैं।

विदुर उवाच—

राजलक्षणसम्पन्नस्त्रैलोक्यस्याधिपो भवेत्।
प्रेष्यस्ते प्रेषितश्चैव धृतराष्ट्र ! युधिष्ठिरः ॥ १६ ॥

शब्दार्थ—धृतराष्ट्र !=राजन्, राजलक्षणसम्पन्नः=राजचिह्नों से युक्त, युधि-

ष्ठिरः = कुन्ती के ज्येष्ठ पुत्र, त्रैलोक्यस्याधिपः = तीनों लोकों के राजा, भवेत् = हो सकते हैं, ते = आपके, प्रेष्यः = आज्ञाकारी, प्रेषितः = वन भेज दिये।

हिन्दी—विदुर ने कहा—हे राजन् धृतराष्ट्र! सभी प्रकार के राजचिह्नों से युक्त युधिष्ठिर तीनों लोकों के राजा हो सकते हैं तथा आपके आज्ञाकारी भी हैं, लेकिन आपने उन्हें वन में भेज दिया।

विशेष—उपयुक्त मनुष्य का उचित स्थान पर विनियोग होने पर मणिकाञ्चन योग बनता है। लेकिन यदि इसका विनियोग नहीं होता है तो बात बिगड़ जाती है। यही परिस्थिति धृतराष्ट्र के सामने है।

विपरीततरश्च त्वं भागधेये न सम्मतः।
अर्चिषां प्रक्षयाच्चैव धर्मात्मा धर्मकोविदः॥ १७॥

शब्दार्थ—त्वम् = तुम, विपरीततरश्च = विपरीत हो गये, भागधेये = भाग के अनुसार उनका अंश देने में, न सम्मतः = सहमत नहीं हुए, अर्चिषाम् = आँखों की ज्योति, प्रक्षयात् = नष्ट होने से, धर्मात्मा = धर्मप्राण, धर्मकोविदः = धर्म-विषयक जानकारी रहने के बाद, उचितानुचित का विचार नहीं कर पा रहे हैं।

हिन्दी—विदुर ने कहा—हे महाराज धृतराष्ट्र! धर्मात्मा और धर्म को जानते हुए भी आँखों में रोशनी नहीं होने के कारण आप युधिष्ठिर के विपरीत हो गये तथा उनका भागधेय अंश देने के लिए सम्मत नहीं हुए।

विशेष—दुर्योधन के अत्याचार को राजा होने के कारण धृतराष्ट्र उचितानुचित का विचार कर सकते थे। लेकिन पुत्रमोह तथा राज्यलोभ ने नेत्रहीन को ज्ञानहीन् भी बना दिया। जिसके कारण अनेक अत्याचार हुए और महाभारत जैसा युद्ध भी, जिसमें भारत का सर्वस्व स्वाहा हो गया।

आनृशंस्यादनुक्रोशाद् धर्मात् सत्यात् पराक्रमात्।
गुरुत्वात् त्वयि सम्प्रेक्ष्य बहून् क्लेशांस्तितिक्षते॥ १८॥

शब्दार्थ—आनृशंस्यात् = कठोरता के अभाव से, अर्थात् कोमलतायुक्त, अनुक्रोशात् = दयाभाव से युक्त, धर्मात् = धर्म से, सत्यात् = सत्य से, पराक्रमात् = पराक्रम से, त्वयि = आपमें, गुरुत्वात् = गुरुभाव को रखने से, सम्प्रेक्ष्य = देखते हुए, बहून् = बहुत अधिक, क्लेशान् = क्लेशों को, तितिक्षते = सहन करते हैं।

हिन्दी—युधिष्ठिर में क्रूरता का अभाव, दयालुता, धर्म, सत्य, पराक्रम इत्यादि गुणों से युक्त आपमें गुरुभाव को रखने के बाद भी बहुत अधिक क्लेशों को सहन कर रहे हैं।

विशेष—यद्यपि विदुर का सम्बन्ध युधिष्ठिर और दुर्योधन के प्रति समान ही था, परन्तु "भवन्ति भव्येषु हि पक्षपाताः" के अनुसार सद्गुणों के प्रति झुकाव होना स्वाभाविक था। युधिष्ठिर के प्रति हो रहे अत्याचारों को धृतराष्ट्र को स्मरण दिला कर उचितानुचित बतलाते हैं।

दुर्योधने सौबले च कर्णे दुःशासने तथा।
एतेष्वैश्वर्यमाधाय कथं त्वं भूतिमिच्छसि ॥ १९ ॥

शब्दार्थ—दुर्योधने = दुर्योधन के ऊपर, सौबले = शकुनि पर, कर्णे = कर्ण के ऊपर, च = और, दुःशासने = दुःशासन के ऊपर, तथा = और, एतेषु = इन सभी के ऊपर, ऐश्वर्यमाधाय = राजकार्य को सौंपकर, त्वम् = आप, कथम् = किस प्रकार, भूतिमिच्छसि = उन्नति चाहते हैं ?

हिन्दी—आप दुर्योधन, शकुनि, कर्ण और दुःशासन के ऊपर राज्यकार्य सौंपकर राज्य की उन्नति कैसे चाहते हैं ?

विशेष—योग्य के उपर उत्तरदायित्व रहने पर उन्नति की कामना कर सकते हैं। अयोग्य तो सदा अयोग्यता की बातें सोचकर अपना और दूसरों का अकल्याण ही सोचता है।

पण्डितस्य लक्षणानि—

आत्मज्ञानं समारम्भस्तितिक्षा धर्मनित्यता।
यमर्था नापकर्षन्ति स वै पण्डित उच्यते ॥ २० ॥

शब्दार्थ—आत्मज्ञानम् = आत्मज्ञान, समारम्भः = उद्यम, तितिक्षा = सहन करने की क्षमता, धर्मनित्यता = धर्म में स्थिरता, यम् = जिसको, अर्थाः = पुरुषार्थ, न अपकर्षन्ति = च्युत नहीं करते हैं, स वै = वही, पण्डित उच्यते = पण्डित माने जाते हैं।

हिन्दी—आत्मज्ञानानुसार उद्योग करना, दुःख सहन करने की क्षमता रखना, धर्मानुराग के साथ जिसे पुरुषार्थ (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) च्युत नहीं करते हैं, वही पण्डित माने जाते हैं।

विशेष—मनुष्य में कुछ विशिष्ट एवं कुछ सामान्य गुण होते हैं। पुरुषार्थ के वशीभूत होना स्वाभाविक है, लेकिन उत्तम मनुष्य उसे छोड़ देते हैं तथा आत्मज्ञान के अनुकूल कार्य एवं दुःख सहने की क्षमता के साथ धर्मानुराग रखते हैं।

निषेवते प्रशस्तानि निन्दितानि न सेवते।
अनास्तिकः श्रद्दधान एतत् पण्डितलक्षणम् ॥ २१ ॥

शब्दार्थ—प्रशस्तानि = प्रशस्त गुणों को, निषेवते = सेवन करता है। निन्दितानि = निन्दित कर्मों को, न सेवते = सेवन नहीं करता है, उससे दूर रहता है, अनास्तिकः = आस्तिक होना, श्रद्दधानः = श्रद्धा रखना, एतत् = ये सब, पण्डितलक्षणम् = पण्डित के लक्षण हैं।

हिन्दी—अच्छे गुणों का सेवन करता है, अशुभ कर्मों का त्याग करता है, आस्तिकता और श्रद्धावान् होना—ये सब पण्डितों के लक्षण हैं।

विशेष—सदसद्विवेक करनेवाले पण्डित कहलाते हैं। यह किन-किन वस्तुओं में होनी चाहिए, इसके विषय में वर्णन किया गया है।

क्रोधो हर्षश्च दर्पश्च ह्रीः स्तम्भो मान्यमानिता ।
यमर्थान् नापकर्षन्ति स वै पण्डित उच्यते ॥ २२ ॥

शब्दार्थ—क्रोधः = क्रोध, हर्षः = हर्ष, दर्पः = अहंकार, ह्री = लज्जा, स्तम्भः = उद्धतता, मान्यमानिता = अपने को मान्य समझने की भावना, यम्=जिसके, अर्थान् = पुरुषार्थ, नापकर्षन्ति = आकर्षण नहीं करते, सः = वह, वै = निश्चय ही, पण्डितः = विद्वान्, उच्यते = कहा जाता है ।

हिन्दी—क्रोध, हर्ष, अहंकार, लज्जा, उद्दण्डता तथा अपने को मान्य समझने की भावना—ये पुरुषार्थ जिसको आकर्षित नहीं करते हैं, वही मनुष्य पण्डित कहलाता है ।

विशेष—कुछ विशिष्ट वस्तु संसार में प्राप्त करने के बाद अहंकार का आना स्वाभाविक है । लेकिन उसमें रहने के बाद भी जो व्यक्ति उसके अधीन नहीं होते हैं, वही पण्डित कहलाते हैं ।

यस्य कृत्यं न जानन्ति मन्त्रं वा मन्त्रितं परे ।
कृतमेवास्य जानन्ति स वै पण्डित उच्यते ॥ २३ ॥

शब्दार्थ—यस्य = जिसके, कृत्यम् = कर्त्तव्य, मन्त्रम् = गोपनीय बातें, मन्त्रितम् = गोपनीय कार्य को, परे = अन्य लोग, न जानन्ति = नहीं जानते हैं, कृत्यमेव = किए हुए कार्य को ही, अस्य = इसके, जानन्ति = जानते हैं, सः = वह, वै = निश्चय ही, पण्डितः = पण्डित, उच्यते = कहलाता है ।

हिन्दी—अन्य लोग जिसके किये हुए कार्य को, गोपनीय मन्त्र एवं उसके फल को कार्य से पहले नहीं जानते हैं, अपितु कार्य-समाप्ति के बाद ही जानते हैं; वही पण्डित कहलाता है ।

यस्य कृत्यं न विघ्नन्ति शीतमुष्णं भयं रतिः ।
समृद्धिरसमृद्धिर्वा स वै पण्डित उच्यते ॥ २४ ॥

शब्दार्थ—यस्य = जिसका, कृत्यम् = कर्त्तव्य को, शीतम् = ठण्डी, उष्णम् = गर्मी, भयम् = भय, रतिः = प्रेम, न विघ्नन्ति = विघ्न नहीं करते, समृद्धिः = सम्पत्ति के समय, असमृद्धिः = अभाव के समय, वा = अथवा, सः = वह, पण्डितः = विद्वान्, उच्यते = कहलाता है ।

हिन्दी—जिसे सर्दी, गर्मी, भय और रति विघ्न नहीं डालते हैं; समृद्धि और अभाव के समय में कोई अन्तर नहीं होता, उसी को पण्डित कहते हैं ।

विशेष—महान् मनुष्य सभी समय एकरूप में रहते हैं, उसमें कभी किसी अवस्था में विकृति नहीं होती—"सम्पत्तौ च विपत्तौ च महतामेकरूपता" ।

यस्य संसारिणी प्रज्ञा धर्मार्थावनुवर्तते ।
कामादर्थं वृणीते यः स वै पण्डित उच्यते ॥ २५ ॥

शब्दार्थ—यस्य = जिसकी, संसारिणी = सांसारिक, प्रज्ञा = बुद्धि, धर्माथौं = धर्म और अर्थ का, अनुवर्तते = अनुगमन करती है, यः = जो, कामात् = काम को छोड़कर, अर्थम् = पुरुषार्थ को, वृणीते = वरण करता है, सः वै=उसी को, पण्डितः = विद्वान्, उच्यते = कहते हैं।

हिन्दी—जिसकी सांसारिक बुद्धि धर्म और अर्थ का ही अनुगमन करती है, जो काम को छोड़कर धर्मार्थ रूप पुरुषार्थ को ही वरण करता है, वही पण्डित कहलाता है।

यथाशक्ति चिकीर्षन्ति यथाशक्ति च कुर्वते।
न किञ्चिदवमन्यन्ते नराः पण्डितबुद्धयः ॥ २६ ॥

शब्दार्थ—यथाशक्ति = शक्ति के अनुसार, चिकीर्षन्ति = करने की इच्छा करते हैं, यथाशक्ति = शक्ति के अनुसार, कुर्वते = करते हैं। न किञ्चित् = न किसी को, अवमन्यन्ते = अपमान करते हैं, नराः = ऐसे मनुष्य, पण्डितबुद्धयः = पण्डित माने जाते हैं।

हिन्दी—अपनी शक्ति के अनुसार जो कार्य करना चाहते हैं और शक्ति के अनुसार कार्य करते हैं, किसी का भी अपमान नहीं करते हैं, वे पण्डित माने जाते हैं।

क्षिप्रं विजानाति चिरं शृणोति विज्ञाय चार्थं भजते न कामात्।
नासम्पृष्टो व्युपयुङ्क्ते परार्थे तत् प्रज्ञानं प्रथमं पण्डितस्य ॥ २७ ॥

शब्दार्थ—क्षिप्रम् = शीघ्र, विजानाति = समझता है, चिरम् = बहुत काल तक, शृणोति = सुनता है, विज्ञाय = समझकर, च = और, अर्थम् = पुरुषार्थ को, भजते = सेवन करता है, कामात् न=कामना से नहीं, न + असम्पृष्टः = न बिना पूछे, परार्थे = दूसरे के लिए, व्युपयुङ्क्ते = व्यर्थ बातें नहीं करता है, तत् = वह, प्रज्ञानम् = विशेष ज्ञान, प्रथमम् = सर्वप्रथम, पण्डितस्य = पण्डित का लक्षण है।

हिन्दी—पण्डित किसी बात को शीघ्र समझता है, परन्तु देर तक सुनता है, पुरुषार्थ को जानकर सेवन करता है, कामना से नहीं; बिना पूछे हुए कुछ कहता नहीं है, व्यर्थ दूसरे के विषय में बातें नहीं करता है। जिसका इस प्रकार का स्वभाव हो, उसे पण्डित समझना चाहिए।

विशेष—पण्डित आत्मज्ञानी, व्यवहारविद् एवं परमार्थचिन्तक होते हैं। इसलिए व्यर्थ की बातें नहीं करते हैं। लेकिन कर्तव्य की कभी उपेक्षा भी नहीं करते हैं। इस प्रकार के गुणगणसमुदाय से मण्डित पण्डित कहलाते हैं।

नाप्राप्यमभिवाञ्छन्ति नष्टं नेच्छन्ति शोचितुम्।
आपत्सु च न मुह्यन्ति नराः पण्डितबुद्धयः ॥ २८ ॥

शब्दार्थ—अप्राप्यम् = अप्राप्त वस्तु के विषय में, न + अभिवाञ्छन्ति = इच्छा नहीं करते हैं, नष्टम् = नाश के विषय में, शोचितुम् = शोक, न + इच्छन्ति = नहीं

करते हैं। आपत्सु = विपत्ति में, न च = और नहीं, मुह्यन्ति = मोह नहीं करते हैं, नरा: = ऐसे मनुष्य, पण्डितबुद्धय: = पण्डित माने जाते हैं।

हिन्दी — पण्डित लोग अप्राप्त वस्तुओं को प्राप्त करने की इच्छा नहीं करते हैं, नाशवान् वस्तु के प्रति शोक नहीं करते तथा आपत्तिकाल में घबराते नहीं हैं।

विशेष — गीता एवं अन्य दर्शनों के अनुसार क्षणभंगुर संसार में कोई वस्तु सत्य नहीं हैं। अत: असत्य वस्तुओं के लिए इच्छा करना, शोक करना ठीक नहीं है। संकट तो संसार में सबके ऊपर आता ही है, देवताओं को भी नहीं छोड़ता। अत: इन सब वस्तुओं की समीक्षा करके पण्डित लोग किसी भी परिस्थिति में अपनी गंभीरता और शान्ति को नहीं खोते हैं।

निश्चित्य य: प्रक्रमते नान्तर्वसति कर्मण:।
अवन्ध्यकालो वश्यात्मा स वै पण्डित उच्यते ॥ २९ ॥

शब्दार्थ — य: = जो, निश्चित्य = निश्चय करके, प्रक्रमते = कार्य प्रारम्भ करता है, कर्मण: = कर्म के बीच में, न + अन्त:वसति = बीच में प्रारम्भ कर्म को रोकता नहीं है, अवन्ध्यकाल: = समय व्यर्थ नहीं बिताता, वश्यात्मा = आत्मा के अनुसार चलने वाला, आत्मसंयमी, स वै = वही, पण्डित: = विद्वान्, उच्यते = कहलाता है।

हिन्दी — जो किसी कार्य को निश्चय करके प्रारम्भ करता है, आरम्भ हुए कार्य को बीच में नहीं रोकता, समय व्यर्थ न बिताने वाला आत्मसंयमी पण्डित कहलाता है।

विशेष — 'प्रारभ्य उत्तमजना: न परित्यजन्ति'। उत्तम जन किसी कार्य को प्रारम्भ कर छोड़ते नहीं हैं, उस कार्य के समापन के बाद ही रुकते हैं। बीती हुई आयु का एक क्षण भी करोड़ों सुवर्णमुद्राओं के द्वारा वापस नहीं लाया जा सकता, यदि उसे निरर्थक बिता दिया तो जीवन में उससे बड़ी हानि क्या हो सकती है? अत: पण्डित समय व्यर्थ नहीं बिताते हैं।

आर्यकर्मणि रज्यन्ते भूतिकर्माणि कुर्वते।
हितं च नाभ्यसूयन्ति पण्डिता भरतर्षभ ! ॥ ३० ॥

शब्दार्थ—हे भरतर्षभ ! = हे भरतश्रेष्ठ धृतराष्ट्र ! पण्डिता: = पण्डित लोग, आर्यकर्मणि = श्रेष्ठ कर्मों में, रज्यन्ते = अनुराग रखते हैं, भूतिकर्माणि = उन्नति के कार्यों को, कुर्वते = करते हैं, हितम् = हित करने वालों से, न = अभिसूयन्ति = दोष नहीं रखते हैं।

हिन्दी— हे भरतश्रेष्ठ धृतराष्ट्र ! पण्डित लोग श्रेष्ठ कार्यों में अनुराग रखते हैं, उन्नति के कार्य करते हैं, हित करनेवालों में दोष नहीं देखते हैं।

न हृष्यत्यात्मसम्माने नावमानेन तप्यते।
गाङ्गो ह्रद इवाक्षोभ्यो य: स पण्डित उच्यते ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ—आत्मसम्माने = आत्मसम्मान में, न हृष्यति = आनन्दित नहीं होता, अवमानेन = अनादर होने पर, न तप्यते = दु:खी नहीं होता, गाङ्ग: ह्रद: इव = गङ्गा

के झील, मानसरोवर के समान, अक्षोभ्यः = क्षुब्ध न होनेवाला, यः = जो, सः = वह, पण्डितः = पण्डित, उच्यते = कहलाता है ।

हिन्दी—आतमसम्मान होने पर जिसके हृदय में हर्ष नहीं होता और अपमान होने पर कष्ट नहीं होता, गङ्गा के ह्रद, मानसरोवर के समान सदा क्षोभ न रखनेवाला पण्डित कहलाता है ।

तत्त्वज्ञः सर्वभूतानां योगज्ञः सर्वकर्मणाम् ।
उपायज्ञो मनुष्याणां नरः पण्डित उच्यते ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ—सर्वभूतानाम् = सभी भौतिक पदार्थों के, तत्त्वज्ञः = तत्त्व को जाननेवाला, सर्वकर्मणाम् = सभी प्रकार के कर्मों की, योगज्ञः = युक्तियों को जाननेवाला, मनुष्याणाम् = मनुष्यों का, उपायज्ञः = उपाय को जाननेवाला, नरः = मनुष्य, पण्डितः = विद्वान्, उच्यते = कहलाता है ।

हिन्दी—वस्तुतः सभी भौतिक पदार्थों के तत्त्व को जाननेवाला, सभी कर्मों की युक्ति को जाननेवाला तथा सभी मनुष्यों के उपाय को जाननेवाला पण्डित कहलाता है ।

प्रवृत्तवाक् विचित्रकथ ऊहवान् प्रतिभानवान् ।
आशु ग्रन्थस्य वक्ता च यः स पण्डित उच्यते ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ—प्रवृत्तवाक् = धाराप्रवाह के रूप में बोलनेवाला, विचित्रकथः = अलौकिक शैली में कहनेवाला, ऊहवान् = तर्क-वितर्क करनेवाला, प्रतिभानवान् = प्रतिभासम्पन्न, आशु = शीघ्र, ग्रन्थस्य = किसी प्रामाणिक पुस्तक का, वक्ता = कहनेवाला, यः = जो, सः = वह, पण्डितः = विद्वान्, उच्यते = कहलाता है ।

हिन्दी—धाराप्रवाह और अलौकिक शैली में बोलने वाला, प्रतिभासम्पन्न, तर्क-वितर्क करनेवाला तथा शीघ्र ही किसी ग्रन्थ के विषय में बोलनेवाले को पण्डित कहते हैं ।

श्रुतं प्रज्ञानुगं यस्य प्रज्ञा चैव श्रुतानुगा ।
असम्भिन्नार्यमर्यादः पण्डिताख्यां लभेत सः ॥ ३४ ॥

शब्दार्थ—यस्य = जिसकी, श्रुतम् = विद्या या शास्त्र, प्रज्ञानुगम् = बुद्धि का अनुसरण करती है, प्रज्ञा = बुद्धि, श्रुतानुगा = वेदादि शास्त्रों का अनुगमन करनेवाली, असम्भिन्नार्यमर्यादः = महाजनों की मर्यादा का उल्लंघन नहीं करता (असम्भिन्ना आर्यमर्यादा यस्य सः = एतादृशी प्रज्ञा—बहुव्रीहिः), पण्डिताख्याम् = पण्डित-पदवी को, सः = वह, लभेत = प्राप्त करता है ।

हिन्दी—जिसकी विद्या शास्त्रादि बुद्धि का अनुगमन करती है और बुद्धि विद्या का तथा जो बुद्धि महाजनों की मर्यादा का उल्लंघन नहीं करती है, उसे पण्डित की पदवी की प्राप्ति होती है ।

विशेष—पण्डित कोई जाति नहीं, अपितु गुण-गणों का समावेश है । जिसमें इस प्रकार के गुण-गणसमुदायों का समावेश हो जाता है, उसे पण्डित कहते हैं । यद्यपि

जाति का निर्धारण जन्म से होता है, लेकिन उसमें विशेषता उनके विशिष्ट गुणों से ही संभव है। इसलिए गुणों के आधार पर निर्धारण किया जाता है।

मूर्खलक्षणम्—

अश्रुतश्च समुन्नद्धो दरिद्रश्च महामनाः।
अर्थांश्चाकर्मणा प्रेप्सुर्मूढ इत्युच्यते बुधैः॥ ३५॥

शब्दार्थ—अश्रुतः=शास्त्रों को विना पढ़ा हुआ, समुन्नद्धः=अभिमान करनेवाला, दरिद्रः=अभाव में रहनेवाला, गरीव, च=और, महामनाः=अपने को श्रेष्ठ समझनेवाला, अर्थान्=धनों को, अकर्मणा=बिना कर्म किये हुए, प्रेप्सुः=प्राप्त करने वाला, मूढः=मूर्ख, बुधैः=विद्वानों के द्वारा, इति उच्यते=ऐसा कहा जाता है।

हिन्दी—विना शास्त्र पढ़ा हुआ, अभिमान करनेवाला, दरिद्र होने के वाद भी श्रेष्ठजन समझनेवाला, बिना कर्म किये हुए धन की इच्छा रखनेवाले को विद्वान् लोग मूर्ख कहते हैं।

विशेष—नीतिकार पन्द्रह श्लोकों के द्वारा पण्डित के लक्षण बतलाने के बाद सम्प्रति मूर्ख का लक्षण बतलाते हैं। मूर्ख में परस्पर विरुद्ध धर्म पाये जाते हैं। वह पढ़ता नहीं है लेकिन अभिमान बहुत रखता है। वह दरिद्र होता है लेकिन महामना का आचरण करता है। कुछ करता नहीं है लेकिन अधिकाधिक धन चाहता है—ऐसे आचरण करनेवाले को मूर्ख समझना चाहिए।

स्वमर्थं यः परित्यज्य परार्थमनुतिष्ठति।
मिथ्या चरति मित्रार्थे यश्च मूढः स उच्यते॥ ३६॥

शब्दार्थ—यः=जो, स्वमर्थम्=अपने कार्य को, परित्यज्य=छोड़कर, परार्थम्=दूसरे के कार्य को, अनुतिष्ठति=आचरण करता है, यः=जो, मित्रार्थे=मित्र के लिए, मिथ्या चरति=मिथ्याचरण करता है, सः=वह, मूढः=मूर्ख, उच्यते=कहलाता है।

हिन्दी—जो अपने कर्त्तव्य को छोड़कर दूसरे के कार्य को करता है तथा मित्र के लिए मिथ्या आचरण करता है, उसे मूर्ख कहते हैं।

विशेष—मूर्ख अपने कर्मों को झांकता भी नहीं, परन्तु दूसरों के कार्यों में दोष निकालता रहता है तथा मित्रों से विश्वासघात करता है। ऐसे लोग मूर्ख कहलाते हैं।

अकामान् कामयति यः कामयानान् परित्यजेत्।
बलवन्तं च यो द्वेष्टि तमाहुर्मूढचेतसम्॥ ३७॥

शब्दार्थ—अकामान्=न चाहनेवालों को, कामयति=चाहता है, यः=जो, कामयानान्=चाहनेवालों को, परित्यजेत्=छोड़ देता है, बलवन्तम्= बलवानों से, यः=जो, द्वेष्टि=द्वेष करता है, तम्=उसको, मूढचेतसम्=मूर्ख चित्तवाला, आहुः=कहते हैं।

हिन्दी—जो न चाहनेवालों की इच्छा करता है, चाहनेवालों को छोड़ देता है तथा अपने से बड़ों से वैर रखता है, उसे 'मन्दबुद्धिवाला' मूर्ख कहते हैं।

विशेष—जो वर्त्तमान से सन्तुष्ट नहीं तथा भविष्य के लिए चिन्ताकुल है, प्राप्त वस्तुओं में सन्तोष नहीं करता है तथा अप्राप्य के लिए परेशान रहता है और अपनी शक्ति को जाने बिना बलवान् से वैर रखता है; ऐसे परस्पर विरुद्ध धर्मों का आचरण करनेवाला मूर्ख कहलाता है।

अमित्रं कुरुते मित्रं मित्रं द्वेष्टि हिनस्ति च।
कर्म चारभते दुष्टं तमाहुर्मूढचेतसम् ॥ ३८ ॥

शब्दार्थ—अमित्रम्=शत्रु को, मित्रम्=मित्र, कुरुते=बनाता है, मित्रम्=मित्र को, द्वेष्टि=द्वेष करता है, हिनस्ति=दुःख देता है, च=और, दुष्टम्=दुष्ट, कर्म=कर्म को, आरभते=आरम्भ करता है, तम्=उसको, मूढचेतसम्=मूर्ख चित्तवाला, आहुः=कहते हैं।

हिन्दी—जो शत्रु को मित्र बनाता है, मित्र से द्वेष करता है और उसे दुःख देता है तथा दुष्ट कर्मों को प्रारम्भ करता है, उसे मूर्ख कहते हैं।

विशेष—शत्रु कभी मित्र नहीं बन सकता है, यदि वह किसी कारणवश बन भी जाता है तो अवसर आने पर धोखा दे सकता है या अवसर की प्रतीक्षा में रहता है कि इनसे कब प्रतिशोध लिया जाय। अतः शत्रु कभी मित्र बन ही नहीं सकता, मित्रों को अपनी क्रियाओं द्वारा उत्पीड़न करेंगे—ऐसे मनुष्य नीतिकार की दृष्टि में मूर्ख होते हैं।

संसारयति कृत्यानि सर्वत्र विचिकित्सते।
चिरं करोति क्षिप्रार्थे स मूढो भरतर्षभ ॥ ३९ ॥

शब्दार्थ—हे भरतर्षभ !=हे धृतराष्ट्र ! कृत्यानि=कर्मों को, संसारयति=फैलाता है, सर्वत्र=सभी जगह में, विचिकित्सते=सन्देह करता है, क्षिप्रार्थे=शीघ्र करने योग्य कार्य को, चिरं करोति=बहुत समय में करता है, सः=वह, मूढः=मूर्ख है।

हिन्दी—हे धृतराष्ट्र ! जो अपने कर्मों को व्यर्थ फैला देता है, सर्वत्र सन्देह करता है, शीघ्र करने योग्य कार्यों को देर से करता है, वह मूर्ख है।

विशेष—आवश्यक, उचित एवं समय से अपने कर्मों का निर्वाह करना चाहिए। असमय का कोई कार्य अच्छा एवं सुहावना नहीं होता है। ऐसा नहीं करनेवाला उपहास का पात्र होता है।

श्राद्धं पितृभ्यो न ददाति दैवतानि च नार्चति।
सुहृन्मित्रं न लभते तमाहुर्मूढचेतसम् ॥ ४० ॥

शब्दार्थ—पितृभ्यः=पितरों के लिए, श्राद्धम्=श्राद्ध, न ददाति=नहीं देता है, च=और, दैवतानि=देवताओं को, नार्चति=पूजन नहीं करता है, सुहृन्मित्रम्=

प्रिय मित्र, न लभते = नहीं प्राप्त करता है, तम् = उसको, मूढचेतसम् = मूर्ख, आहुः = कहते हैं।

हिन्दी — जो पितरों का श्राद्ध नहीं करता तथा देवताओं का पूजन नहीं करता है, प्रिय एवं हितकारी मित्र को नहीं बनाता है, उसे मूर्ख कहते हैं।

विशेष—मनुष्य के पास तीन प्रकार के ऋण स्वाभाविक रूप से रहते हैं, जिसे क्रमशः देवऋण, पितृऋण एवं ऋषिऋण कहते हैं। देवऋण से उद्धार देवताओं के प्रति पूजन-हवनादि से मिलता है, पितृऋण से उद्धार पितरों के श्राद्ध करने से होता है तथा ऋषिऋण से उद्धार वंशपरम्परा का निर्वाह एवं परस्पर सौमनस्य के निर्माण से होता है। अतः मनुष्य को इन तीनों ऋणों से मुक्त होने के लिए प्रयास करना चाहिए।

अनाहूतः प्रविशति अपृष्टो बहु भाषते।
अविश्वस्ते विश्वसिति मूढचेता नराधमः ॥ ४१ ॥

शब्दार्थ—अनाहूतः = बिना बुलाये, प्रविशति = प्रवेश करता है, अपृष्टः = बिना पूछे, बहु भाषते = बहुत बोलता है, अविश्वस्ते = अविश्वस्त पर, अविश्वसनीय मनुष्य में, विश्वसिति = विश्वास करता है, मूढचेता = मूर्ख बुद्धिवाला, नराधमः = मनुष्य में नीच होता है।

हिन्दी—मूर्ख चित्तवाला नराधम मनुष्य बिना बुलाये प्रवेश करता है, बिना पूछे बहुत बोलता है तथा अविश्वस्त पर विश्वास करता है।

विशेष — 'नापृष्टं कस्यचित् ब्रूयात्' अर्थात् बिना पूछे किसी से नहीं बोलना चाहिए। लेकिन दुष्टों का हृदय एवं व्यवहार इससे भिन्न होता है। उसके पास अपना कोई सिद्धान्त नहीं होता है, दूसरों के कार्य में सदा बाधा करना उसका स्वभाव होता है। अतः उसका कार्य सराहनीय नहीं होता है।

परं क्षिपति दोषेण वर्त्तमानः स्वयं तथा।
यश्च क्रुध्यत्यनीशानः स च मूढतमो नरः ॥ ४२ ॥

शब्दार्थ—दोषेण = दोष से, परम् = दूसरों को, क्षिपति = आक्षेप करता है, यं = स्वयं, तथा = वैसा, वर्तमानः = करता है, यः = जो, अनीशानः = असमर्थ रहते भी, क्रुध्यति = क्रोध करता है, सः = वह, मूढतमः = मूर्खतम, नरः = नर कहा ता है।

हिन्दी — जो स्वयं दोष में रहता है तथा उसी के विषय में दूसरों पर आक्षेप करता तथा असमर्थ रहते हुए भी क्रोध करता है, उस मनुष्य को मूर्खतम कहते हैं।

विशेष — "आचारहीनं न पुनन्ति वेदाः यस्तु क्रियावान् पुरुषः स विद्वान्"। चारहीन को वेद भी पवित्र नहीं कर सकता है, जो आचारवान् है वही विद्वान् अतः अपने आचारों के द्वारा दूसरों को उपदेश देना चाहिए। 'परोपदेशे पाण्डि-त्' वाले सिद्धान्त को नहीं अपनाना चाहिए।

आत्मनो बलमज्ञाय धर्मार्थपरिवर्जितम्।
अलभ्यमिच्छन्नैष्कर्म्यान्मूढबुद्धिरिहोच्यते ॥ ४३ ॥

शब्दार्थ—आत्मनः = अपने, बलम् = बल को, अज्ञाय=नहीं जानते हुए, धर्मार्थ परिवर्जितम् = धर्म-अर्थ से विरुद्ध, नैष्कर्म्यात् = बिना कुछ किये हुए, अलभ्यम् = नहीं प्राप्त करने योग्य वस्तु को, इच्छन् = चाहनेवाला, इह = संसार में, मूढबुद्धिः = मूर्ख, उच्यते = कहा जाता है।

हिन्दी—जो अपनी शक्ति को नहीं जानते हुए धर्म-अर्थ के विरुद्ध तथा अप्रा वस्तु को बिना कर्म किये चाहनेवाला मूर्ख कहलाता है।

विशेष—संसार में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चार प्रकार के पुरुषार्थ होते हैं उन्हें यथाशक्ति प्राप्त करने का प्रयास करना चहिए। लेकिन बिना शक्ति इसं विपरीत आचरण करनेवाला मूर्ख होता है। क्योंकि कर्म के अनुसार फल की इच्छ करना चाहिए। कर्म के अभाव में या यथाशक्ति कर्म के बिना फल चाहनेवाला मू कहलाता है।

अशिष्यं शास्ति यो राजन् यश्च शून्यमुपासते।
कदर्यं भजते यश्च तमाहुर्मूढचेतसम् ॥ ४४ ॥

शब्दार्थ—राजन् ! = हे धृतराष्ट्र ! अशिष्यम् = दीक्षा ग्रहण किये बिना, अन धिकारी, यः = जो, शास्ति = शासन करता है, यश्च = जो, शून्यम् = अमूर्त्त क उपासते = उपासना करता है, यश्च = जो, कदर्यम् = कायरतापूर्ण, भजते = कार्यों करता है, तम् = उसको, मूढचेतसम् = मूढ बुद्धिवाला, आहुः = कहते हैं।

हिन्दी—जो अनधिकारी शिष्य को ज्ञान देता है, अमूर्त्त की उपासना करता तथा कायरतापूर्ण कार्यों को करता है, उसे मूढ चित्तवाला कहते हैं।

विशेष—शिष्य चार प्रकार के होते हैं—आर्त्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी और ज्ञानी इनमें जो किसी प्रकार में नहीं आता हो, उसे उपदेश देना व्यर्थ होता है। ज्ञान त तक न दिया जाय जब तक शिष्यत्व को स्वीकार नहीं करता है।

अर्थं महान्तमासाद्य विद्यामैश्वर्यमेव वा।
विचरत्यसमुन्नद्धो यः स पण्डित उच्यते ॥ ४५ ॥

शब्दार्थ—यः = जो, महान्तम् = अत्यधिक, अर्थम् = धन को, वा = अथव विद्याम् = विद्या को, ऐश्वर्यम् = ऐश्वर्य को, आसाद्य = प्राप्त करके, असमुन्नद्धः = अहंकाररहित होकर, विचरति = विचरण करता है, सः = वह, पण्डित उच्यते = पण्डित कहलाता है।

हिन्दी—जो अत्यधिक धन, विद्या एवं ऐश्वर्य को प्राप्त करके अभिमानर होकर विचरण करता है, वह पण्डित कहलाता है।

विशेष—प्रभुता मिलने के बाद अभिमान होता है—'प्रभुता पाई काहि नाहीं'। लेकिन पण्डित सब कुछ प्राप्त करने के बाद भी निर्लिप्त रहते हैं और कर्त्त बुद्धया व्यवहार का निर्वाह करते हैं। यही इनकी खास विशेषता है।

एकः सम्पन्नमश्नाति वस्ते वासश्च शोभनम्।
योऽसंविभज्य भृत्येभ्यः को नृशंसतरस्ततः॥ ४६॥

शब्दार्थ—यः=जो, भृत्येभ्यः=सेवकों को, असंविभज्य=बिना बाँटे हुए, एकः=अकेला, सम्पन्नम्=स्वादिष्ट भोजन, अश्नाति=खाता है, च=और, वस्ते =धारण करता है, शोभनम्=अच्छा, वासः=वस्त्र, ततः=उससे, नृशंसतरः= क्रूरतर, कः=कौन हो सकता है ?

हिन्दी—जो मनुष्य अपने नौकरों में सुन्दर वस्त्र, स्वादु भोजन को बिना बाँटकर अकेला उपभोग करता है, उससे क्रूरतर कौन हो सकता है ?

विशेष—मनुष्य को चाहिए कि प्राप्त सुन्दर वस्तुओं को परस्पर बाँटकर उपभोग करे। जो केवल अपने लिए कोई कार्य करता है, वह ठीक नहीं करता है। श्रीमद्-भगवद्गीता में कहा गया है—'भुञ्जन्ते ते त्वघं ये पचन्त्यात्मकारणात्'। अर्थात् वह पाप का संग्रह करता है या खाता है, जो अपना भोजन स्वयं पकाकर स्वयमेव ही खा जाता है।

एकः पापानि कुरुते फलं भुङ्क्ते महाजनः।
भोक्तारो विप्रमुच्यन्ते कर्ता दोषेण लिप्यते॥ ४७॥

शब्दार्थ—एकः=अकेला, पापानि=पापों को, कुरुते=करता है, फलम्= फल को, महाजनः=बहुत लोग, जनसमुदाय, भुङ्क्ते=भोग करते हैं, भोक्तारः= उपभोग करने वाले, विप्रमुच्यन्ते=दोषों से दूर हो जाते हैं, कर्त्ता=करने वाला, दोषेण=दोष से, लिप्यते=लिप्त हो जाता है अर्थात् दोषों का भागी बनता है।

हिन्दी—अकेला पाप करता है, लेकिन उसका फल बहुत लोग भोगते हैं। फल-भोग करने वाले दोषमुक्त हो जाते हैं, लेकिन कर्ता दोषों का भागी होता है।

एकं हन्यान्न वा हन्यादिषुर्मुक्तो धनुष्मता।
बुद्धिर्बुद्धिमतोत्सृष्टा हन्याद् राष्ट्रं सराजकम्॥ ४८॥

शब्दार्थ—धनुष्मता=धनुषधारी के द्वारा, मुक्तः=छोड़ा गया, इषुः=बाण, एकम्=एक को, हन्यात्=मारेगा, न वा हन्यात्=नहीं भी मारेगा, बुद्धिमतः= बुद्धिमान् के द्वारा, उत्सृष्टा=सर्जन की हुई, बुद्धिः=बुद्धि, सराज्यकम्=राज्य सहित, राष्ट्रम्=सम्पूर्ण राष्ट्र को, हन्यात्=मार सकती है।

हिन्दी—धनुषधारी के द्वारा छोड़ा गया बाण एक को मारे या न भी मारे, परन्तु एक बुद्धिमान् के द्वारा प्रयोग की गयी बुद्धि राजा सहित सम्पूर्ण राष्ट्र का नाश कर सकती है।

विशेष—'बुद्धिर्यस्य बलं तस्य' अर्थात् बुद्धिबल ही सर्वश्रेष्ठ है। बलवान् का बल एक ही पर घात-प्रतिघात कर सकता है, लेकिन बुद्धिबल का प्रभाव और घात-प्रतिघात शक्ति बहुत भयङ्कर एवं नाशक होती है। जिसे शारीरिक बल वाला नहीं कर सकता, वह बुद्धिबल के प्रभाव से बहुत सरल एवं संभव हो जाता है।

एकया द्वे विनिश्चित्य त्रींश्चतुर्भिर्वशे कुरु।
पञ्च जित्वा विदित्वा षट् सप्त हित्वा सुखी भव ॥ ४९ ॥

शब्दार्थ—एकया=एक बुद्धि से, द्वे=कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य का, विनिश्चित्य=निश्चय करके, चतुर्भिः=चार के द्वारा (साम-दान-दण्ड-भेद के द्वारा), त्रीन्=तीन को (शत्रु, मित्र और उदासीन को), वशे कुरु=वश में करो, पञ्च जित्वा=पाँच को जीतकर (पाँचों इन्द्रियों को वश में करके), षट् विदित्वा=छः को जानकर (राजनीति के सन्धि, विग्रह, यान, आसन, द्वैधीभाव और समाश्रय को जानकर), सप्त हित्वा=सातों को छोड़कर (परस्त्रीगमन, जुआ, शिकार, मद्य, कठोर वचन, दण्ड की कठोरता तथा अन्याय से धन का अर्जन—इन सातों व्यसनों को छोड़कर), सुखी भव=सुख से रहो।

हिन्दी—एक बुद्धि से कर्तव्य और अकर्तव्य का निश्चय करके राजनीति के चार अङ्गों द्वारा शत्रु, मित्र और उदासीन को वश में करो। पाँचों इन्द्रियों को वश में करके राजनीति के छः अङ्गों द्वारा सात प्रकार के व्यसनों को छोड़कर सुखी हो जाओ।

विशेष—इस एक छोटे से श्लोक में नीतिकार ने गागर में सागर भर दिया है। इन मूलमन्त्रों द्वारा जीवन के सुख का साधन प्राप्त हो सकता है। इन सब वस्तुओं की आवश्यकता किसी के जीवन में आ सकती है तथा इनके द्वारा किसी को भी लाभ-हानि हो सकती है। इसलिए इनमें गिनायी गयी वस्तुओं द्वारा किसी का कल्याण हो सकता है।

एकं विषरसो हन्ति शस्त्रेणैकश्च वध्यते।
सराष्ट्रं सप्रजं हन्ति राजानं मन्त्रविप्लवः ॥ ५० ॥

शब्दार्थ—विषरसः=विष या जहर, एकम्=एक को, हन्ति=मारता है, शस्त्रेण=शस्त्र के द्वारा, एकः=एक, वध्यते=मारा जाता है, मन्त्रविप्लवः=मन्त्रणा का प्रसार हो जाना, सराष्ट्रम्=राष्ट्र सहित, सप्रजम्=प्रजा के साथ, राजानम्=राजा को, हन्ति=मारता है।

हिन्दी—जहर खाने से एक ही मरता है, शस्त्र के द्वारा भी एक की हत्या हो सकती है; लेकिन मन्त्रणा का प्रसार हो जाने से सम्पूर्ण राष्ट्र के साथ प्रजा एवं राजा का नाश हो जाता है।

विशेष—'बुद्धिर्यस्य बलं तस्य' अर्थात् जिसके पास बुद्धि है, बल उसी के पास होता है। अतः बुद्धि के द्वारा किये गये प्रहार से समूल तथा विधिवत् बलवान् से भी बलवान् शत्रु का संहार हो जाता है। लेकिन उसके उलटे प्रयोग से या मन्त्र के बीच में ही उद्घाटन हो जाने से अपना भी समूल नाश हो जाता है। इसलिए बुद्धि का ही सर्वत्र वैभव देखा जाता है।

एकः स्वादु न भुञ्जीत एकश्चार्थान्न चिन्तयेत्।
एको न गच्छेदध्वानं नैकः सुप्तेषु जागृयात् ॥ ५१ ॥

शब्दार्थ — एकः = अकेले, स्वादुः = स्वादिष्ट, न भुञ्जीत = भोजन नहीं करना चाहिए, एकः = अकेले, अर्थान् = विचारणीय विषयों का, न चिन्तयेत् = चिन्तन नहीं करना चाहिए, एकः = अकेले, अध्वानम् = मार्ग में, न गच्छेत् = नहीं जाना चाहिए, एकः = अकेले, सुप्तेषु = सोये हुए व्यक्ति को, न जागृयात् = जगाना नहीं चाहिए।

हिन्दी — अकेले स्वादिष्ट वस्तुओं का भोजन नहीं करना चाहिए, अकेले चिन्तनीय विषयों पर विचार नहीं करना चाहिए, अकेले मार्ग में नहीं चलना चाहिए तथा अकेले सोये हुए मनुष्य को नहीं जगाना चाहिए।

विशेष — स्वादिष्ट भोजन का आनन्द अकेले नहीं लिया जा सकता, अतः सबको मिलकर स्वादिष्ट भोजन का आनन्द लेना चाहिए। गम्भीर विषयों पर अकेले विचार नहीं किया जा सकता, न जाने कोई महत्त्वपूर्ण विषय ही विचार करने से छूट जाय, अतः सबको मिलकर विचार करना चाहिए। अकेले मार्ग में जाने से नीरसता आ सकती है, अतः समूह में यात्रा करने में आनन्द मिलता है। सोये हुए को अकेले जगाने से उठने के बाद विपरीत प्रतिक्रिया हो सकती है, अतः प्रतीक्षा करनी चाहिए।

एकमेवाद्वितीयं तद् यद् राजन् नावबुद्धचसे।
सत्यं स्वर्गस्य सोपानं पारावारस्य नौरिव॥ ५२॥

शब्दार्थ—राजन् = हे राजन्! पारावारस्य = समुद्र को पार करने के लिए, नौरिव = नौका के समान, स्वर्गस्य = स्वर्ग का, सोपानम् = मार्ग या सीढ़ी, सत्यम् = सत्य है, एकमेवाद्वितीयम् = अकेला ही, यद् = जो, तद् = उसको, नावबुद्धचसे = नहीं जान रहे हैं।

हिन्दी — राजन्! समुद्र को पार करना नौका के द्वारा ही सम्भव है, उसी प्रकार स्वर्ग के सोपान स्वरूप सत्य ही एक मात्र साधन है, लेकिन उसको आप नहीं जान रहे हैं।

विशेष—'सत्यमेव जयते नानृतम्' सत्य की ही विजय होती है, झूठ की नहीं। लेकिन सांसारिक वासनाओं में रहने के कारण व्यक्ति उसे समझता नहीं है। अन्त में सत्य की ही प्रतिष्ठा होती है, लेकिन तब तक सारा समय निकल जाता है। इसलिए सत्य को ही सर्वोपरि मानकर लक्ष्य-निर्धारण करना चाहिए।

एकः क्षमावतां दोषो द्वितीयो नोपपद्यते।
यदेनं क्षमया युक्तमशक्तं मन्यते जनः॥ ५३॥

शब्दार्थ—क्षमावताम् = क्षमाशील मनुष्यों का, एकः = एक ही, दोषः = दोष (होता है), द्वितीयः = दूसरा, न उपपद्यते = उचित नहीं जान पड़ता है, क्षमया युक्तम् = क्षमा से युक्त, एनम् = इसको, जनः = लोग, अशक्तम् = असमर्थ, मन्यते = मान लेता है।

हिन्दी—क्षमावान् पुरुषों के लिए एक ही दोष होता है कि मनुष्य उसे अशक्त मान लेता है, दूसरा दोष उसमें कोई दिखायी नहीं देता है।

विशेष—'न तितिक्षा सममस्ति साधनम्' अर्थात् तितिक्षा (सहनशक्ति) के समान दूसरा साधन नहीं है। यह सहनशक्ति निर्बलों का बल एवं बलवानों का भूषण है। इस तितिक्षा के बल पर बड़े-से-बड़े एवं क्रूर सत्त्वों के ऊपर भी विजय पायी जा सकती है। भगवान् बुद्ध के जीवन-चरित्रों (जातक ग्रन्थों) में इसके अनेक उदाहरण भरे पड़े हैं। इसी बात को नीतिकार ने आगे स्पष्ट रूप से बतलाया है।

सोऽस्य दोषो न मन्तव्यः क्षमा हि परमं बलम्।
क्षमा गुणो ह्यशक्तानां शक्तानां भूषणं क्षमा ॥ ५४ ॥

शब्दार्थ—सः=वह, अस्य=इसका, दोषः=दोष, न मन्तव्यः=नहीं मानना चाहिए, हि=क्योंकि, क्षमा=क्षमा, परमम्=सबसे बड़ा, बलम्=बल है, हि=क्योंकि, अशक्तानाम्=असमर्थ लोगों का, क्षमा गुणः=क्षमा गुण है, शक्तानाम्=समर्थ लोगों का, क्षमा=क्षमा, भूषणम्=अलङ्कार होता है।

हिन्दी—परन्तु क्षमावान् मनुष्य का वह दोष नहीं मानना चाहिए, क्योंकि क्षमा असमर्थ का बल और समर्थ मनुष्य का अलङ्कार है।

क्षमा वशीकृतिर्लोके क्षमया किं न साध्यते।
शान्तिखड्गः करे यस्य किं करिष्यति दुर्जनः ॥ ५५ ॥

शब्दार्थ—लोके=संसार में, क्षमा वशीकृतिः=क्षमा के द्वारा वश में किया जा सकता है। क्षमया=क्षमा के द्वारा, किं न साध्यते=क्या नहीं सिद्ध होता है? शान्तिखड्गः=शान्तिरूपी तलवार, यस्य=जिसके, करे=हाथ में रहता है, दुर्जनः=दुष्ट, किं करिष्यति=क्या करेगा?

हिन्दी—लोक में क्षमा सभी को वश में करने वाली है, क्षमा के द्वारा क्या नहीं सिद्ध होता है? जिसके हाथ में शान्तिरूपी तलवार है तो उसका दुर्जन क्या कर सकेगा?

विशेष—क्षमा एक ऐसा अपूर्व अस्त्र है जिसके द्वारा सब कुछ सिद्ध हो सकता है। क्षमारूपी अस्त्र भगवान् बुद्ध ने सिखाया; महात्मा गाँधी प्रभृति महापुरुषों ने उसका अनुकरण किया, परिणाम लोगों के सामने आये। इस प्रकार क्षमाशील मनुष्य ने इसी गुण के बल पर अपना सब कुछ सिद्ध करके दिखलाया।

अतृणे पतितो वह्निः स्वयमेवोपशाम्यति।
अक्षमावान् परं दोषैरात्मानं चैव योजयेत् ॥ ५६ ॥

शब्दार्थ—अतृणे=तृणों से रहित, पतितः=गिरी हुई, वह्निः=आग, स्वयमेव स्वयं ही, उपशाम्यति=शान्त हो जाती है, अक्षमावान्=क्षमा रहित मनुष्य, परम्=दूसरे का, च=और, आत्मानम्=स्वयं का, दोषैः=दोषों के द्वारा, योजयेत्=भागी बना देता है।

हिन्दी—जैसे तृण रहित स्थान में आग लगने से अपने-आप शान्त हो जाती है,

उसी प्रकार क्षमा रहित पुरुष दूसरे को तथा अपने को भी दोष का भागी बना देता है।

विशेष—जिस प्रकार अग्नि को जलते रहने के लिए लकड़ी या घासों की आवश्यकता होती है अन्यथा उसके बिना आग बुझ जायेगी। उसी प्रकार क्षमावान् मनुष्य के सामने दुर्जनों का भी क्रोध अपने-आप शान्त हो जाता है। क्योंकि उसके क्रोध रूपी अग्नि के ऊपर शान्ति रूप जल पड़ जाने से क्रोध समाप्त हो जाता है।

एको धर्मः परं श्रेयः क्षमैका शान्तिरुत्तमा।
विद्यैका परमा तृप्तिरहिंसैका सुखावहा॥ ५७॥

शब्दार्थ—एकः=अकेला, धर्मः=धर्म, परम्=अधिक, श्रेयः=कल्याणकारी है, क्षमैका=एकमात्र क्षमा, शान्तिरुत्तमा=उत्तम शान्ति का उपाय है, विद्यैका=एकमात्र विद्या ही, परमा तृप्तिः=परम सन्तोष देने वाली है, अहिंसका=एकमात्र अहिंसा ही, सुखावहा=सुख देने वाली है।

हिन्दी—एकमात्र धर्म ही परम कल्याणकारी है, एकमात्र क्षमा ही शान्ति का सर्वश्रेष्ठ उपाय है, एकमात्र विद्या ही परम सन्तोष देने वाली है तथा एकमात्र अहिंसा ही सुख देने वाली है।

विशेष—ज्ञानी और भक्त में यही अन्तर होता है कि भक्त एकमात्र उसी वस्तु को जानता है तथा उसी के द्वारा अपना कल्याण चाहता है। ज्ञानी उसको भी जानता है तथा उसके द्वारा अपनी समस्याओं का उपाय ढूंढता है। परन्तु इस श्लोक में नीतिकार ने भक्त के मार्ग का अवलम्बन करके सर्वत्र एक के द्वारा ही श्रेयमार्ग बतलाया है।

द्वाविमौ ग्रसते भूमिः सर्पो बिलशयानिव।
राजानं चाविरोद्धारं ब्राह्मणं चाप्रवासिनम्॥ ५८॥

शब्दार्थ—बिलशयान्=बिल में रहने वालों को, सर्पः=सर्प, इव=यथा, ग्रसते=खा लेता है, भूमिः=पृथ्वी, अविरोद्धारम्=शत्रु का प्रतिरोध न करने वालों को, राजानम्=राजा को, अप्रवासिनम्=प्रवास नहीं करने वाले अर्थात् परदेश से डरने वाले, ब्राह्मणम्=ब्राह्मण को, द्वाविमौ=इन दोनों को, ग्रसते=समाप्त कर देता है।

हिन्दी—बिल में रहने वाले जीवों को जैसे सर्प खा लेता है, वैसे ही विरोध नहीं करने वाले राजा को और प्रवास से भयभीत होने वाले ब्राह्मण को समय खा जाता है।

विशेष—राजा को शत्रुओं से विरोध रखना ही पड़ता है, नहीं तो राजा का अस्तित्व ही समाप्त हो जायेगा। उसी प्रकार ब्राह्मण को देश का कल्याण करने के लिए प्रवास करना ही पड़ेगा, अन्यथा देश नष्ट हो जायेगा। लेकिन जो ब्राह्मण प्रवास से डरता है उस ब्राह्मण का ब्राह्मणत्व ही समाप्त हो जाता है अर्थात् वह भी नष्ट हो जाता है। क्योंकि ब्राह्मणों का शरीर क्षुद्र कामनाओं के लिए नहीं, अपितु ज्ञान, तपस्या तथा अनन्त सुख की प्राप्ति के लिए होता है।

द्वे कर्मणी नरः कुर्वन्नस्मिंल्लोके विरोचते ।
अब्रुवन् परुषं किञ्चदसतोऽनर्चयंस्तथा ॥ ५९ ॥

शब्दार्थ—द्वे = दो, कर्मणी = कर्मों को, नरः = मनुष्य, कुर्वन् = करते हुए, अस्मिन् लोके = इस लोक में, विरोचते = शोभा पाता है, किञ्चन = थोड़ा भी, परुषम् = कठोर, अब्रुवन् = नहीं बोलना, असतः = दुर्जनों को, तथा = और, अनर्चयन् = आदर नहीं देकर अर्थात् सत्कार नहीं करता हुआ ।

हिन्दी—इस संसार में मनुष्य दो कर्मों को करता हुआ सुशोभित होता है—एक थोड़ा भी कठोर नहीं बोलकर तथा दूसरा दुर्जनों का सत्कार नहीं करके ।

विशेष—सदा प्रिय बोलना चाहिए । इसके द्वारा सभी प्राणी संतुष्ट हो जाते हैं । अतः सदा प्रिय बोलने का विधान किया गया है । दुर्जनों के सम्मान से अनर्थ ही होता है । जैसे सर्प को दूध पिलाने से केवल विष ही बढ़ता है । अतः जाने-अनजाने दुर्जनों का सत्कार नहीं करना चाहिए ।

द्वाविमौ पुरुषव्याघ्र परप्रत्ययकारिणौ ।
स्त्रियः कामितकामिन्यो लोकः पूजितपूजकः ॥ ६० ॥

शब्दार्थ—हे पुरुषव्याघ्र ! = हे पुरुषसिंह ! द्वौ इमौ = ये दो लोग, परप्रत्ययकारिणौ = दूसरों पर विश्वास करने वाले होते हैं । कामितकामिन्यः = दूसरी स्त्री द्वारा चाहे गये कामी को चाहने वाली, स्त्रियः = स्त्रियाँ, पूजितपूजकः = पूजित मनुष्य की पूजा करने वाला, लोकः = संसार के लोग ।

हिन्दी—हे पुरुषसिंह ! धृतराष्ट्र ! इस संसार में दो प्रकार के लोग दूसरों पर विश्वास करने वाले होते हैं । पहला दूसरी स्त्री द्वारा चाहने वाले पुरुष को चाहने वाली स्त्रियाँ और दूसरा पूजित मनुष्य की पूजा करने वाला मनुष्य ।

विशेष—इन दोनों में अपना विवेक नहीं रहता, अतः अपनी बल-बुद्धि के सहारे को छोड़कर केवल दूसरों के कहे वचनों पर ही विश्वास कर लेते हैं । अतः मूढ़ के समान परप्रत्ययनेय बुद्धि कहे जाते हैं ।

द्वाविमौ कण्टकौ तीक्ष्णौ शरीरपरिशोषिणौ ।
यश्चाधनः कामयते यश्च कुप्यत्यनीश्वरः ॥ ६१ ॥

शब्दार्थ—द्वौ इमौ = ये दोनों, तीक्ष्णौ = अत्यन्त नुकीले, कण्टकौ = काँटे, शरीरपरिशोषिणौ = शरीर को सुखाने वाले हैं, यः = जो, अधनः = धनरहित, कामयते = धन की कामना करता है, यश्च = और जो, अनीश्वरः = असमर्थ, कुप्यतिः = क्रोध करता है ।

हिन्दी—जो निर्धन रहते हुए भी धन की कामना करता है और असमर्थ होते हुए भी क्रोध करता है, ये दोनों बातें संसार में शरीर को सुखाने वाले नुकीले काँटे के समान हैं ।

विशेष—उसका क्रोध निरर्थक हो जाता है, जिसके क्रोध का कोई फलाफल

नहीं निकलता है। साथ ही निर्धन होने के बाद भी धनवान् का आचरण करता है। उसका जीवन भी निरर्थक हो जाता है। इसलिए ये दोनों बातें संसार में नहीं करनी चाहिए।

द्वाविमौ न विराजेते विपरीतेन कर्मणा।
गृहस्थश्च निरारम्भः कार्यवांश्चैव भिक्षुकः ॥ ६२ ॥

शब्दार्थ—द्वौ इमौ = ये दोनों ही, विपरीतेन = विपरीत, कर्मणा = कर्मों से, न विराजेते = शोभित नहीं होते हैं, निरारम्भः = कुछ नहीं करने वाला, गृहस्थः = गृहस्थ, कार्यवान् = कार्यों में फँसा हुआ, च = और, भिक्षुकः = संन्यासी।

हिन्दी—ये दोनों ही विपरीत कार्यों के कारण शोभा नहीं पाते हैं—गृहस्थ होकर भी कुछ नहीं करना और संन्यासी होते हुए कर्मों में लिप्त रहना।

विशेष—संन्यासी का अर्थ ही होता है—काम्य कर्मों का सर्वथा परित्याग। परन्तु जो संन्यासी होते हुए कर्मों में फँस जाता है वह परिहास का पात्र बन जाता है। उसी प्रकार सांसारिक होते हुए जो कुछ नहीं करता है, उसका सांसारिक व्यवहार कैसे चल सकता है? अतः ये दोनों ही उपहास के पात्र होते हैं।

द्वाविमौ पुरुषौ राजन् स्वर्गस्योपरि तिष्ठतः।
प्रभुश्च क्षमया युक्तो दरिद्रश्च प्रदानवान् ॥ ६३ ॥

शब्दार्थ—राजन् = धृतराष्ट्र! द्वौ इमौ = ये दोनों, पुरुषौ = पुरुष, स्वर्गस्य = स्वर्ग के, उपरि तिष्ठतः = ऊपर रहते हैं, प्रभुः = स्वामी, च = और, क्षमया = क्षमा से, युक्तः = युक्त रहता है, च = और, दरिद्रः = अभाव में रहते हुए भी, प्रदानवान् = देने की इच्छा रखता है।

हिन्दी—ये दोनों पुरुष स्वर्ग के ऊपर रहते हैं। प्रभु रहते हुए भी क्षमा प्रदान करता है और दरिद्र रहते हुए भी देने की इच्छा रखता है।

विशेष—राजा सर्वशक्तिसम्पन्न होता है। यदि उसमें क्षमा का गुण आ जाय तो प्रजा के लिए वह देवदूत बन जाता है और प्रजा भी उससे सर्वाधिक प्यार तथा श्रद्धा रखती है। अभाव में रहते हुए भी दूसरों का उपकार करने की भावना रखने वाला मनुष्य भी लोगों के द्वारा पूजित होता है।

न्यायार्जितस्य द्रव्यस्य बोद्धव्यौ द्वावतिक्रमौ।
अपात्रे प्रतिपत्तिश्च पात्रे चाप्रतिपादनम् ॥ ६४ ॥

शब्दार्थ—न्यायार्जितस्य = न्याय से उपार्जित, द्रव्यस्य = धन का, द्वौ एव = दो ही, अतिक्रमौ = अतिक्रमण अर्थात् दुरुपयोग, बोद्धव्यौ = समझना चाहिए। अपात्रे = अपात्र में, प्रतिपत्तिः = दान देना, च = और, पात्रे = पात्र में, अप्रतिपादनम् = दान नहीं देना।

हिन्दी—न्याय से उपार्जित धन का दो ही दुरुपयोग समझना चाहिए—अपात्र में दान देना तथा पात्र में दान नहीं देना।

विशेष—पात्र में दान देने से उसका सहस्र गुना अधिक फल मिलता है, उसी

प्रकार अपात्र में दान देने से देने वाला ही निम्नगामी हो जाता है। अतः पात्र में ही दान देना चाहिए।

द्वावम्भसि निवेष्टव्यौ गले बद्ध्वा दृढां शिलाम्।
धनवन्तमदातारं दरिद्रं चातपस्विनम् ॥ ६५ ॥

शब्दार्थ—द्वौ एव = इन दोनों को, गले = गला में, दृढाम् = भारी, शिलाम् = पत्थर को, बध्वा = बांधकर, अम्भसि = जल में, निवेष्टव्यौ = डुबो देना चाहिए, अदातारम् = दान नहीं देने वाले, धनवन्तम् = धनी को, च = और, अतपस्विनम् = कष्ट न सहने वाले, दरिद्रम् = निर्धन को।

हिन्दी—इन दोनों को गले में पत्थर बांधकर पानी में डुबो देना चाहिए, जो धनवान् होते हुए भी दान नहीं देता है और दरिद्र रहने पर भी कष्ट सहन करने की क्षमता नहीं रखता है।

विशेष—धनवान् को दानी होना चाहिए और अभावग्रस्त मनुष्य को कष्ट सहने की क्षमता होनी चाहिए। क्योंकि इसके बिना समाज की व्यवस्था ठीक रूप से नहीं चल सकती। अतः इन दोनों में उपर्युक्त गुण होने चाहिए।

द्वाविमौ पुरुषव्याघ्र सूर्यमण्डलभेदिनौ।
परिव्राड्योगयुक्तश्च रणे चाभिमुखो हतः ॥ ६६ ॥

शब्दार्थ—पुरुषव्याघ्र! = हे पुरुषसिंह! द्वौ इमौ = ये दोनों, सूर्यमण्डलभेदिनौ = सूर्यमण्डल का भेदन कर मुक्त हो जाते हैं, योगयुक्तः = योगयुक्त, परिव्राड् = संन्यासी, च = और, रणे = युद्ध में, अभिमुखः = सामने, हतः = मरा हुआ वीर।

हिन्दी—हे पुरुषसिंह! ये दोनों सूर्यमण्डल का भेदन करके ऊर्ध्व गति को प्राप्त हो जाते हैं अर्थात् मुक्त हो जाते है—योगयुक्त संन्यासी और युद्धभूमि में सामने मरा हुआ वीर।

विशेष—संन्यासी काम्यकर्मों के त्याग और योग में विद्यमान रहने के कारण मुक्त होते हैं। परन्तु वीर देश और धर्म की रक्षा करने के कारण सांसारिक गतिविधियों में प्रशंसित होने के कारण मुक्त हो जाते हैं।

त्रयोपाया मनुष्याणां श्रूयन्ते भरतर्षभ।
कनीयान्मध्यमः श्रेष्ठ इति वेदविदो विदुः ॥ ६७ ॥

शब्दार्थ—भरतर्षभ! = हे धृतराष्ट्र!, मनुष्याणाम् = मनुष्यों के कार्यसिद्धि के लिए, त्रयोपायाः = तीन उपाय, कनीयान् = सबसे छोटा, मध्यमः = मध्यम, श्रेष्ठः = उत्तम, इति = इस प्रकार के, वेदविदः = वेदों को जानने वाले, विदुः = कहते हैं।

हिन्दी—हे भरतर्षभ! इस संसार में मनुष्यों की कार्यसिद्धि के लिए तीन उपाय बतलाये गये हैं, जिन्हें उत्तम, मध्यम और अधम कहते हैं। ऐसा वेद को जानने वाले कहते हैं।

विशेष—इस संसार में तीन प्रकार के मनुष्यों के लिए उसके भेद के अनुसार

ही तीन प्रकार के उपाय कहे गये हैं। जैसा मनुष्य होता है उसका उपाय भी वैसा ही होता है। उपायों में भी व्यतिक्रम नहीं होते हैं।

त्रिविधाः पुरुषां राजन्नुत्तमाधममध्यमाः।
नियोजयेद् यथावत् तांस्त्रिविधेष्वेन कर्मस॥ ६८॥

शब्दार्थ—राजन् = हे धृतराष्ट्र !, त्रिविधाः = तीन प्रकार के, पुरुषाः = पुरुष, उत्तमः, अधमः, मध्यमः = उत्तम, अधम और मध्यम होते है। तान् = उनको, त्रिविधेषु = तीनों प्रकार के, कर्मसु = कर्मों में, यथावत् = यथायोग्य, नियोजयेत् = नियुक्त करना चाहिए।

हिन्दी—हे राजन् ! उत्तम, अधम और मध्यम तीन प्रकार के मनुष्य होते हैं। इन तीनों को तीन प्रकार के कर्मों में यथायोग्य नियुक्त करना चाहिए।

विशेष—गुणों के अनुसार कार्य करने वाले मनुष्य कार्यों में निपुण होते हैं। अतः योग्यता के अनुसार ही कार्य करना चाहिए।

त्रय एवाधना राजन् भार्या दासस्तथा सुतः।
यत्ते समधिगच्छन्ति यस्य ते तस्य तद्धनम्॥ ६९॥

शब्दार्थ—राजन् = हे धृतराष्ट्र ! त्रय एव=ये तीन ही, अधनाः=धन के अधिकारी नहीं होते हैं, भार्या = पत्नी, दासः = नौकर, तथा = और, सुतः = पुत्र, यत् = जो, ते = वे, समधिगच्छन्ति = प्राप्त करते हैं, यस्य = जिसके, ते = वे, सम्बन्धी रहते हैं, तस्य = उसका, तद् धनम् = वह धन होता है।

हिन्दी—हे राजन् ! तीन मनुष्य ही उस धन के अधिकारी होते हैं—पत्नी, नौकर और पुत्र। ये जो कुछ प्राप्त करते हैं वह धन उसी का होता है जिसके अधीन ये रहते हैं।

विशेष—धन का अधिकारी उसका स्वामी होता है, नौकर नहीं। वह केवल अपने परिश्रमों के द्वारा धन अर्जित कर स्वामी को देता है। उसी प्रकार पत्नी और पुत्र का धन भी उसके स्वामी या पिता का ही होता है। लेकिन अपने परिश्रमों और कार्यों द्वारा धन-संग्रह अवश्य करता है।

हरणं च परस्वानां परदाराभिमर्शनम्।
सुहृदश्च परित्यागस्त्रयो दोषाः क्षयावहाः॥ ७०॥

शब्दार्थ—परस्वानाम् = दूसरों के धन, हरणम् = हरण करना, परदाराभिमर्शनम् = दूसरे की स्त्रियों का संसर्ग, च = और, सुहृदः = मित्र का, परित्यागः = परित्याग करना, त्रयो दोषाः = ये तीनों दोष, क्षयावहाः = नाशकारी होते हैं।

हिन्दी—दूसरों के धन का हरण करना, दूसरे की स्त्री से सम्बन्ध रखना तथा सच्चे मित्र का परित्याग करना—ये तीनों दोष विनाशकारी होते हैं।

विशेष—कुछ ऐसी बातें होती हैं जो जीवन के लिए दुःखदायी होती हैं, जैसे—दूसरे के धन ग्रहण करने पर विरोध होना स्वाभाविक है। दूसरों की स्त्री से

संसर्ग रहने पर चारित्रिक दोष रहेगा। सच्चे मित्र के परित्याग से अनर्थ होना स्वाभाविक है। क्योंकि मित्र सभी गुप्त बातों को जानता है। उसके प्रकाशन से अनर्थ सम्भव है। इसलिए ये तीनों विनाशकारी माने गये हैं।

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः।
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत् ॥ ७१ ॥

शब्दार्थ—आत्मनः=आत्मा का, नाशनम्=नाश करने वाला, नरकस्य=नरक का, इदम्=यह, त्रिविधम्=तीन प्रकार के, द्वारम्=मार्ग हैं, कामः=काम, क्रोधः=क्रोध, तथा=और, लोभः=लोभ, तस्मात्=इसलिए, एतत्=इन, त्रयम्=तीनों का, त्यजेत्=त्याग कर देना चाहिए।

हिन्दी—काम, क्रोध तथा लोभ ये आत्मा का नाश करने वाले नरक के द्वार हैं। इसलिए इन तीनों का परित्याग कर देना चाहिए।

विशेष—काम से क्रोध तथा लोभ उत्पन्न होते हैं, जिससे मनुष्य का नाश हो जाता है, क्योंकि संसार के शत-प्रतिशत अपराध इन तीनों के अन्तर्गत होते हैं। इसलिए इन तीनों का त्याग कर ही मनुष्य सुखमय हो सकता है।

वरप्रदानं राज्यं च पुत्रजन्म च भारत।
शत्रोश्च मोक्षणं कृच्छ्रात् त्रीणि चैकं च तत्समम् ॥ ७२ ॥

शब्दार्थ—भारत !=हे धृतराष्ट्र !, वरप्रदानम्=वरदान प्राप्त करना, राज्यम्=राज्य प्राप्त करना, च=और, पुत्रजन्म=पुत्र का जन्म होना, शत्रोः=शत्रु से, कृच्छ्रात्=कष्ट से, मोक्षणम्=मुक्त होना, त्रीणि=ये तीनों, एकं=शत्रु के कष्ट से मुक्त होने के, तत्समम्=सदृश हैं।

हिन्दी—हे भारत ! वर प्राप्त करना, राज्य प्राप्त करना और पुत्र का जन्म होना—ये तीनों एक तरफ और शत्रु के कष्ट से मुक्त होना—ये एक ओर; वे तीनों और यह एक समान है।

विशेष—सुख का समय कट जाता है, लेकिन दुःख का समय शीघ्र नहीं कटता। वरप्राप्ति, राज्यप्राप्ति और पुत्रजन्म सुखकारक हैं, अतः इनसे आनन्द मिलता है। परन्तु शत्रु से जीवन में जो कष्ट मिलता है उससे छुटकारा पाना इससे भी बढ़कर सुखकारक होता है। इसलिए इसके समान वे तीनों नहीं हो सकते।

भक्तं च भजमानं च तवास्मीति च वादिनम्।
त्रीनेतांश्छरणं प्राप्तान् विषमेऽपि न सन्त्यजेत् ॥ ७३ ॥

शब्दार्थ—भक्तम्=भक्त को, भजमानम्=सेवक को, च=और, तवास्मि=तुम्हारा हूँ, इति=इस प्रकार, वादिनम्=बोलने वाले को, एतान् त्रीन्=इन तीनों को, च=और, शरणं प्राप्तान्=शरण में आये हुए को, विषमेऽपि=संकटकाल में भी, न सन्त्यजेत्=नहीं छोड़ना चाहिए।

हिन्दी—भक्त, सेवक तथा मैं आपका हूँ—ऐसा कहने वाले तथा शरण में आये मनुष्य को संकटकाल में भी नहीं छोड़ना चाहिए।

विशेष--शरणागत की रक्षा करना महापुरुषों का शाश्वत धर्म है, इसलिए भगवान् राम ने कहा है—

'सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति वादिनम् ।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतत्कुलव्रतम्' ॥ (वा० रा०)

अर्थात् एक ही बार शरण में आकर 'तुम्हारा हूँ'—ऐसा कहने वाले को सभी भूतों से रक्षा करता हूँ; यह मेरा कुलव्रत है। भक्त और सेवक पर दया करना भगवान् का स्वाभाविक कर्म है।

चत्वारि राज्ञा तु महाबलेन वर्ज्यान्याहुः पण्डितस्तानि विद्यात् ।
अल्पज्ञैः सह मन्त्रं न कुर्यान्न दीर्घसूत्रै रभसैश्चारणैश्च ॥ ७४ ॥

शब्दार्थ—महाबलेन = महाबलशाली, राज्ञा = राजा के द्वारा, चत्वारि=ये चारों, वर्ज्यान् = त्यागने योग्य, आहुः = कहे गये हैं, पण्डितः = विद्वान्, तानि = उसको, विद्यात् = जानना चाहिए, अल्पप्रज्ञैः सह = अल्पज्ञों के साथ, अदीर्घसूत्रैः = बिलम्ब से कार्य करने वाले के साथ, रभसैः = हठात् करने वालों के साथ, च = और, चारणैः = भाटों के साथ, मन्त्रम् = गोपनीय विचार, न कुर्यात् = नहीं करना चाहिए।

हिन्दी—महाबली राजाओं के लिए भी इन चारों कार्यों को नहीं करना चाहिए। ऐसा पण्डित लोग कहते हैं कि अल्पज्ञों के साथ, बिलम्ब से कार्य करने वालों के साथ, हठात् कार्य करने वालों के साथ और भाटों के साथ मन्त्रणा नहीं करना चाहिए।

विशेष—मन्त्रणा से सारे राज्य-कार्य चलाये जाते हैं। लेकिन इन लोगों के साथ मन्त्रणा करने पर यथार्थ सामने नहीं आयेगा। साथ ही मन्त्र के रहस्य खुल जाने पर अनर्थ की सम्भावनाएँ भी बढ़ जायेंगी। अतः कीचड़ लगाकर धोने की अपेक्षा उससे बचना ही उचित होगा।

चत्वारि ते तात गृहे वसन्तु श्रियाभिजुष्टस्य गृहस्थधर्मे ।
वृद्धो ज्ञातिरवसन्नः कुलीनः सखा दरिद्रो भगिनी चानपत्या ॥ ७५ ॥

शब्दार्थ--तात ! = तात ! ते = तुम्हारे, गृहे = घर में, चत्वारि = ये चार बातें, श्रियाभिजुष्टस्य = लक्ष्मी से सेवित, गृहस्थधर्मे = गृहस्थधर्म में, वसन्तु = सदा निवास करें, वृद्धः ज्ञातिः = परिवार में वृद्ध मनुष्य, अवसन्नः = दुःखी, कुलीनः = अच्छे कुल में उत्पन्न मनुष्य, सखा दरिद्रः = धनहीन मित्र, अनपत्या = निस्सन्तान, भगिनी = बहिन।

हिन्दी—हे तात ! गृहस्थधर्म में लक्ष्मी से युक्त आपके घर में ये चार बातें सदा वर्तमान रहें—१ परिवार में वृद्ध मनुष्य, २. अच्छे कुल में उत्पन्न दुःखी मनुष्य, ३. धनहीन मित्र और ४. निस्सन्तान बहिन।

विशेष—वृद्ध पुरुष कुल के आचार का उपदेश करता है। कुलीन व्यक्ति दुःखी रहने पर भी कभी किसी का अहित-चिन्तन नहीं करते। दरिद्र मित्र भी हित-चिन्तक होते हैं। साथ निःसन्तान बहिन भाई के हितचिन्तन एवं उसके आवश्यक

कार्य सम्पादन करने में सारा समय बिता देती है। अतः लक्ष्मीवान् के घर में इन चारों का होना सुखकारक माना जाता है।

चत्वारि हि महाराज साद्यस्कानि वृहस्पतिः।
पृच्छते त्रिदशेन्द्राय तानीमानि निबोध मे ॥ ७६ ॥

शब्दार्थ--महाराज !=धृतराष्ट्र !, वृहस्पतिः=देवता के गुरु, चत्वारि=चार, हि=निश्चय ही, साद्यस्कानि=तत्काल फल देने वाले, त्रिदशेन्द्राय=इन्द्र के द्वारा, पृच्छते=पूछे जाने पर, इमानि=इन सबों को, तानि=उन्हें, मे=मुझसे, निबोध=सुनिये।

हिन्दी--महाराज ! इन्द्र के द्वारा पूछे जाने पर उनसे वृहस्पति ने जिन चार बातों को तत्काल फल देने वाला बतलाया है उनको आप मुझसे सुनिये।

विशेष--देवताओं के गुरु वृहस्पति ने इन्द्र के द्वारा पूछी जानी वाली जिन बातों को तत्काल फल देने वाला बतलाया है, उन्हीं बातों को मैं आप को बतला रहा हूँ। इससे इन कथनों में प्रामाणिकता एवं परम्परा प्राप्त है, यह स्पष्ट होता है।

देवतानां च सङ्कल्पमनुभावं च धीमताम्।
विनयं कृतविद्यानां विनाशं पापकर्मणाम् ॥ ७७ ॥

शब्दार्थ--देवतानाम्=देवताओं के, संकल्पम्=संकल्प को, धीमताम्=बुद्धिमानों के, अनुभावम्=प्रभाव को, च=और, कृतविद्यानाम्=विद्वानों के, विनयम्=विनय को, पापकर्मणाम्=पापियों के, विनाशम्=नाश को। ये चार बातें तत्काल फल देने वाली हैं।

हिन्दी--देवताओं का संकल्प, बुद्धिमानों का प्रभाव, विद्वानों की विनम्रता एवं पाप कर्मों का विनाश ये चारों कर्म सद्यः फलप्रद होते हैं।

विशेष--इन चारों का क्या फल है, इस बात को बतला रहे हैं। क्योंकि किसी भी विषय का तत्काल फलाफल होता है।

चत्वारि कर्माण्यभयङ्कराणि भयं प्रयच्छन्त्ययथाकृतानि।
मानाग्निहोत्रमुत मानमौनं मानेनाधीतमुत मानयज्ञः ॥ ७८ ॥

शब्दार्थ--चत्वारि कर्माणि=चार कर्म, अभयङ्कराणि=भय को दूर करने वाले हैं, अयथाकृतानि=अनुचित प्रयोग से, भयम्=भय को, प्रयच्छन्ति=भय देते हैं; मानाग्निहोत्रम्=सम्मानपूर्वक किया गया अग्निहोत्र, उत्=और, मानमौनम्=विधिपूर्वक मौन का पालन, मानेनाधीतम्=आदरपूर्वक किया गया अध्ययन, उत्=और, मानयज्ञः=सम्मानपूर्वक किया गया यज्ञानुष्ठान।

हिन्दी--ये चार बातें भय को दूर करने वाली होती हैं, लेकिन इनके अनुचित प्रयोग से भयदायक भी होती हैं; यथा--सम्मानपूर्वक किया गया अग्निहोत्र, मानपूर्वक किया गया मौनावलम्बन, आदरपूर्वक किया गया अध्ययन तथा स्वाध्यायविधिपूर्वक किया गया यज्ञानुष्ठान।

विशेष—विधिपूर्वक किये गये कर्म लाभदायक होते हैं, अतः इन चारों का विधि-विधानपूर्वक अनुष्ठान करना चाहिए, जिससे लाभ मिले।

पञ्चाग्नयो मनुष्येण परिचर्याः प्रयत्नतः।
पिता माताग्निरात्मा च गुरुश्च भरतर्षभ ॥ ७९ ॥

शब्दार्थ—भरतर्षभ = हे धृतराष्ट्र !, मनुष्येण = मनुष्य द्वारा, पञ्चाग्नयः = पाँच प्रकार की अग्नियों की, प्रयत्नतः = प्रयत्नपूर्वक, परिचर्याः = सेवा करनी चाहिए। पिता = पिता, माता = माताः, अग्निः = अग्नि, आत्मा = आत्मा, च = और, गुरुः = गुरु।

हिन्दी—हे धृतराष्ट्र ! मनुष्य को इन पाँच अग्नियों की परिचर्या बहुत ही सावधानीपूर्वक करनी चाहिए। जिनका नाम है—माता, पिता, अग्नि, आत्मा और गुरु हैं।

विशेष—अग्नि के बिना जीवन में आवश्यक कार्य नहीं हो सकते हैं, परन्तु इसके दुरुपयोग और असावधानी से अनेक समस्याएँ भी उत्पन्न हो सकती हैं। माता, पिता, अग्नि, आत्मा और गुरु—ये अग्नि के सदृश माने गये हैं। इसलिए इनके साथ बहुत सावधानीपूर्वक व्यवहार करना चाहिए, अन्यथा कष्ट हो सकता है। इनकी कभी भी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए।

पञ्चैव पूजयंल्लोके यशः प्राप्नोति केवलम्।
देवान् पितॄन् मनुष्यांश्च भिक्षूनतिथिपञ्चमान् ॥ ८० ॥

शब्दार्थ—लोके = संसार में, पञ्च एव = इन पाँचों को ही, पूजयन् = पूजा करते हुए, केवलम् = विशुद्ध, अत्यधिक, यशः = यश, प्राप्नोति = प्राप्त करता है, देवान् = देवताओं को, पितॄन् = पितरों को, मनुष्यान् = मनुष्यों को, भिक्षून् = याचकों को, च = और, पञ्चमान् = पाँचवाँ, अतिथिम् = अभ्यागत को, अर्थात् जिसके आने का दिन निश्चित नहीं है।

हिन्दी—इस संसार में इन पाँचों की पूजा करते हुए विशुद्ध यश की प्राप्ति होती है; ये हैं—देवता, पितर, मनुष्य, याचक एवं पाँचवाँ अतिथि को समझना चाहिए।

विशेष—यश मिलता है कर्त्तव्यनिष्ठा से और सदाचार से। अतः इन सभी का सत्कार करने पर लोक में यश प्राप्त होता है।

पञ्च त्वानुगमिष्यन्ति यत्र यत्र गमिष्यसि।
मित्राण्यमित्रा मध्यस्था उपजीव्योपजीविनः ॥ ८१ ॥

शब्दार्थ—यत्र यत्र = जहाँ-जहाँ, गमिष्यसि = जाओगे, पञ्च = ये पाँचों, त्वाम् = आपका, अनुगमिष्यन्ति = अनुगमन करेगें अर्थात् पीछे जायेंगे; मित्राणि = मित्र, अमित्राणि = शत्रु, मध्यस्थ = तटस्थ, उपजीव्योपजीविनः = शरण देने वाले और शरण में रहने वाले।

हिन्दी—हे धृतराष्ट्र ! आप जहाँ-जहाँ जायेंगे आपके पीछे ये पाँच सदा आपका अनुगमन करेगें—मित्र, शत्रु, तटस्थ, शरण देने वाले और शरण में रहने वाले।

विशेष—ये पाँचों जीवन में सर्वत्र प्राप्त हो जाते हैं। क्योंकि शत्रु, मित्र और उदासीन ये व्यवहार से ही उत्पन्न हो जाते हैं। व्यवहार होना स्वाभाविक ही है। शरण्य और शरणागत होना भी उसी तरह स्वाभाविक ही है।

पञ्चेन्द्रियस्य मर्त्यस्य छिद्रं चेदेकमिन्द्रियम्।
ततोऽस्य स्रवति प्रज्ञा दृतेः पात्रादिवोदकम्॥ ८२॥

शब्दार्थ—पञ्चेन्द्रियस्य=पांच इन्द्रियों वाले (चक्षु-श्रोत्र-त्वक्-घ्राण-रसना) मर्त्यस्य=मनुष्य की, एकमिन्द्रियम्=एक भी इन्द्रिय में, छिद्रम्=छेद, चेत्=हो, ततः=उसके बाद, अस्य=इसकी, प्रज्ञा=बुद्धि, स्रवति=बह जाती है, इव=जैसे, दृतेः=चमड़े के, पात्रात्=पात्र (मशक) से, उदकम्=जल।

हिन्दी—मनुष्य की पाँचों इन्द्रियों में से यदि एक भी छिद्र रूप हो तो उसकी बुद्धि समाप्त हो जाती है। जैसे मशक (चमड़े का पात्र) में छेद होने से सारा पानी निकल जाता है।

विशेष—पानी रखने के चमड़े के पात्र को मशक कहते हैं। यदि उस चमड़े के मशक में कहीं किसी प्रकार का छेद है तो सारा पानी बाहर निकल जायेगा। उसी प्रकार मनुष्य की पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ में से किसी एक में भी छिद्र हो अर्थात् उसके वश में न हो तो उसकी बुद्धि नष्ट हो जायेगी और बुद्धिनाश होने पर मनुष्य का विनाश हो जाता है।

षड् दोषाः पुरुषेणेह हातव्या भूतिमिच्छता।
निद्रा तन्द्रा भयं क्रोध आलस्यं दीर्घसूत्रता॥ ८३॥

शब्दार्थ—इह=इस संसार में, भूतिमिच्छता=अभ्युदय चाहने वाले, पुरुषेण=पुरुष के द्वारा, षड्दोषाः=छः दोषों को, हातव्या=छोड़ देना चाहिए, निद्रा=अधिक सोना, तन्द्रा=शिथिलता, क्रोधः=क्रोध, आलस्यम्=आलस्य, दीर्घसूत्रता=किसी काम को बहुत देर से करने की प्रवृत्ति।

हिन्दी—इस संसार में अभ्युदय चाहने वाले मनुष्य को इन छः दोषों को छोड़ देना चाहिए—निद्रा, तन्द्रा, भय, क्रोध और देर से काम करने की प्रवृत्ति।

विशेष—शरीर-स्थित ये दोष मनुष्य के महान् शत्रु हैं। इसके ऊपर विजय पाने से ही कल्याण होता है। इनके वशीभूत होने पर जैसे शत्रु अवसर पाकर अपने विरोधियों को मार देता है, वैसे मनुष्य भी इसके वशीभूत होने पर स्वयं नष्ट हो जाता है।

षडिमान् पुरुषो जह्याद् भिन्नां नावमिवार्णवे।
अप्रवक्तारमाचार्यमनधीयानमृत्विजम्॥ ८४॥
अरक्षितारं राजानं भार्यां चाप्रियवादिनीम्।
ग्रामकामं च गोपालं वनकामं च नापितम्॥ ८५॥

शब्दार्थ--पुरुषः=पुरुष, षडिमान्=इन छः को, जह्यात्=छोड़ दे, अर्णवे=समुद्र में, भिन्नाम्=टूटी, नावमिव=नाव के समान, अप्रवक्तारम्=न पढ़ाने वाले, आचार्यम्=आचार्य को; अनधीयानम्=न पढ़ने वाले, ऋत्विजम्=ऋत्विक् को; अरक्षितारम्=रक्षा न करने वाले, राजानम्=राजा को; च=और, अप्रियवादिनम्=कटु बोलने वाली, भार्याम्=पत्नी को; ग्रामकामम्=ग्राम में रहने की इच्छा रखने वाले, गोपालम्=ग्वाले को; च=और, वनकामम्=वन में रहने की इच्छा वाले, नापितम्=नाई को।

हिन्दी--मनुष्य इन छः वस्तुओं को छोड़ दे जैसे समुद्र में छेद युक्त नाव को छोड़ दिया जाता है। यथा--न बोलने वाले आचार्य को, मन्त्र न पढ़ने वाले ऋत्विज को, रक्षा न करने वाले राजा को, कटु बोलने वाली स्त्री को, ग्राम में रहने वाले ग्वाले को और वन में रहने की इच्छा वाले नाई को।

विशेष--जिसकी जहाँ आवश्यकता हो वह वहाँ न रहे, तो ऐसी स्थिति में व्यवस्था कैसे होगी ? अर्थात् जिसका जो काम है यदि वह न करे तो उस समय अव्यवस्था हो जायेगी। इसलिए नीतिकार ने उक्त सभी वस्तुओं और पदार्थों को छोड़ देने का विधान किया है।

षडेव तु गुणाः पुंसां न हातव्याः कदाचन।
सत्यं दानमनालस्यमनसूया क्षमा धृतिः॥ ८६॥

शब्दार्थ—पुंसाम्=पुरुष को, षडेव=इन छः, गुणाः=गुणों को, कदाचन=कभी भी, न हातव्याः=नहीं छोड़ना चाहिए। सत्यम्=सत्य बोलना, दानम्=दान देना, अनालस्यम्=आलस्य न छोड़ना अर्थात् पुरुषार्थ, अनसूया=किसी से द्वेष नहीं रखना, क्षमा=क्षमा करना, धृतिः=धैर्य रखना।

हिन्दी--इन छः गुणों को पुरुष को कभी भी नहीं छोड़ना चाहिए; यथा--सत्य बोलना, दान देना, आलस्य नहीं करना, द्वेष नहीं रखना, क्षमा करना और धैर्य रखना।

विशेष—गुणों के संग्रह से लोककल्याण और अपना भी कल्याण होता है।

अर्थागमो नित्यमरोगिता च प्रिया च भार्या प्रियवादिनी च।
वश्यश्च पुत्रोऽर्थकरी च विद्या षड् जीवलोकस्य सुखानि राजन्॥ ८७॥

शब्दार्थ—हे राजन्!=राजन्, अर्थागमः=धन प्राप्त होना, नित्यमरोगिता=नित्य नीरोग रहना, च=और, भार्या=पत्नी, प्रियवादिनी=प्रिय बोलने वाली, च=और, वश्यः=वश में रहने वाला, पुत्रः=पुत्र, च=और, अर्थकरी=धन देने वाली, विद्या=विद्या का होना, षड्=छः, जीवलोकस्य=संसार के, सुखानि=सुखकारक हैं।

हिन्दी—हे राजन्! इस संसार में इन छः के द्वारा सुख मिलता है—धन प्राप्त होना, नित्य नीरोग रहना, प्रिय एवं प्रिय बोलने वाली पत्नी का होना, पुत्र का वश में होना और अर्थकरी विद्या का ज्ञान होना।

विशेष—इन छः के द्वारा संसार में सुख मिलता है। अतएव ये सुखकारक मा गये हैं।

षण्णामात्मनि नित्यानामैश्वर्यं योऽधिगच्छति।
न स पापैः कुतोऽनर्थैर्युज्यते विजितेन्द्रियः॥ ८८॥

शब्दार्थ—यः=जो, आत्मनि=मन में, आत्मा में, नित्यानाम्=नित्य वर्तमान षण्णाम्=छः (काम-क्रोध-मद-लोभ-मात्सर्य-मोह), ऐश्वर्यम्=ऐश्वर्य को, अधिगच्छति =प्राप्त कर लेता है अर्थात् वश में कर लेता है, सः=वह, विजितेन्द्रियः=इन्द्रियों को वश में रखने वाला, न पापैः=पापों से लिप्त नहीं होता, अनर्थैः=अनर्थों से, कुतः=कैसे, युज्यते=युक्त हो सकता है।

हिन्दी—जो मनुष्य मन में नित्य वर्तमान छः ऐश्वर्यों (काम, क्रोध, मोह, लोभ, मद और मात्सर्य) को वश में कर लेता है, वह जितेन्द्रिय पुरुष पापों से युक्त नहीं होता है, तो अनर्थों से कैसे युक्त हो सकता है?

विशेष—जो मनुष्य इन कामादि छः दोषों को वश कर लेता है, वह बन्धनों एवं पापों से मुक्त हो जाता है।

षडिमे षट्सु जीवन्ति सप्तमो नोपलभ्यते।
चौराः प्रमत्ते जीवन्ति व्याधितेषु चिकित्सकाः॥ ८९॥
प्रमदाः कामयानेषु यजमानेषु याजकाः।
राजा विवदमानेषु नित्यं मूर्खेषु पण्डिताः॥ ९०॥

शब्दार्थ—षडिमे=ये छः, षट्सु=छः में, जीवन्ति=जीविका चलाते हैं, सप्तम =सातवाँ प्रकार, नोपलभ्यते=उपलब्ध नहीं होता है। चौराः=चोर लोग, प्रमत्ते= असावधानों से, जीवन्ति=जीविका चलाते हैं, व्याधितेषु=रोगियों से, चिकित्सकाः =वैद्य (डाक्टर) जीविका चलाते हैं; प्रमदाः=मद वाली स्त्रियाँ, कामयानेषु= कामी पुरुषों से; याजकाः=पुरोहित, यजमानेषु=यजमानों से, विवदमानेषु=झगड़ने वालों से, राजा=राजा, पण्डिताः=पण्डित लोग, नित्यं मूर्खेषु=नित्य मूर्खों (जीविका चलाते हैं)।

हिन्दी—छः प्रकार के लोग छः प्रकार के मनुष्यों से अपनी जीविका चलाते हैं सातवाँ प्रकार उपलब्ध नहीं होता है; यथा—चोर असावधान पुरुषों से, वैद्य (डाक्टर) रोगी से, मद वाली स्त्रियाँ कामी पुरुषों से, पुरोहित यजमानों से, झगड़ने वालों से राजा और मूर्खों से विद्वान् लोग (अपनी जीविका चलाते हैं।)

विशेष—हीरों का महत्त्व समान पत्थरों में ही होता है। सब पत्थर ही हीरा हो जाय, तब हीरे का क्या महत्त्व हो सकता है। उसी प्रकार उपर्युक्त सभी छः वस्तुओं के महत्त्व समानतया बहुतायत वस्तुओं के बीच गिनाये गये है।

षडिमानि विनश्यन्ति मुहूर्त्तमनवेक्षणात्।
गावः सेवा कृषिर्भार्या विद्या वृषलसङ्गतिः॥ ९१॥

शब्दार्थ—इमानि=ये, षट्=छः, विनश्यन्ति=नष्ट हो जाते हैं, मुहूर्त्तम्=क्षण भर भी, अनवेक्षणात्=देख-रेख नहीं करने के कारण, गावः=गायें, सेवा=नौकरी, कृषिः=खेती, भार्या=पत्नी, विद्या=विद्या, वृषलसंगतिः=नीच पुरुषों का संग।

हिन्दी—ये छः क्षणभर भी देख-रेख नहीं करने के कारण नष्ट हो जाते हैं—गायें, सेवा, खेती, स्त्री, विद्या और नीच पुरुषों से मेल-जोल।

षडेते ह्यवमन्यन्ते नित्यं पूर्वोपकारिणम्।
आचार्यं शिक्षिताः शिष्याः कृतदाराश्च मातरम्॥ ९२॥
नारीं विगतकामास्तु कृतार्थाश्च प्रयोजकम्।
नावं निस्तीर्णकान्तारा आतुराश्च चिकित्सितम्॥ ९३॥

शब्दार्थ—एते=ये, षट्=छः, पूर्वोपकारिणम्=पूर्व उपकारी को, नित्यम्=सदा, अवमन्यन्ते=अवमानना करते हैं। शिक्षिताः शिष्याः=शिक्षा समाप्त करने के बाद शिष्य, आचार्यम्=गुरु को, कृतदाराश्च=विवाह करने के बाद बेटे, मातरम्=माता को, विगतकामास्तु=कामवासना शान्त होने के बाद मनुष्य, नारीम्=नारी को, कृतार्थाः=कृतकार्य होने पर, प्रयोजकम्=सहायक को, निस्तीर्णकान्ताराः=(कान्तार=जल) नदी की दुर्गम धारा पार करने वाले, नावम्=नाव को, आतुराः=रोगमुक्त होने के बाद रोगी, चिकित्सकम्=वैद्य को।

हिन्दी—ये छः अपने पूर्व उपकारी की अवमानना करते हैं—शिक्षा समाप्त हो जाने पर शिष्य अपने गुरुओं की, विवाहित बेटे अपनी माता की, कामवासना पूरी हो जाने के बाद मनुष्य स्त्री की, कार्य होने के बाद सहायकों की, दुर्गम धाराओं को पार करने के बाद मनुष्य नाव की तथा रोग शान्त हो जाने के बाद रोगी वैद्य की।

विशेष—नीतिकार ने बहुत ही अनुभवों के आधार पर इन वचनों को कहा है। कारण मनुष्य तब तक ही किसी से अपेक्षा रखता है जब तक उसका कार्य नहीं हो जाता, कार्य होने पर उसे छोड़ देता है। यही संसार का सामान्य नियम है। इसी को इन पद्यों में दर्शाने का प्रयास किया है।

आरोग्यमानृण्यमविप्रवासः सद्भिर्मनुष्यैः सह सम्प्रयोगः।
स्वप्रत्ययावृत्तिरभीतवासः षड् जीवलोकस्य सुखानि राजन्॥ ९४॥

शब्दार्थ—राजन्=हे राजन्! षड्=छः, जीवलोकस्य=जीवलोक के, सुखानि=सुख हैं। आरोग्यम्=नीरोग रहना, आनृण्यम्=ऋणी न होना, अविप्रवासः=परदेश में न रहना, सद्भिः मनुष्यैः=सज्जनों के साथ, सम्प्रयोगः=मेल होना, स्वप्रत्ययावृत्तिः=अपने अधीन वृत्ति, अभीतवासः=निडर होकर रहना।

हिन्दी—हे राजन्! नीरोग रहना, ऋणी न रहना, परदेश में वास न करना, सज्जन मनुष्यों के साथ मेल-जोल रहना, अपने अधीन जीविका होना, निडर होकर रहना—ये छः जीवलोक के सुख हैं।

विशेष—मनुष्य उपर्युक्त छः परिस्थितियों में रहने से दुःखी हो जाता है तथ सबसे प्रिय शरीर और आत्मा को छोड़ने के लिए बाध्य हो जाता है। परन्तु ये सब वस्तुएँ प्राप्त होने पर संसार में मनुष्य सुखी माना जाता है।

ईर्ष्यी घृणी न सन्तुष्टः क्रोधनो नित्यशङ्कितः।
परभाग्योपजीवी च षडेते नित्यदुःखिताः॥ ९५॥

शब्दार्थ--इर्ष्यी=ईर्ष्या करने वाला, घृणी=घृणा करने वाला, न+सन्तुष्टः= सन्तुष्ट न रहने वाला, क्रोधनः=क्रोध करने वाला, नित्यशङ्कितः=हमेशा शङ्का करने वाला, परभाग्योपजीवी=दूसरे के भाग्य से जीने वाला, एते=ये, षड्=छः, नित्य-दुःखिताः=नित्य दुःखी रहते हैं।

हिन्दी--ईर्ष्यालु, घृणा करने वाला, सन्तुष्ट न होने वाला, क्रोध करने वाला हमेशा शंका करने वाला तथा दूसरे के भाग्य से जीने वाला—ये छः सदा दुःखी रहते हैं।

विशेष--जिस प्रकार इस संसार में स्वाभाविक सुख माने जाते हैं वैसे ही स्वाभाविक दुःख भी होते हैं। अतः इन छः के आधार पर संसार में जीवन बिताने वाले सदा दुःखी रहते हैं।

सप्त दोषाः सदा राज्ञा हातव्या व्यसनोदयाः।
प्रायशो यैर्विनश्यन्ति कृतमूला अपीश्वराः॥ ९६॥
स्त्रियोऽक्षा मृगया पानं वाक्पारुष्यं च पञ्चमम्।
महच्च दण्डपारुष्यमर्थदूषणमेव च॥ ९७॥

शब्दार्थ—सप्तदोषाः=सात दोष, राज्ञा=राजा के द्वारा, सदा हातव्याः=सदा छोड़ देना चाहिए, व्यसनोदयाः=व्यसन को जन्म देने वाले, यैः=जिन दोषों के द्वारा, कृतमूलाः=बद्धमूल वाले, अपि+ईश्वराः=राजा भी, प्रायशः=प्रायः विनश्यन्ति=नष्ट हो जाते हैं, स्त्रियः=स्त्रियों की आसक्ति, अक्षा=जुआ, मृगया =शिकार, पानम्=मदिरापान, पञ्चमम्=पाँचवाँ, वाक्पारुष्यम्=वाणी की कठोरता, महत् च=बड़ा, दण्डपारुष्यम्=दण्ड की कठोरता, अर्थदूषणम्=धन का दुरुपयोग।

हिन्दी—स्त्रियों की आसक्ति, जुआ, शिकार, मद्यपान, वाणी की कठोरता अत्यन्त कठोर दण्ड तथा धन का दुरुपयोग करना—ये सात विनाशकारी दोष राजा को सर्वदा त्याग देना चाहिए। इनसे समर्थ राजा भी प्रायः नष्ट हो जाते हैं।

विशेष--राजा जैसे सर्वसुख उपलब्ध होने के कारण प्रभु होते हैं, वैसे ही थोड़ी सी असावधानी होने पर उनमें अनेक प्रकार के दोष उत्पन्न हो जाते हैं। इससे सारा राज्य ही नष्ट हो जाता है। इसी प्रसङ्ग में सात दोष गिनाये गये हैं। जिसके परिहार से सुख और ग्रहण से सर्वविध दुःख राजा को प्राप्त हो जाते हैं।

अष्टौ पूर्वनिमित्तानि नरस्य विनशिष्यतः।
ब्राह्मणान् प्रथमं द्वेष्टि ब्राह्मणैश्च विरुध्यते॥ ९८॥

ब्राह्मणस्वानि चादत्ते ब्राह्मणांश्च जिघांसति।
रमते निन्दया चैषां प्रशंसां नाभिनन्दति ॥ ९९ ॥
नैनान् स्मरति कृत्येषु याचितश्चाभ्यसूयति।
एतान् दोषान्नरः प्राज्ञो बुद्ध्येद् बुद्ध्वा विवर्जयेत् ॥ १०० ॥

शब्दार्थ–अष्टौ = आठ, पूर्वनिमित्तानि = पूर्व ज्ञापक, नरस्य = मनुष्य के, विनशिष्यतः = विनाश को प्राप्त होने वाले के लक्षण माने जाते हैं, ब्राह्मणान् = ब्राह्मणों को, प्रथमम् = पहले, द्वेष्टि = द्वेष करता है, ब्राह्मणैश्च = ब्राह्मणों के साथ, च = और, विरुध्यते = विरोध करता है, ब्राह्मणस्वानि = ब्राह्मणों के धनों को, च = और, आदत्ते = ग्रहण करता है, ब्राह्मणान् = ब्राह्मणों को, च = और, जिघांसति = मारना चाहता है, रमते = प्रसन्न होता है, निन्दया = निन्दा से, च = और, एषाम् = इनको, प्रशंसाम् = प्रशंसा को, न + अभिनन्दति = अभिनन्दन नहीं करता है, न + एनान् = नहीं इनको, स्मरति = स्मरण करता है, कृत्येषु = कार्यों में, याचितः = माँगा हुआ, च = और, अभ्यसूयति = असूया करता है, एतान् = इनके, दोषान् = दोषों को, नरः = मनुष्य, प्राज्ञः = बुद्धिमान्, बुध्येत् = जाने, बुद्ध्वा = समझकर, विवर्जयेत् = छोड़ दे।

हिन्दी—विनाश को प्राप्त होने वाले मनुष्यों के ये आठ लक्षण होते हैं—(१) वह सर्वप्रथम ब्राह्मणों से मन से द्वेष करता है, (२) ब्राह्मणों से विरोध (कर्म द्वारा) करता है, (३) ब्राह्मणों के धनों को छीनता है, (४) ब्राह्मणों को मारने का प्रयास करता है, (५) ब्राह्मणों की निन्दा से प्रसन्न होता है, (६) ब्राह्मणों की प्रशंसा को नहीं चाहता है, (७) उचित अवसरों पर ब्राह्मणों को स्मरण नहीं करता है तथा (८) याचना करने पर इनसे असूया करता है। अतः बुद्धिमान् मनुष्य को चाहिए कि इन दोषों को समझें और समझकर छोड़ दें।

विशेष—वेद, पुराण तथा उपनिषदों के मर्म के अनुसार बुद्धि-प्रधान मनुष्य को ब्राह्मण कहा जाता है। अतः बुद्धि के अनुसार जीनेवाले तथा उनके अनुसार व्यवहार करने वाले से विरोध तथा असूया का अभिप्राय बुद्धि से विरोध करना कहा जा सकता है। ऐसी स्थिति में 'बुद्धिर्यस्य बलं तस्य' को मानने वाले के पास समस्त बल होने के कारण विरोध रखने वाला कालान्तर में विनाश को प्राप्त हो जाता है।

अष्टाविमानि हर्षस्य नवनीतानि भारत।
वर्तमानानि दृश्यन्ते तान्येव स्वसुखान्यपि ॥ १०१ ॥
समागमश्च सखिभिर्महांश्चैव धनागमः।
पुत्रेण च परिष्वङ्गः सन्निपातश्च मैथुने ॥ १०२ ॥
समये च प्रियालापः स्वयूथ्येषु समुन्नतिः।
अभिप्रेतस्य लाभश्च पूजा च जनसंसदि ॥ १०३ ॥

शब्दार्थ—अष्टौ = आठ, इमानि = ये, हर्षस्य = हर्ष के, नवनीतानि = सार, भारत = हे भरतकुल के धृतराष्ट्र ! वर्तमानानि = वर्तमान, दृश्यन्ते = देखे जाते हैं, तानि = वे, एव = ही, स्वसुखानि = अपने सुख, अपि = भी, समागमः = मिलना, च

=और, सखिभिः=मित्रों के साथ, महान्=बड़े, च=और, एव=ही, धनागमः=धन की प्राप्ति, पुत्रेण=पुत्र से, च=और, परिष्वङ्गः=लिपट कर मिलना, सन्निपातः=साथ रति से निवृत्त होना, च=और, मैथुने=मैथुन में, समये=समय पर, च=और, प्रियालापः=प्रिय वातचीत करना, स्वयूथ्येषु=अपने समुदाय में, समुन्नतिः=उन्नति, अभिप्रेतस्य=चाही हुई वस्तु की, लाभः=प्राप्ति, च=और, पूजा=आदर, च=और, जनसंसदि=जनसभा में।

हिन्दी—हे भरतकुल में उत्पन्न धृतराष्ट्र ! ये आठ हर्ष के नवनीत के समान साररूप ही हैं—१. मित्रों से मिलना, २. महान् धन की प्राप्ति, ३. पुत्र से लिपटकर मिलना, ४. मैथुन में दोनों की साथ-साथ निवृत्ति, ५. समय पर प्रिय के साथ बातचीत, ६. स्वसमुदाय में उन्नति, ७. इच्छित वस्तु की प्राप्ति और ८. जनता में सम्मान।

विशेष—स्ववर्ग में सम्मान एवं उन्नति प्राप्त करने से सुख की प्राप्ति होती है, अतः वह सुख भी सुख नहीं है, जिसे बन्धुवर्ग उपभोग न करें और शत्रु देखकर सन्तप्त न हो। इसलिए स्ववर्ग में ही लाभ-हानि होना सुख-दुःख का कारण बनता है।

अष्टौ गुणाः पुरुषं दीपयन्ति प्रज्ञा च कौल्यं च दमः श्रुतं च।
पराक्रमश्चाबहुभाषिता च दानं यथाशक्ति कृतज्ञता च॥ १०४॥

शब्दार्थ—अष्टौ=आठ, गुणाः=गुण, पुरुषम्=पुरुष को, दीपयन्ति=यश बढ़ाते हैं, प्रज्ञा=बुद्धि, च=और, कौल्यम्=कुलीनता, च=और, दमः=इन्द्रिय-संयम, श्रुतम्=शास्त्रज्ञान, च=और, पराक्रमः=पराक्रम, च=और, अबहुभाषिता=बहुत नहीं बोलना, च=और, दानम्=यथाशक्ति दान देना, कृतज्ञता=कृतज्ञ होना, च=और।

हिन्दी—ये आठ गुण मनुष्य के यश को बढ़ाते हैं—बुद्धि, कुल, इन्द्रिय-संयम, पराक्रम, कम बोलना, यथाशक्ति दान देना तथा कृतज्ञ होना।

नवद्वारमिदं वेश्म त्रिस्थूणं पञ्चसाक्षिकम्।
क्षेत्रज्ञाधिष्ठितं विद्वान् यो वेद स परः कविः॥ १०५॥

शब्दार्थ—यः=जो, विद्वान्=ज्ञानवान्, नवद्वारम्=नौ दरवाजे वाले, इदम् वेश्म=इस शरीर रूपी घर में, त्रिस्थूणम्=वात, पित्त एवं श्लेष्म तीन खूटें, पञ्चसाक्षिकम्=चक्षु, श्रोत्र, त्वक्, घ्राण एवं रसना—ये पञ्च ज्ञानेन्द्रियाँ साक्षी हैं, क्षेत्रज्ञाधिष्ठितम्=क्षेत्रज्ञाधिष्ठित जीवात्मा को, यः विद्वान्=जो विद्वान्, वेद=जानता है, सः=वह, परः कविः=परम ज्ञानी है।

हिन्दी—जो विद्वान् नौ दरवाजों वाले, तीन खम्भों वाले, पांच साक्षिओं (गवाहों) वाले जीवात्मा के निवासस्थान इस शरीर रूपी घर को जानता है, वह परम ज्ञानी है।

विशेष—उपनिषद्, वेदान्त-दर्शन एवं गीतादि शास्त्रों में शरीर को जीवात्मा का निवासस्थान माना गया है। 'इसके ज्ञान से अण्ड से लेकर ब्रह्माण्ड तक का ज्ञान हो जाता है। इसलिए इसके ज्ञानी को परम ज्ञानी तथा परमहंस माना गया है।

दश धर्मं न जानन्ति धृतराष्ट्र ! निबोध तान् ।
मत्तः प्रमत्तः उन्मत्तः श्रान्तः क्रुद्धो बुभुक्षितः ॥ १०६ ॥
त्वरमाणश्च लुब्धश्च भीतः कामी च ते दश ।
तस्मादेतेषु सर्वेषु न प्रसज्जेत पण्डितः ॥ १०७ ॥

शब्दार्थ—धृतराष्ट्र ! = महाराज धृतराष्ट्र ! दश = दश प्रकार के लोग, धर्मम् = धर्म को, न जानन्ति = नहीं जानते हैं, तान् = उन्हें, निबोध = जानें । मत्तः = नशे में मतवाला, प्रमत्तः = असावधान, उन्मत्तः = पागल, श्रान्तः = थका हुआ, क्रुद्धः = क्रोधी, बुभुक्षितः = भूखा, त्वरमाणः = शीघ्र गमन करने वाला, लुब्धः = लोभी, भीतः = भयभीत, कामी = कामातुर, च = और, ते दश = ते दश, तस्मात् = इसलिए, एतेषु = इन सबों में, पण्डितः = विवेकशील, न प्रसज्जेत = आसक्ति न बढ़ावें ।

हिन्दी—महाराज धृतराष्ट्र ! दश प्रकार के लोग धर्म के विषय में नहीं जानते हैं, उनके बारे में सुनिए—नशे में मतवाला, असावधान, पागल, थका हुआ, क्रोधी, भूखा, जल्दबाज, लोभी, डरा हुआ और कामी—ये दश हैं । इसलिए इन सब लोगों में विवेकशील व्यक्ति आसक्ति न बढ़ावे ।

विशेष—धर्म का पालन एवं ज्ञान विवेकशील प्राणी ही कर सकता है । गिनाये गये लोगों में विवेक का अभाव होने के कारण ये धर्म का विचार करने में सर्वथा असमर्थ होते हैं । अतः उपर्युक्त गिनाये गये जनों से आसक्ति नहीं रखना चाहिए ।

अत्रैवोदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
पुत्रार्थमसुरेन्द्रेण गीतं चैव सुधन्वना ॥ १०८ ॥

शब्दार्थ—अत्र = यहाँ, एव = ही, उदाहरन्ति = कहते हैं, इमम् = इस, इतिहासम् इतिहास को, पुरातनम् = पुराने को, पुत्रार्थम् = पुत्र के लिए, असुरेन्द्रेण = असुरों के स्वामी ने, गीतम् = कहा, च = और, एव = ही, सुधन्वा = सुधन्वा ने ।

हिन्दी—इस विषय में असुरों के राजा (प्रह्लाद) ने सुधन्वा के साथ पुत्र को उपदेश किया था । उस पुराने इतिहास का (विद्वान् लोग) उदाहरण देते हैं ।

विशेष—इतिहास-पुराण के द्वारा यथार्थ वस्तुओं का समर्थन किया जाता है । इसलिए विदुरजी ने धृतराष्ट्र को प्राचीन इतिहास के द्वारा प्रस्तुत प्रसङ्ग को दृढ़ किया है ।

यः काममन्यू प्रजहाति राजा पात्रे प्रतिष्ठापयते धनं च ।
विशेषविच्छ्रुतवान् क्षिप्रकारी तं सर्वलोकः कुरुते प्रणामम् ॥ १०९ ॥

शब्दार्थ—यः = जो, काममन्यू = काम और क्रोध को, प्रजहाति = छोड़ देता है, राजा = राजा, पात्रे = योग्य व्यक्ति में, प्रतिष्ठापयते = स्थापित करता है, धनम् = धन को, च = और, विशेषवित् = विशेषज्ञ, श्रुतवान् = विद्वान्, क्षिप्रकारी = शीघ्र कार्य करने वाला, तम् = उसको, सर्वलोकः = सभी लोग, कुरुते = करते हैं, प्रणामम् = प्रणाम को ।

हिन्दी--जो राजा काम और क्रोध का परित्याग कर देता है, योग्य व्यक्ति को धनादि प्रदान करता है, कार्य की ऊँच-नीच को जानता है, शास्त्रों का ज्ञान रखने वाला और अपने कर्त्तव्य को शीघ्र पूरा करने वाला है, उसे सब लोग नमस्कार करते हैं।

विशेष—इस श्लोक में प्रयुक्त मन्यु शब्द के विषय में विचार करना आवश्यक है, क्योंकि मन्यु का ही पर्यायवाची क्रोध माना जाता है। परन्तु इन दोनों शब्दों में पर्याप्त अन्तर हैं। क्रोध के आवेग को अपने में आत्मसात् कर लेना, किन्तु बाहर प्रदर्शित नहीं करना मन्यु कहलाता है। लेकिन क्रोध के आवेग में मनुष्य अपना विवेक खो देता है। अतः क्रोध की अपेक्षा मन्यु को अच्छा माना गया है, देखें—'शक्योऽस्य मन्युर्भवता विनेतुं गाः कोटिशः स्पर्शयता घटोघ्नीः' (रघु० २।४९)।

जानाति विश्वासयितुं मनुष्यान् विज्ञातदोषेषु दधाति दण्डम्।
जानाति मात्रां च तथा क्षमां च तं तादृशं श्रीर्जुषते समग्रा ॥ ११० ॥

शब्दार्थ--जानाति = जानता है, विश्वासयितुम् = विश्वास दिलाना, मनुष्यान् = मनुष्यों को, विज्ञातदोषेषु = जिनका दोष जान लिया है उन पर, दधाति = धारण करता है, दण्डम् = दण्ड को, जानाति = जानता है, मात्राम् = मात्रा को, च = और, तथा = भी, क्षमाम् = क्षमा को, च = और, तम् = उसको, तादृशम् = उस प्रकार के, श्रीः = लक्ष्मी, जुषते = सेवन करती हैं, समग्राम् = सम्पूर्ण।

हिन्दी—जो राजा लोगों में विश्वास उत्पन्न करना जानता है, जिसका दोष सिद्ध हो गया है वह उन्हीं को दण्डित करता है, जो दण्ड देने की मात्रा और क्षमा का उपयोग जानता है, उस राजा की सेवा में सम्पूर्ण लक्ष्मी चली जाती है।

विशेष--लक्ष्मी विवेकशील मनुष्य के पास चिरकाल तक निवास करती है। अविवेकी तथा क्षिप्रकारी जनों के पास से शीघ्र चली जाती है। साथ ही उस मनुष्य का लोक में उपहास भी होता है।

सुदुर्बलं नावजानाति कञ्चित् युक्तो रिपुं सेवते बुद्धिपूर्वम्।
न विग्रहं रोचयते बलस्थैः काले च यो विक्रमते स धीरः ॥ १११ ॥

शब्दार्थ—सुदुर्बलम् = अति दुर्बल को, न = नहीं, अवजानाति = उपेक्षा करता है, कञ्चित् = किसी को, युक्तः = प्रमाद रहित होकर, रिपुम् = शत्रु को, सेवते = सेवन करता है, बुद्धिपूर्वम् = ज्ञानपूर्वक, न = नहीं, विग्रहम् = लड़ाई-झगड़े को, रोचयते = चाहता है, बलस्थैः = बलवानों से, काले = समय आने पर, च = और, यः = जो, विक्रमते = पराक्रम दिखाता है, सः = वह, धीरः = वीर कहलाता है।

हिन्दी--जो किसी दुर्बल का तिरस्कार नहीं करता, सावधानीपूर्वक शत्रु के साथ बुद्धिपूर्वक व्यवहार करता है, बलवानों के साथ युद्ध नहीं चाहता और उचित समय पर पराक्रम दिखाता है, वही वीर है।

विशेष--राजनीति के नियमों के अनुसार सन्धि-विग्रह एवं व्यवहार करना

राजा के लिए उचित होता है। केवल शक्ति के द्वारा राज्य-कार्य कभी भी सुस्थिर नहीं हो सकता है। इसलिए राजनीति में षडङ्गों को ध्यान में रखते हुए कार्य करना सर्वथा उचित होता है।

प्राप्यापदं न व्यथते कदाचिद् उद्योगमन्विच्छति चाप्रमत्तः।
दुःखं च काले सहते महात्मा धुरन्धरस्तस्य जिताः सपत्नाः॥ ११२॥

शब्दार्थ—प्राप्य=प्राप्त कर, आपदम्=दुःख को, न=नहीं, व्यथते=दुःखी होता है, कदाचित्=कभी भी, उद्योगम्=पुरुषार्थ को, अन्विच्छति=करना चाहता है, च=और, अप्रमत्तः=प्रमाद रहित होकर, दुःखम्=दुःख को, च=और, काले=समय पड़ने पर, सहते=सहन करता है, महात्मा=श्रेष्ठ पुरुष, धुरन्धरः=कार्य करने में समर्थ (होता है), तस्य=उसके, जिताः=जीते हुए, सपत्नाः=शत्रुगण।

हिन्दी—हे राजन्! जो मनुष्य विपत्ति आने पर भी कभी दुःखी नहीं होता तथा सावधानीपूर्वक उद्योग का आश्रय लेता है और समय पड़ने पर दुःख सहन करता है, वही अपने कार्यों को स्वयं करने में समर्थ होता है, उसके शत्रु पराजित हो जाते हैं।

विशेष—सुख-दुःख में एकरूपता होना श्रेष्ठ पुरुष का लक्षण है तथा विपत्ति के समय धैर्य धारण करना और अभ्युदय के समय क्षमा प्रदान करना—ये सब श्रेष्ठ पुरुष के व्यवहार के द्वारा देखा जाता है। नीतिकार ने भी इसी ओर इंगित किया है।

अनर्थकं विप्रवासं गृहेभ्यः पापैः सन्धिं परदाराभिमर्शम्।
दम्भं स्तैन्यं पैशुन्यं मद्यपानं न सेवते यश्च सुखी सदैव॥ ११३॥

शब्दार्थ—गृहेभ्यः=घरों से, अनर्थकम्=बिना कारण, विप्रवासम्=बाहर रहना, पापैः=पापी मनुष्यों से, सन्धिम्=सम्बन्ध रखना, परदाराभिमर्शनम्=दूसरों की स्त्री से सम्पर्क रखना, दम्भम्=दम्भ को, स्तैन्यम्=चोरी, पैशुन्यम्=चुगली, मद्यपानम्=शराब पीना, न=नहीं, सेवते=सेवन करता है, यः=जो, च=और, सुखी=सुखी जीवन, सदा=सर्वदा, एव=ही।

हिन्दी—जो व्यर्थ घर से बाहर नहीं जाता, दुष्टों से मेल नहीं रखता है, दूसरे की स्त्री से सम्बन्ध नहीं रखता, पाखण्ड, चोरी, चुगलखोरी तथा मद्यपान नहीं करता है वह सदा सुखी रहता है।

विशेष—सदा सुखी वही रह सकता है जो अनीति के मार्ग पर नहीं चलता है। व्यभिचार तथा मिथ्या प्रवृत्ति में नहीं फँसता है। जीवन के उद्देश्यों को नियमित करते हुए शुभ कार्यों में प्रवृत्त होता है।

न संरम्भेणारभते त्रिवर्गमाकारितः शंसति तत्त्वमेव।
न मित्रार्थे रोचयते विवादं नापूजितः कुप्यति चाप्यमूढः॥ ११४॥

शब्दार्थ—न=नहीं, संरम्भेण=आवेश से, त्रिवर्गम्=धर्म, अर्थ, काम को, आरभते=प्रारम्भ करता है, आकारितः=पूछे जाने पर, तत्त्वम्=सत्य को, शंसति=

कहता है, एव = ही, न = नहीं, मित्रार्थे = मित्र की सम्पत्ति के विषय में, रोचयते = चाहता है, न = नहीं, अपूजितः = पूजा नहीं करने पर, कुप्यति = क्रोध करता है, च = और, अपि = भी, अमूढः = वही ज्ञानवान् कहलाता है।

हिन्दी—जो शीघ्रता के साथ त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ, काम) का आरम्भ नहीं करता, पूछे जाने पर सत्य बात ही बतलाता है, मित्र के लिए विवाद नहीं करना चाहता तथा असम्मान होने पर भी क्रोधित नहीं होता है वही ज्ञानी कहलाता है।

विशेष—सुख-दुःख, लाभ-अलाभ, मान-अपमान में सदैव एक रूप में रहना तथा हर समय यथासम्भव प्रसन्न रहना श्रेष्ठ पुरुष का लक्षण माना जाता है।

न योऽभ्यसूयत्यनुकम्पते च न दुर्बलः प्रातिभाव्यं करोति।
नात्याह किञ्चित् क्षमते विवादं सर्वत्र तादृग् लभते प्रशंसाम् ॥ ११५ ॥

शब्दार्थ—यः = जो, न = नहीं, अभ्यसूयति = निन्दा करता है, न च = और नहीं, अनुकम्पते = दया करता है, न च = और न, दुर्बलः = कमजोर को, प्रातिभाव्यम् = विरोध को, करोति = करता है, न = नहीं, अत्याह = अधिक बोलता है, किञ्चित् = कुछ भी, क्षमते = क्षमा करता है, विवादम् = विवाद को, सर्वत्र = सभी स्थानों में, तादृश = वैसा, लभते = प्राप्त होता है, प्रशंसाम् = प्रशंसा को।

हिन्दी—जो मनुष्य किसी की निन्दा नहीं करता है, दुर्बल जानकर विरोध नहीं करता, अधिक नहीं बोलता, विवाद सहन कर लेता है ऐसा व्यक्ति सर्वत्र प्रशंसा प्राप्त करता है।

विशेष—कम बोलना और गम खाना सर्वत्र अच्छा माना जाता है। साथ ही प्रशंसा और निन्दा से सुखी एवं दुःखी न होना भी श्रेष्ठ पुरुष का लक्षण है।

यो नोद्धतं कुरुते जातु वेषं न पौरुषेणापि विकत्थतेऽन्यान्।
न मूर्च्छितः कटुकान्याह किञ्चित् प्रियं सदा तं कुरुते जनो हि ॥ ११६ ॥

शब्दार्थ—यः = जो, न + उद्धतम् = न बुरा लगने वाला, कुरुते = करता है, जातु = कभी, वेषम् = वेष को, न + पौरुषेण + अपि = पराक्रम से भी नहीं, विकत्थते = निन्दा करता है, अन्यान् = दूसरों को, न मूर्च्छितः = नहीं पीड़ित होकर, कटुकानि = कटुक वचन को, आह = कहता है, किञ्चित् = कुछ भी, प्रियम् = प्रिय, सदा = सर्वदा, तम् = उसको, कुरुते = करता है, जनः = मनुष्य, हि = निश्चय से।

हिन्दी—जो व्यक्ति पुरुषों को बुरा लगने वाला वेष नहीं बनाता, जो बलवान होने पर भी अन्यों की निन्दा नहीं करता और पीड़ित होने पर भी कुछ भी कड़वा नहीं बोलता है उसको सभी लोग प्यार करते हैं।

न वैरमुद्दीपयति प्रशान्तं न दर्पमारोहति नास्तमेति।
न दुर्गतोऽस्मीति करोत्यकार्यं तमार्यशीलं परमाहुरार्याः ॥ ११७ ॥

शब्दार्थ—न = नहीं, वैरम् = विरोध को, उद्दीपयति = प्रज्वलित करता है, प्रशान्तम् = शान्त हुए को, न = नहीं, दर्पम् = अहंकार को, आरोहति = चढ़ता है, न

=नहीं, अस्तम् = नाश को, एति = प्राप्त होता है, न = नहीं, दुर्गतः + अस्मि = दुर्गति को प्राप्त हुआ हूँ, इति=ऐसा समझ कर, करोति = करता है, अकार्यम् = न करने योग्य को, तम् = उसको, आर्यशीलम् = श्रेष्ठ स्वभाव वाला, परम् = अत्यन्त, आहुः = कहते हैं, आर्याः = श्रेष्ठजन।

हिन्दी—जो शत्रुता के शान्त हो जाने पर उसे पुनः नहीं बढ़ाता है, गर्व नहीं करता, हीनता नहीं दिखाता, 'मैं विपत्ति में हूँ' ऐसा सोचकर जो अकार्य नहीं करता, उस श्रेष्ठ आचरण वाले मनुष्य को आर्यजन श्रेष्ठ कहते हैं।

विशेष—अहंकार करना अच्छा नहीं है, परन्तु स्वाभिमान खोना भी अनुचित है। अतः मध्यम मार्ग ही श्रेष्ठ है।

न स्वे सुखे वै कुरुते प्रहर्षं नान्यस्य दुःखे भवति प्रहृष्टः।
दत्वा न पश्चात्कुरुतेऽनुतापं स कथ्यते सत्पुरुषार्यशीलः ॥ ११८ ॥

शब्दार्थ—न = नहीं, स्वे = अपने, सुखे = सुख में, वै = निश्चय से, कुरुते = करता है, प्रहर्षम् = अधिक हर्ष को, न = नहीं, अन्यस्य = दूसरे के, दुःखे = दुःख में, प्रहृष्टः = प्रसन्न, भवति = होता है, दत्वा = देकर, पश्चात्=पीछे, अनुतापम् = सन्ताप को, न कुरुते = नहीं करता है, सः = वह, सत्पुरुषार्यशीलः = श्रेष्ठ मनुष्य अच्छे स्वभाव वाला, कथ्यते = कहा जाता है।

हिन्दी—जो मनुष्य अपने सुख में हर्षित नहीं होता, दूसरे के दुःख के समय हर्ष नहीं मानता, दान देने के बाद सन्तप्त नहीं होता, वह सज्जनों में सदाचारी कहलाता है।

विशेष—सज्जनों का स्वभाव दूसरे के दुःख से दुःखी होना है। सुख के समय उसमें कोई विकार या हर्ष की रेखाएँ नहीं दिखाई देती हैं।

देशाचारान् समयाञ्ज्ञातिधर्मान् बुभूषते यः स परावरज्ञः।
स यत्र तत्राभिगतः सदैव महाजनस्याधिपत्यं करोति ॥ ११९ ॥

शब्दार्थ—देशाचारान् = अनेक देशों के व्यवहारों को, समयान् = संकेतों तथा भाषाओं को, जातिधर्मान् = जातियों के धर्मों को, बुभूषते = प्राप्त करने की इच्छा करता है, यः = जो, सः = वह, परावरज्ञः = ऊँच-नीच को जानने वाला, सः = वह, यत्र तत्र = जहाँ-तहाँ, अभिगतः = प्राप्त हुआ, सदा = सर्वदा, एव = ही, महाजनस्य = श्रेष्ठ पुरुष का, आधिपत्यम् = स्वामित्व, करोति = करता है।

हिन्दी—जो मनुष्य देश के व्यवहार, लोकाचार तथा जातियों के धर्मों को जानने की इच्छा करता है, उसे उत्तम तथा अधम का ज्ञान हो जाता है। वह जहाँ कहीं भी जाता है महान् जनसमुदाय पर आधिपत्य जमा लेता है।

दम्भं मोहं मात्सर्यं पापकृत्यं राजद्विष्टं पैशुनं पूगवैरम्।
मत्तोन्मत्तैर्दुर्जनैश्चापि वादं यः प्रज्ञावान् वर्जयेत् स प्रधानः ॥ १२० ॥

शब्दार्थ—दम्भम् = दम्भ को, मोहम् = मोह को, मत्सरम् = डाह को, पापकृत्यम्

=पापकर्म को, राजद्विष्टम्=राजद्वेष को, पैशुनम्=चुगलखोरी को, पूगवैरम्=समूह से वैरभाव को, मदोन्मत्तः=मदोन्मत्त एवं पागलों से, दुर्जनैः=दुष्ट लोगों से, वादम्=विवाद को, यः=जो, प्रज्ञावान्=बुद्धिमान्, वर्जयेत्=छोड़ देता है, सः=वह, प्रधानः=श्रेष्ठ है।

हिन्दी--जो बुद्धिमान् मनुष्य दम्भ, मोह, मात्सर्य, पापकर्म, राजद्वेष, चुगलखोरी, समूह से वैर, मदमस्त पागल एवं दुर्जनों से विवाद छोड़ देता है वह श्रेष्ठ है।

विशेष–'बहुभिर्न विरुद्धयेत्' के अनुसार बुद्धिमान् मनुष्य बहुत से वैरभाव रखना उचित नहीं समझते हैं। साथ ही ऊपर गिनाये हुए जनों से भी विरोध रखना उचित नहीं जान पड़ता है।

दानं होमं दैवतं मङ्गलानि प्रायश्चित्तान् विविधान् लोकवादान्।
एतानि यः कुरुते नैत्यकानि तस्योत्थानं देवता राधयन्ति ॥ १२१ ॥

शब्दार्थ--यः=जो मनुष्य, दानम्=दान को, होमम्=होम को, दैवतं मङ्गलानि=देवताओं की पूजा, प्रायश्चित्तान्=प्रायश्चित्त को, विविधान्=नाना प्रकार के, लोकवादान्=लौकिक आचारों को, एतानि=इन सभी को, नैत्यकानि=दैनिक कार्यों को, कुरुते=करते हैं, तस्य=उसकी, उत्थानम्=उन्नति, देवता=देवता, राधयन्ति=सिद्ध करते हैं।

हिन्दी—जो मनुष्य दान, होम, देवताओं की पूजा, शुभकर्म, प्रायश्चित्त तथा विविध प्रकार से सांसारिक कृत्यों को करता है, उसकी उन्नति देवता सिद्ध करते हैं।

विशेष—'स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्' (गीता)। थोड़े भी धर्माचरण द्वारा मनुष्य महान् भय से मुक्त हो जाते हैं, साथ ही धर्माचरण से मनुष्य के अभ्युदय की भी सिद्धि होती है।

समैर्विवाहः कुरुते न हीनैः समैः सख्यं व्यवहारं कथां च।
गुणैर्विशिष्टांश्च पुरो दधाति विपश्चितस्तस्य नयाः सुनीताः ॥ १२२ ॥

शब्दार्थ--समैः=समान लोगों के साथ, विवाहम्=विवाह को, कुरुते=करता है, हीनैः=निकृष्ट लोगों के साथ, न=नहीं करता है, समैः=समान गुण वालों के साथ, सख्यम्=मित्रता, व्यवहारम्=व्यवहार, कथाम्=वार्तालाप, च=और, गुणैः=गुणों में, विशिष्टान्=विशिष्ट लोगों को, पुरः=आगे, दधाति=रखता है, तस्य=उस, विपश्चितः=विद्वान् की, नयाः=नीतियाँ, सुनीताः=सुप्रयुक्त हैं।

हिन्दी--जो अपने समान लोगों के साथ विवाह, मित्रता, व्यवहार तथा वार्तालाप करता है, उस विद्वान् की नीतियाँ श्रेष्ठ हैं।

विशेष—'समानशीलव्यसनेषु सख्यम्' अर्थात् समान शील-स्वभाव वालों से मित्रता और व्यवहार किया जाता है। अतः उपर्युक्त व्यवहार समान लोगों में ही शोभा पाता है।

मित्रं भुङ्क्ते संविभज्याश्रितेभ्यो मितं स्वपित्यमितं कर्म कृत्वा।
ददात्यमित्रेष्वपि याचितः संस्तमात्मवन्तं प्रजहत्यनर्थाः ॥ १२३ ॥

शब्दार्थ—आश्रितेभ्यः=आश्रितों के लिए, संविभज्य=बाँटकर, मितम्=थोडा, ङ्क्ते=भोजन करता है, अमितम्=बहुत अधिक, कर्म कृत्वा=कर्मों को करके, तम्=थोड़ा, स्वपिति=सोता है, अमित्रेषु=शत्रुओं में भी, याचितः=माँगने र, ददाति=देता है, सः=वह, तम्=उस, आत्मवन्तम्=मनस्वी को, अनर्थाः=नर्थ, प्रजहति=दूर हो जाते हैं।

हिन्दी—जो आश्रितों को बांट कर थोड़ा भोजन करता है, बहुत काम करके ोड़ा सोता है, याचना करने पर शत्रुओं को भी देता है, उस मनस्वी के सारे अनर्थ र हो जाते हैं।

चिकीर्षितं विप्रकृतं च यस्य नान्ये जनाः कर्म जानन्ति किञ्चित्।
मन्त्रे गुप्ते सम्यगनुष्ठिते च नाल्पोऽप्यस्य च्यवते कश्चिदर्थः॥ १२४॥

शब्दार्थ—यस्य=जिसके, चिकीर्षितम्=मनोरथ को, विप्रकृतम्=विपरीत बातों को, अन्ये जनाः=अन्य लोग, किञ्चित्=कुछ भी, न जानन्ति=नहीं जानते हैं। मन्त्रे गुप्ते=मन्त्र की गोपनीयता, च=और, सम्यग्+अनुष्ठिते=ठीक प्रकार से प्रयुक्त करने के कारण, अस्य=इसका, अल्पोऽपि=थोड़ा भी, कश्चित्=कुछ, अर्थः=काम, न च्यवते=नष्ट नहीं हो पाता है।

हिन्दी—जिसके मनोरथ को और विपरीत बातों को अन्य लोग कुछ भी नहीं जान पाते हैं, मन्त्र की गोपनीयता के साथ ठीक प्रकार से अनुष्ठान करते हैं, उसका कोई भी काम थोड़ा भी नष्ट नहीं हो पाता है अर्थात् उसका काम ठीक हो जाता है।

यः सर्वभूतप्रशमे निविष्टः सत्यो मृदुर्मानकृच्छुद्धभावः।
अतीव स ज्ञायते ज्ञातिमध्ये महामणिर्जात्य इव प्रसन्नः॥ १२५॥

शब्दार्थ—यः=जो मनुष्य, सर्वभूतप्रशमे=सभी प्राणिओं की शान्ति में, निविष्टः=लगा रहता है, सत्यः=सत्यवादी, मृदुः=कोमल स्वभाव का, मानकृत्=दूसरों को सम्मान देने वाला, शुद्धभावः=शुद्ध स्वभाव वाला, सः=वह, महामणिः=महामणि, जात्य इव=उत्तम जाति वाले के समान, प्रसन्नः=चमकने वाला, ज्ञातिमध्ये=अपने समुदाय में, अतीव=अत्यधिक, ज्ञायते=जाना जाता है।

हिन्दी—जो मनुष्य सभी प्राणियों को शान्ति देने में तत्पर, सत्य बोलने वाला, कोमल, दूसरों को सम्मान करने वाला एवं शुद्ध स्वभाव का होता है—वह खान से निकले और चमकने वाले रत्न के समान अपने समुदाय में अधिक शोभित होता है।

य आत्मनाऽपत्रपते भृशं नरः स सर्वलोकस्य गुरुर्भवत्युत।
अनन्ततेजाः सुमनाः समाहितः स तेजसा सूर्य इवावभासते॥ १२६॥

शब्दार्थ—यः=जो, नरः=मनुष्य, आत्मना=स्वयं ही, भृशम्=अत्यधिक, अपत्रपते=लज्जा की अनुभूति करता है, सः=वह, सर्वलोकस्य=सभी लोकों का, गुरुः=श्रेष्ठ, भवति=होता है, उत=हर्ष में, अनन्ततेजाः=अनन्त तेज वाला, सुमनाः=सुन्दर मन वाला, समाहितः=एकाग्रचित्त वाला, सः=वह, तेजसा=तेज के द्वारा, सूर्य इव=सूर्य के समान, अवभासते=सुशोभित होता है।

हिन्दी—जो मनुष्य स्वयं ही अत्यधिक लज्जा की अनुभूति करता है, वह असीमित तेज, शुद्ध हृदय, एकाग्रता से सम्पन्न होकर सूर्य के समान सुशोभित होता

वने जाताः शापदग्धस्य राज्ञः पाण्डोः पुत्रा पञ्च पञ्चेन्द्रकल्पाः ।
त्वयैव बाला वर्धिताः शिक्षिताश्च तवादेशं पालयन्त्याम्बिकेय ॥ १२७

शब्दार्थ—अम्बिकेय = हे धृतराष्ट्र ! शापदग्धस्य = शाप से जले हुए, पाण्डोः = राजा पाण्डु के, पुत्राः = पुत्र, पञ्चपञ्चेन्द्रकल्पाः = पाँच-पाँच इन्द्र के सम वने जाताः = वन में उत्पन्न हुए, त्वयैव = तुम्हारे द्वारा ही, बालाः वर्धिताः बालकपन में पालन-पोषण किया, च = और, शिक्षिताः = शिक्षित किया, तवादेशम् आपके आदेश को, पालयन्ति = पालन करते हैं ।

हिन्दी—हे धृतराष्ट्र ! शाप से जले हुए राजा पाण्डु के पाँच पुत्र पाँच इन्द्र समान वन में उत्पन्न हुए । आपने ही उनको पाला-पोषा एवं शिक्षित किया। आपके आदेश का पालन करते हैं ।

प्रदायैतेषामुचितं तात राज्यं सुखी पुत्रैः सहितो मोदमानः ।
न देवानां नापि च मानुषाणां भविष्यसि त्वं तर्कणीयो नरेन्द्र ॥ १२८॥

इति महाभारते उद्योगपर्वणि प्रजागरपर्वणि विदुरनीतिवाक्ये त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः।

॥ इति विदुरनीतौ प्रथमोऽध्यायः समाप्तः ॥

शब्दार्थ—तात = हे तात ! उचितम् = उचित, राज्यम् = राज्य को, एतेषाम् = इनको, प्रदाय = देकर, पुत्रैः सहितः = पुत्रों के साथ, सुखी = सुखी, मोदमानः = प्रसन्न हो जाओ, न देवानाम् = न देवताओं के, न मानुषाणाम् = न मनुष्यों के द्वारा त्वं = आप, नरेन्द्र = राजेन्द्र, तर्कणीय = विचार योग्य, भविष्यसि = होंगे ।

हिन्दी—हे राजन् धृतराष्ट्र ! उनके लिए दातव्य राज्य उनको देकर पुत्रों साथ सुखी हो जाओ । ऐसा करने पर न देवताओं के और न मनुष्यों के विचार विषय होंगे ।

विशेष—यह महाभारत के उद्योगपर्व के अन्तर्गत प्रजागरपर्व में वर्णित विदु एवं धृतराष्ट्र के संवाद का तैंतीसवाँ अध्याय है । इसमें विदुर नीति, रीति एवं व्यवहारानुकूल वचनों के द्वारा धृतराष्ट्र को समझा कर अन्याय से लिये गये राज्य को दिलवाना चाहते हैं । अतः इसमें इन सभी का सुन्दर एवं मनोरम वर्णन मिलता है ।

इस प्रकार महाभारत के उद्योगपर्व में प्रजागरपर्व के अन्तर्गत विदुरनीति वाक्य में तैंतीसवाँ अध्याय समाप्त ।

इस प्रकार विदुरनीति में प्रथम अध्याय की हिन्दी समाप्त ।

द्वितीयोऽध्यायः

धृतराष्ट्र उवाच—

जाग्रतो दह्यमानस्य यत्कार्यमनुपश्यसि ।
तद् ब्रूहि त्वं हि नस्तात धर्मार्थकुशलो ह्यसि ॥ १ ॥

शब्दार्थ—जाग्रतः = जागते हुए का, दह्यमानस्य = जलते हुए का, यत् = जो, कार्यम् = कार्य (करने योग्य कार्य), अनुपश्यसि = देखते हो (जानते हो), तद = उसको, ब्रूहि = कहो, त्वम् = तुम, हि = निश्चय ही, नः = हमारे लिए, तात = हे भाई, धर्मार्थकुशलः = धर्मार्थ-ज्ञान में चतुर, हि = निश्चय, असि = हो ।

हिन्दी—धृतराष्ट्र ने कहा—हे भाई ! तुम निश्चय ही हमारे मध्य में धर्म-अर्थ के विषय में जानने वाले हो । इसलिए चिन्ता से मुझ जलते हुए और जागते हुए के करने योग्य उस कार्य को बताओ ।

विशेष—यह श्लोक प्रथम अध्याय के ११वें श्लोक के रूप में कुछ पाठभेद के साथ आया है । महाभारत के पात्रों में विदुर परम ज्ञानी एवं धर्मार्थ को जानने वाले थे । अतः धृतराष्ट्र ने अपने हित के लिए विदुर से पूछा है । क्योंकि जानकार मनुष्य ही सही मार्ग का उपदेश कर सकता है ।

त्वं मां यथावत् विदुर प्रशाधि प्रज्ञापूर्वं सर्वमजातशत्रोः ।
यन्मन्यसे पथ्यमदीनसत्त्वं श्रेयस्करं ब्रूहि तद्वै कुरूणाम् ॥ २ ॥

शब्दार्थ—विदुर = हे विदुर ! त्वम् = तुम, माम् = मुझको, यथावद = यथोचित, प्रशाधि = समुचित मार्ग का उपदेश करो, प्रज्ञापूर्वम् = बुद्धिपूर्वक, सर्वम् = सभी, अजातशत्रोः = युधिष्ठिर का (जिसका शत्रु उत्पन्न नहीं हुआ है/'न जातः शत्रुर्यस्य'), मन्यसे = समझते हो, पथ्यम् = उचित, अदीनसत्त्वः = दीनता रहित स्थिति वाले स्पष्टवक्ता, श्रेयस्करम् = कल्याणकारी, ब्रूहि = कहो, तत् = उसे, वै = निश्चय ही, कुरूणाम् = कौरवों के ।

हिन्दी—हे विदुर ! तुम अपनी बुद्धि से सोचकर मुझे यथावद उपदेश करो । जो बात युधिष्ठिर के लिए हितकर तथा कौरवों के लिए श्रेयस्कर समझते हो, वह अवश्य बताओ ।

विशेष—बन्धु एवं मित्र का वचन अवश्यकरणीय एवं ग्राह्य होता है । इस स्थिति में विदुर धृतराष्ट्र का बन्धु एवं हितकर वचन बतलाने के कारण मित्र भी है । इसलिए उपदेश की आकांक्षा रखना उचित जान पड़ता है ।

पापाशङ्की पापमेवानुपश्यन् पृच्छामि त्वां व्याकुलेनात्मनाहम् ।
कवे तन्मे ब्रूहि सर्वं यथावन्मनीषितं सर्वमजातशत्रोः ॥ ३ ॥

शब्दार्थ—कवे = हे मनीषी विदुर ! पापाशङ्की = पाप की आशङ्का करने वाला,

पापमेवानुपश्यन् = पाप को ही देखते हुए, व्याकुलेन आत्मना = व्याकुल चित्त से, अहम् = मैं, त्वाम् = तुमसे, पृच्छामि = पूछ रहा हूँ, तत् = इसलिए, मे = मुझे, सर्वम् = सभी, अज्ञातशत्रोः = युधिष्ठिर के, सर्वम् = सभी, मनीषितम् = अभिप्राय, यथावत् = ठीक-ठीक रूप से, ब्रूहि = कहो।

हिन्दी — हे मनीषी विदुर ! पाप की आशङ्का करने वाला मैं सर्वत्र अनिष्ट देखता हूँ। अतः व्याकुल चित्त वाला मैं तुमसे पूछ रहा हूँ। युधिष्ठिर के सभी अभिप्राय को मुझे यथावत् बताओ।

विशेष — अजातशत्रोः (न जातः शत्रुर्यस्य तस्य)—अजातशत्रु युधिष्ठिर का नाम है। उनका कोई शत्रु उत्पन्न ही नहीं हुआ।

विदुर उवाच

शुभं वा यदि वा पापं द्वेष्यं वा यदि वा प्रियम्।
अपृष्टस्तस्य तद् ब्रूयाद् यस्य नेच्छेत्पराभवम् ॥ ४ ॥

शब्दार्थ — यस्य = जिसका, पराभवम् = पराजय, न + इच्छेत् = नहीं इच्छा करे, तस्य = उसका, तद् = उसे, अपृष्टः = नहीं पूछे जाने पर, ब्रूयात् = बता दे, शुभम् = शुभ, वा = अथवा, यदि = यदि, पापम् = पाप, द्वेष्यम् = द्वेष, यदि = यदि, वा = अथवा, प्रियम् = शुभ।

हिन्दी — विदुर ने कहा — मनुष्य को चाहिए कि वह जिसका पराजय न चाहे उसे भी बिना पूछे शुभ, अशुभ, प्रिय एवं द्वेष की बात को बता दे।

विशेष — 'नापृष्टः कस्यचिद्ब्रूयात्' अर्थात् बिना पूछे नहीं बताना चाहिए परन्तु विदुर ने कहा है कि प्रिय चाहने वाले मनुष्य के लिए यह बाधित नहीं है। उसे बिना पूछे भी लाभ-हानि, प्रिय-अप्रिय सब कुछ बता देना चाहिए।

तस्माद् वक्ष्यामि ते राजन् हितं यत्स्यात् कुरून्प्रति।
वचः श्रेयस्करं धर्म्यं ब्रुवतस्तन्निबोध मे ॥ ५ ॥

शब्दार्थ — राजन् ! = हे राजन्, तस्मात् = इसी कारण से, कुरून्प्रति = कौरवों के लिए, हितम् = कल्याण, यत् = जिसके द्वारा, स्यात् = हो, ते = तुझे (आपको), वक्ष्यामि = कहता हूँ। मे = मेरे ब्रुवतः = कहे गये, वचः = वचन, श्रेयस्करं = कल्याणकारी, धर्म्यम् = धर्मयुक्त, तत् = उसको, निबोध = सुनो।

हिन्दी — हे राजन् ! जिससे समस्त कौरवों का हित हो, वही बात आपसे कहूँगा। मेरे द्वारा कहे गये वचन कल्याणकारी एवं धर्मयुक्त हैं, अतः उसे ध्यानपूर्वक सुनो।

विशेष — धर्मरहित वचन नहीं सुनना चाहिए, चाहे वह कितना भी श्रेष्ठ न हो। लेकिन विदुर के वचन धर्मयुक्त होने के कारण उपादेय एवं हितकर भी हैं।

मिथ्योपेतानि कर्माणि सिध्येयुर्यानि भारत।
अनुपायप्रयुक्तानि मा स्म तेषु मनः कृथाः ॥ ६ ॥

शब्दार्थ — भारत ! = हे धृतराष्ट्र ! मिथ्योपेतानि = झूठों से युक्त, कर्माणि = कर्मों के द्वारा, यानि = जिससे (जो), सिध्येयुः = सिद्ध होते हैं, अनुपायप्रयुक्तानि

=अनुचित उपायों से प्रयुक्त, तेषु=उनमें, मनः=मन को, मा स्म कृथाः=मत लगाओ।

हिन्दी—हे धृतराष्ट्र ! मिथ्या उपायों के प्रयोग द्वारा जो कार्य सिद्ध होते हैं, उनमें अपना मन मत लगाओ।

विशेष—मिथ्या वचन प्रिय होते हैं लेकिन हितकारक नहीं, अतः उनमें मन नहीं लगाना चाहिए।

तथैव योगविहितं यत्तु कर्म न सिध्यति।
उपाययुक्तं मेधावी न तत्र ग्लपयेन्मनः॥ ७॥

शब्दार्थ—तथैव=उसी प्रकार, योगविहितम्=सावधानीपूर्वक, यत्=जो, कर्म =कर्म, न सिध्यति=नहीं सिद्ध होता है, उपाययुक्तम्=शुभ उपायों से युक्त, मेधावी=विद्वान् व्यक्ति, तत्र=वहाँ, मनः=मन को, न ग्लपयेत्=ग्लानि न करें।

हिन्दी—यदि उक्त प्रकार के शुभ उपायों द्वारा सावधानीपूर्वक किया गया कोई कार्य सिद्ध नहीं होता है तो बुद्धिमान् को वहाँ ग्लानि नहीं करनी चाहिए।

अनुबन्धान् अपेक्षेत सानुबन्धेषु कर्मसु।
सम्प्रधार्य च कुर्वीत न वेगेन समाचरेत्॥ ८॥

शब्दार्थ—अनुबन्धान्=प्रयोजनों को, अपेक्षेत=अपेक्षा करनी चाहिए, सानु-बन्धेषु=उद्देश्य सहित, कर्मसु=कार्यों में, सम्प्रधार्य=निश्चय करके, च=और, कुर्वीत=करना चाहिए, न वेगेन=जल्दीबाजी से नहीं, समाचरेत्=करना चाहिए।

हिन्दी—प्रयोजनों का निश्चय करके सोद्देश्य कर्मों को करना चाहिए, जल्दीबाजी में कोई कार्य नहीं करना चाहिए।

विशेष—'प्रयोजनमनुद्दिश्य मन्दोऽपि न प्रवर्तते'। बिना प्रयोजन किसी कार्य का आचरण नहीं करना चाहिए। साथ ही प्रयोजनों में भी समीक्षा करनी चाहिए कि यह कितना अपेक्षित है।

अनुबन्धं च सम्प्रेक्ष्य विपाकं चैव कर्मणाम्।
उत्थानमात्मनश्चैव धीरः कुर्वीत वा न वा॥ ९॥

शब्दार्थ—अनुबन्धम्=प्रयोजन को, च=और, सम्प्रेक्ष्य=देखकर, विपाकम्=फल को, च=और, एव=ही, कर्मणाम्=कर्मों का, उत्थानम्=उद्यम को, आत्मनः =अपने, च=और, एव=ही, धीरः=धैर्यवान्, कुर्वीत=करे, वा=अथवा, न= नहीं, वा=अथवा।

हिन्दी—धीर मनुष्य को चाहिए कि कर्मों के उद्देश्य, परिणाम तथा अपने उत्थान का विचार करके फिर कार्य आरम्भ करे या न करे।

विशेष—फलाफल का विचार करने के बाद ही कर्त्तव्य का निश्चय करना चाहिए अथवा उससे विरत रहना चाहिए।

य: प्रमाणं न जानाति स्थाने वृद्धौ तथा क्षये ।
कोशे जनपदे दण्डे न स राज्येऽवतिष्ठते ।। १० ।।

शब्दार्थ--य: =जो राजा, प्रमाणम् =परिणाम को, न=नहीं, जानाति =जान‍ता है, स्थाने =दुर्ग के विषय में, वृद्धौ =वृद्धि के विषय में, तथा =और, क्षये =हानि के विषय में, कोशे =खजाने के विषय में, जनपदे =देश के विषय में, न =नहीं, राज्ये =राज्य के विषय में, दण्डे =सेना के विषय में, स: =वह, न =नहीं, अवतिष्ठते= ठहरता है ।

हिन्दी—जो राजा स्थान (दुर्ग), वृद्धि, हानि, कोश, देश तथा सेना के विषय में नहीं जानता है, वह राज्य पर स्थित नहीं रह सकता ।

विशेष--राजा को सावधानीपूर्वक अपने गुप्तचरों द्वारा दुर्ग, कोश, सेना, वृद्धि और क्षय के विषय में जानना चाहिए। जो इसके विषय में नहीं जानता है वह शत्रुओं द्वारा अतिक्रान्त होकर अपना स्थायित्व खो बैठता है। इसलिए राजा को सदा जागरूक रहना चाहिए ।

यस्त्वेतानि प्रमाणानि यथोक्तान्यनुपश्यति ।
युक्तो धर्मार्थयोर्ज्ञाने स राज्यमधिगच्छति ।। ११ ।।

शब्दार्थ--य: =जो, तु =किन्तु, एतानि =इतने, प्रमाणानि =प्रमाणों को, यथोक्तानि =जैसे कहे गये, अनुपश्यति =भलीभाँति जानता है, धर्मार्थयो: =धर्म और अर्थ के, ज्ञाने =ज्ञान में, युक्त: =लगा रहता है, स: =वह, राज्यम् =राज्य को, अधिगच्छति =प्राप्त करता है ।

हिन्दी—जो राजा इतने प्रमाणों को भलीभाँति जानता है और धर्म और अर्थ के ज्ञान में लगा रहता है वह राज्य को प्राप्त करता है ।

न राज्यं प्राप्तमित्येव वर्तितव्यमसाम्प्रतम् ।
श्रियं ह्यविनयो हन्ति जरा रूपमिवोत्तमम् ।। १२ ।।

शब्दार्थ—राज्यम् =राज्य को, प्राप्तम् =प्राप्त, इति =इस प्रकार, एव =ही असाम्प्रतम् =अनुचित, न वर्तितव्यम् =नहीं करना चाहिए, अविनय: =उच्छृङ्खलता हि =निश्चय, श्रियम् =राज्यलक्ष्मी को, हन्ति =समाप्त कर देती है, इव =यथा उत्तमम् =श्रेष्ठ, रूपम् =स्वरूप को, जरा =वृद्धावस्था ।

हिन्दी—'राज्य प्राप्त हो गया' ऐसा जानकर अनुचित नहीं करना चाहिए, क्योंकि उनकी राज्यलक्ष्मी वैसे ही नष्ट हो जाती है, जैसे वृद्धावस्था उत्तम रूप को नष्ट कर देती है ।

विशेष—अविवेकी के पास लक्ष्मी निवास नहीं करती है, वह उसको वैसे ही छोड़ देती है जैसे वृद्धावस्था में अतीव रूपवान् का भी सौन्दर्य नष्ट हो जाता है ।

भक्ष्योत्तमप्रतिच्छन्नं मत्स्यो वडिशमायसम् ।
लोभाभिपाती ग्रसते नानुबन्धमवेक्षते ।। १३ ।।

शब्दार्थ—भक्ष्योत्तमप्रतिच्छन्नम् = स्वादिष्ट पदार्थों से ढके हुए, आयसम् = लोहे के, वडिशम् = कांटे को, लोभाभिपाती = लोभ में फँसकर, मत्स्यः = मछली, ग्रसते = खा लेती है, अनुबन्धम् = परिणाम को, न अवेक्षते = नहीं देखती है।

हिन्दी—उत्तम स्वादिष्ट वस्तुओं से ढके हुए लोहे के काँटे को लोभ में फँसकर मछली खा लेती है, परिणाम को नहीं देखती है।

विशेष—'लोभः पापस्य कारणम्' अर्थात् लोभ दुःखद परिणाम देने वाला होता है। जहाँ लोभ से काम होता है, उसका परिणाम अन्त में दुःख देने वाला माना जाता है। इसलिए नीतिकारों ने लोभ का परित्याग करने के लिए कहा है।

यच्छक्यं ग्रसितुं ग्रस्यं ग्रस्तं परिणमेच्च यत्।
हितं च परिणामे स्यात् तदाद्यं भूतिमिच्छता ॥ १४ ॥

शब्दार्थ—यत् = जो, ग्रसितुं शक्यम् = खायी जा सके, ग्रस्यम् = खाने योग्य हो, ग्रस्तम् = खाने के बाद, परिणमेत् = पच सके, च = और, यत् = जो, परिणामे = परिणाम में, हितम् = हितकारी हो, तत् = उसका, आद्यम् = खाया जाना चाहिए, भूतिमिच्छता = कल्याण को चाहने वाले को।

हिन्दी—कल्याण चाहने वाले को वही वस्तु खानी चाहिए, जो खायी जा सके तथा खाने के योग्य हो और खाने के बाद पच सके, पचने के बाद हितकारी हो।

विशेष—भोजन हलका एवं हितकारी करना चाहिए। अत्यधिक भोजन पचता भी नहीं है, साथ ही हितकारी भी नहीं होता। अतएव नीतिकार ने इस ओर संकेत किया है।

वनस्पतेरपक्वानि फलानि प्रचिनोति यः।
स नाप्नोति रसं तेभ्यो बीजं चास्य विनश्यति ॥ १५ ॥

शब्दार्थ—यः = जो, वनस्पतेः = वृक्ष के, अपक्वानि = कच्चे, फलानि = फलों को, प्रचिनोति = तोड़ता है, सः = वह, रसम् = रस को, न + आप्नोति = नहीं प्राप्त करता है, तेभ्यः = उससे, अस्य = उसका, च = और, बीजम् = बीज को, विनश्यति = नष्ट कर देता है।

हिन्दी—जो मनुष्य वृक्ष से कच्चे फलों को तोड़ता है, वह उनसे रस भी प्राप्त नहीं करता तथा उसके बीज को भी नष्ट कर देता है।

विशेष—वृक्ष से पके फलों को ही तोड़ना चाहिए। इससे वृक्ष में फल भी लगातार लगता है तथा वृक्ष पल्लवों से सम्पन्न रहता है।

यस्तु पक्वमुपादत्ते काले परिणतं फलम्।
फलान् रसं स लभते बीजाच्चैव फलं पुनः ॥ १६ ॥

शब्दार्थ—यः = जो, तु = किन्तु, पक्वम् = पका हुआ, काले = समय आने पर, परिणतम् = रूपान्तरित हुए, फलम् = फल को, उपादत्ते = ग्रहण करता है, सः = वह, फलात् = फल से, रसम् = रस को, लभते = प्राप्त करता है, पुनः = फिर, बीजान् = बीज से, फलम् = फल, च = और, एव = ही।

हिन्दी—जो मनुष्य समय आने पर पके फल को प्राप्त करता है, वह फल से। को प्राप्त करता है और बीज से पुनः फल प्राप्त करता है।

> यथा मधु समादत्ते रक्षन् पुष्पाणि षट्पदः।
> तद्वदर्थान्मनुष्येभ्य आदद्यादविहिंसया ॥ १७ ॥

शब्दार्थ—यथा=जिस प्रकार, षट्पदः=भ्रमर, पुष्पाणि=फूलों को, रक्षन्ः रक्षा करते हुए, मधु=शहद, समादत्ते=ग्रहण करता है, तद्वत्=उसी प्रका मनुष्येभ्यः=मनुष्यों से, अविहिंसया=विना हिंसा से, अर्थान्=धन को, आदद्यात्= ग्रहण करे।

हिन्दी—जिस प्रकार भौंरा पुष्पों की रक्षा करता हुआ मधु ग्रहण करता है उसी प्रकार राजा भी प्रजा को विना कष्ट दिये करादि के रूप में धन ग्रहण करे

विशेष—प्रजा से कर के रूप में धन ग्रहण कर राजा प्रजा की भलाई के लि लगाता है। लेकिन यह कर प्रजा को दुःख देने वाला न हो तथा देने की प्रक्रिय सरल हो, जिससे प्रजा में उत्पीडन न हो। अन्यथा प्रजा में कर-चोरी करने की प्रवृत्ति जगती है, जो राष्ट्र के लिए घातक एवं चरित्र हनन का कारण बनती है।

> पुष्पं पुष्पं विचिन्वीत मूलच्छेदं न कारयेत्।
> मालाकार इवारामे न यथाङ्गारकारकः ॥ १८ ॥

शब्दार्थ—पुष्पं पुष्पम्=फूल-फूल को, विचिन्वीत=चुने, मूलच्छेदम्=जड़ क नाश, न कारयेत्=न करे, मालाकार इव=जैसे माली, आरामे=फुलवाड़ी में यथा=जैसे, अङ्गारकारकः=कोयला बनाने वाला, न=नहीं।

हिन्दी—माली जिस प्रकार बगीचे में वृक्षों से एक-एक फूल तोड़ता है, उनक जड़ से नहीं तोड़ता, उसी प्रकार राजा प्रजा से फूल के समान कर ले। कोयल बनाने वाले के समान उसे जड़ से नहीं काटे।

विशेष—यहाँ माली का दृष्टान्त बहुत ही युक्तिसंगत है। क्योंकि माली बगी को सींचता है, घासों को निकालता है, बाग को सम्हालता एवं परिवर्धन करता है उसी प्रकार राजा प्रजा की रक्षा करता है और दुष्टों का दमन करता है। सा ही प्रजा की उन्नति के लिए सर्वविध उपाय करता है।

> किन्नु मे स्यादिदं कृत्वा किन्नु मे स्यादकुर्वतः।
> इति कर्माणि सञ्चिन्त्य कुर्याद् वा पुरुषो न वा ॥ १९ ॥

शब्दार्थ—किम्=क्या, नु=निश्चित रूप से, मे=मेरा, स्यात्=होगा, इदम् =यह (इसको), कृत्वा=करके, किम्=क्या, नु=अवश्य, मे=मेरा, स्यात्= =होगा, अकुर्वतः=नहीं करते हुए का, इति=इस तरह, कर्माणि=कर्मों का, सञ्चिन्त्य=अच्छी तरह चिन्तन करके, कुर्यात्=करे, वा=अथवा, पुरुषः=मनुष्य, न=नहीं, वा=अथवा।

हिन्दी—प्रस्तुत इस कार्य का सम्पादन करने से मुझे क्या लाभ होगा अथवा न

करने से क्या हानि होगी ? इस प्रकार के तारतम्य का विचार करके मनुष्य उक्त कार्य को करे या नहीं करे । किसी कार्य को करने के पहले फलाफल का विचार कर लेना चाहिए ।

अनारभ्या भवन्त्यर्थाः केचिन्नित्यं तथाऽगताः ।
कृतः पुरुषकारो हि भवेद् येषु निरर्थकः ॥ २० ॥

शब्दार्थ—अनारम्भाः = आरम्भ न करने योग्य, अर्थाः = कार्य, भवन्ति = होते हैं, केचिद् = कुछ, नित्यम् = प्रतिदिन, तथा = उस प्रकार के, आगताः = प्राप्त होने वाले, हि = निश्चय ही, येषु = जिसके लिए, कृतः = किया गया, पुरुषकारः = पुरुषार्थ, निरर्थकः = व्यर्थ, भवेत् = होता है ।

हिन्दी—कुछ व्यर्थ कार्य हैं, जो नित्य प्राप्त होने के कारण आरम्भ करने योग्य नहीं होते हैं । क्योंकि उनके लिए किया गया पुरुषार्थ भी निरर्थक हो जाता है ।

विशेष—व्यर्थ कार्य एवं व्यर्थ परिश्रम करने से इष्टसिद्धि नहीं होती है । इसलिए सोद्देश्य एवं सुकर्म करने के लिए ही प्रयास करना चाहिए ।

प्रसादो निष्फलो यस्य क्रोधश्चापि निरर्थकः ।
न तं भर्तारमिच्छन्ति षण्ढं पतिमिव स्त्रियः ॥ २१ ॥

शब्दार्थ—यस्य = जिसकी, प्रसादः = कृपा, निष्फलः = व्यर्थ, च = और, अपि = भी, क्रोधः = क्रोधः, निरर्थकः = निरर्थक, तम् = उस, भर्तारम् = स्वामी को (राजा को), न इच्छन्ति = नहीं चाहते हैं, इव = यथा, स्त्रियः = स्त्रियाँ, षण्ढम् = नपुंसक, पतिम् = पति को नहीं चाहती है ।

हिन्दी—जिसकी प्रसन्नता निष्फल हो तथा क्रोध भी निरर्थक हो, ऐसे राजा को प्रजा नहीं चाहती है । जैसे स्त्रियाँ नपुंसक व्यक्ति को पति बनाना नहीं चाहती है ।

कांश्चिदर्थान्नरः प्राज्ञो लघुमूलान्महाफलान् ।
क्षिप्रमारभते कर्तुं न विघ्नयति तादृशान् ॥ २२ ॥

शब्दार्थ—कांश्चित् = जिनका, अर्थान् = अर्थों को, प्राज्ञः = बुद्धिमान्, नरः = मनुष्य, लघुमूलान् = छोटे साधन वाले, महाफलान् = महाफल वाले, क्षिप्रम् = शीघ्र, आरभते = करते हैं, तादृशान् = उस प्रकार के, कर्तुम् = कर्मों में, न विघ्नयति = बाधा नहीं करते हैं ।

हिन्दी—जिनका साधन छोटा तथा फल महान् होता है, ऐसे कार्यों को बुद्धिमान् मनुष्य शीघ्र ही आरम्भ करता है । उस प्रकार के कर्मों में बाधा भी नहीं पड़ने देता है ।

ऋजुः पश्यति यः सर्वं चक्षुषानुपिबन्निव ।
आसीनमपि तूष्णीकमनुरज्यन्ति तं प्रजाः ॥ २३ ॥

शब्दार्थ—यः = जो राजा, चक्षुषा = आंखों से, अनुपिबन् = कोमल दृष्टि से पीते हुए, इव = यथा, सर्वम् = सभी को, ऋजुः = कोमलता से, पश्यति = देखता है,

पुस्तकालय

तम्=उसको, प्रजा:=जनता, तूष्णीकम्=चुप (मौन), आसीनमपि=बैठे भी, अनुरज्यति=अनुराग करती है।

हिन्दी—जो राजा आँखो से पान करते हुए कोमल दृष्टि से सबको देखता। उसके चुप रहने पर भी जनता उससे अनुराग करती है।

सुपुष्पितः स्यादफलः फलितः स्याद् दुरारुहः।
अपक्वः पक्वसङ्काशो न तु शीर्येत कर्हिचित्॥ २४॥

शब्दार्थ—सुपुष्पित:=सुपुष्पित, अफल:=फलरहित, स्यात्=हो, दुरारुह:=चढ़ने योग्य न हो, फलित:=फलयुक्त, स्यात्=हो, अपक्व:=नहीं पकने पर पक्वसङ्काश:=पके जैसा, तु=किन्तु, कर्हिचित्=कभी भी, न शीर्येत=नष्ट नहीं होता।

हिन्दी—जो राजा प्रसन्न रहने पर भी फल रहित हो, फल रहते हुए दुरारोह हो, अपक्व फल रहते हुए पके हुए फल जैसा हो, ऐसा करने पर वह कभी नष्ट नहीं होता है। जैसे वृक्ष पुष्पित रहने पर भी फल न देने वाला हो, फल रहने पर भी उस पर चढ़ाया न जा सके, कच्चा फल रहते हुए भी पके फल जैसा लगता हो, ऐसा वृक्ष कभी नष्ट नहीं होता है।

चक्षुषा मनसा वाचा कर्मणा च चतुर्विधम्।
प्रसादयति यो लोकं तं लोकोऽनुप्रसीदति॥ २५॥

शब्दार्थ—य:=जो राजा, चक्षुषा=नेत्र के द्वारा, मनसा=मन से, वाचा=वचन से, कर्मणा=कर्म से, चतुर्विधम्=चार प्रकार से, लोकम्=लोक को, प्रसादयति=प्रसन्न करता है, लोक:=प्रजा, अनुप्रसीदति=उससे प्रसन्न रहती है।

हिन्दी—जो राजा नेत्र, मन, वचन एवं कर्म—इन चारों से प्रजा को प्रसन्न करता है, प्रजा उसी से प्रसन्न हो जाती है।

यस्मात् त्रस्यन्ति भूतानि मृगव्याधान्मृगा इव।
सागरान्तामपि महीं लब्ध्वा स परिहीयते॥ २६॥

शब्दार्थ—यस्मात्=जिस राजा से, भूतानि=प्रजाएँ, त्रस्यन्ति=भयभीत होती हैं, मृगव्याधात्=मृगों के शिकारी से, मृगा:=हरिण, इव=यथा, स:=वह राजा, सागरान्तामपि=समुद्र तक भी, महीम्=पृथ्वी को, लब्ध्वा=प्राप्त करके, परिहीयते=छोड़ दिया जाता है।

हिन्दी—जिस प्रकार शिकारी से हिरण भयभीत रहते हैं, उसी प्रकार जिस राजा से प्रजाएँ भयभीत रहती हैं, समुद्र तक पृथ्वी का राज्य पा लेने के बाद भी वह प्रजाजनों के द्वारा त्याग दिया जाता है।

विशेष—'राजा प्रकृतिरञ्जनात्' अर्थात् राजा शब्द का अर्थ प्रजाओं की भलाई करने वाला होता है। जो राजा इसे नहीं कर पाता है, वही समूल नष्ट हो जाता है।

पितृपैतामहं राज्यं प्राप्तवान् स्वेन कर्मणा।
वायुरभ्रमिवासाद्य भ्रंशयत्यनये स्थितः ॥ २७ ॥

शब्दार्थ—पितृपैतामहम्=पैतृक, (बाप-दादा के), राज्यम्=राज्य को, स्वेन =अपने, कर्मणा=कर्म से, प्राप्तवान्=प्राप्त हुआ, अनये=अनीति पर चलकर, स्थितः=रहने पर, भ्रंशयति=नष्ट कर देता है, इव=यथा, वायुः=हवा, अभ्रम् =मेघ को।

हिन्दी—पैतृक राज्य को प्राप्त हुआ राजा अनीति पर चलकर अपने कर्म से वैसे नष्ट कर देता है जैसे हवा मेघ को छिन्न-भिन्न करती है।

विशेष—कितना भी घना बादल आकाश में क्यों न छाया हो, हवा चलने पर क्षण में ही बादल छिन्न-भिन्न हो जाते हैं। उसी प्रकार अनीति पर चलने वाले राजे नष्ट हो जाते हैं। यद्यपि अभ्र शब्द का अर्थ श्वेतवर्ण का अल्प जल वाला मेघ होता है, लेकिन समान मेघ अर्थ का भी वाचक है।

धर्ममाचरतो राज्ञः सद्भिश्चरितमादितः।
वसुधा वसुसम्पूर्णा वर्धते भूतिवर्धिनी ॥ २८ ॥

शब्दार्थ—धर्मम्=धर्म को, आचरतः=आचरण करते हुए, राज्ञः=राजा का, सद्भिः=सत्पुरुषों द्वारा, चरितम्=आचरण किया गया, आदितः=आरम्भ काल से, वसुधा=पृथ्वी, वसुसम्पूर्णा=धन-धान्य से भरपूर, भूतिवर्धिनी=ऐश्वर्य को बढ़ाने वाली, वर्धते=बढ़ती है।

हिन्दी—सज्जन पुरुषों द्वारा किये गये धर्म का आचरण करने वाले राजा के राज्य की भूमि धन-धान्य से परिपूर्ण होकर वृद्धि को प्राप्त होती है तथा राज्य बढ़ता है।

अथ सन्त्यजतो धर्ममधर्मं चानुतिष्ठतः।
प्रतिसंवेष्टते भूमिरग्नौ चर्माहितं यथा ॥ २९ ॥

शब्दार्थ—अथ=इसके बाद, धर्मम्=धर्म को, सन्त्यजतः=छोड़ते हुए, च= और, अधर्मम्=अधर्म को, अनुतिष्ठतः=आचरण करते हुए की, भूमिः=पृथ्वी, प्रतिसंवेष्टते=संकुचित हो जाती है, अग्नौ=आग में, आहितम्=रखा हुआ, चर्म= चमड़ा, यथा=जैसे।

हिन्दी—जो राजा धर्म का त्याग कर देता है और अधर्म का आचरण करता है, उसके राज्य की भूमि आग में रखे हुए चमड़े के समान संकुचित हो जाती है।

विशेष—राज्य का विस्तार न्यायप्रियता एवं धर्माचरण से होता है। अन्याय पर चलने वाला राजा चाहे कितना भी शक्तिशाली क्यों न हो, कुछ ही दिनों में उसका राज्य समाप्त हो जाता है।

य एव यत्नः क्रियते परराष्ट्रविमर्दने।
स एव यत्नः कर्तव्यः स्वराष्ट्रपरिपालने ॥ ३० ॥

शब्दार्थ—यः = जो, यत्नः = प्रयत्न, परराष्ट्रविमर्दने = दूसरे के राज्य को नष्ट करने में, क्रियते = किया जाता है, एव = ही, सः = वह, यत्नः = प्रयत्न, स्वराष्ट्र-परिपालने = अपने राज्य की रक्षा में, कर्तव्यः = करना चाहिए, एव = ही।

हिन्दी—जो राजा दूसरे के राज्य को नष्ट करने के लिए प्रयास करता है, वही प्रयास अपने राज्य के विकास में करना चाहिए।

विशेष—अनुकूल और प्रतिकूल दो प्रकार के कार्य होते हैं। शत्रुओं के प्रतिकूल एवं मित्रों के लिए अनुकूल प्रयास करना चाहिए। जो राजा केवल प्रतिकूल प्रयत्न करता है उसके राज्य का विकास तो होता नहीं, बल्कि दूसरे राज्य के विनाश में उसकी सारी शक्ति लग जाती है। अतः उसे ऐसा नहीं करना चाहिए।

धर्मेण राज्यं विन्देत धर्मेण परिपालयेत्।
धर्ममूलां श्रियं प्राप्य न जहाति न हीयते ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ—धर्मेण = धर्म से, राज्यम् = राज्य को, विन्देत = प्राप्त करे, धर्मेण = धर्म से, परिपालयेत् = पालन करे, धर्ममूलाम् = धर्म को आधार मानकर, श्रियम् = ऐश्वर्य को, प्राप्य = प्राप्त करके, न = नहीं, जहाति = छोड़ता है, न = नहीं, हीयते = छोड़ा जाता है।

हिन्दी—राजा को चाहिए कि वह धर्म से राज्य प्राप्त करे, धर्म से ही राज्य की रक्षा करे। क्योंकि धर्ममूलक राज्यलक्ष्मी को प्राप्त करने के बाद उस राजा को राज्य-लक्ष्मी नहीं छोड़ती।

विशेष—धर्म सबसे सुस्थिर है। धर्माचरण करने से प्रारम्भ में अनेक समस्याएं आती हैं, लेकिन अन्त में धर्म की ही विजय होती है। 'यतो धर्मः ततो जयः'। इसलिए धर्माचरण से ही सांसारिक व्यवहार का निर्वाह करना चाहिए।

अप्युन्मत्तात् प्रलपतो बालाच्च परिजल्पतः।
सर्वतः सारमादद्यात् अश्मभ्य इव काञ्चनम् ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ—अपि + उन्मत्तात् = पागल से भी, प्रलपतः = असम्बद्ध भाषण करनेवाले से, बालात् = बालक से, च = और, परिजल्पतः = वाचाल से, सर्वतः = सबसे, सारम् = सार को, आदद्यात् = ग्रहण करे, अश्मभ्यः = पत्थरों से, काञ्चनम् = सोने को, इव = जैसे।

हिन्दी—जैसे पत्थरों से सोने को ग्रहण करते हैं उसी प्रकार पागल, प्रलाप करने वाले, बालक और वाचाल से भी सारभूत अंश को ग्रहण करे।

विशेष—'बालादपि सुभाषितं ग्राह्यम्' अर्थात् बालक से भी अच्छी बात ग्रहण कर लेनी चाहिए। इसलिए अच्छी बातें सबसे सीख लेनी चाहिए।

सुव्याहृतानि सूक्तानि सुकृतानि ततस्ततः।
सञ्चिन्वन् धीर आसीत् शिलाहारी शिलं यथा ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ—सुव्याहृतानि = ठीक प्रकार से कहे गये वचनों को, सूक्तानि = सुभाषित

वचनों को, सुकृतानि = पुण्यकर्मों को, ततस्ततः = जहाँ-तहाँ से, सञ्चिन्वन् = इकट्ठा करता हुआ, धीरः = धैर्यशाली, आसीत् = बैठे, शिलाहारी = मञ्जरियों को लेने वाला, शिलम् = मञ्जरी को, यथा = जैसे ।

हिन्दी — जैसे शील-वृत्ति से जीविका चलाने वाला तपस्वी एक-एक मञ्जरियों को इकट्ठा करके जीवन बिताता है, उसी प्रकार धीर मनुष्य को भावपूर्ण वचनों, सूक्तियों और सत्कर्मों का जहाँ-तहाँ से संग्रह करना चाहिए ।

विशेष—प्राचीन काल में तपस्वी ब्राह्मणों के भेद करते समय दो भेद बतलाये हैं—शिलवृत्ति से जीने वाले तथा उञ्छ-वृत्ति से जीने वाले । मञ्जरियों को इकट्ठा करके जीविका चलाने वाले शीलवृत्ति से जीने वाले कहे जाते थे । खेतों में पड़े एक-एक दाना को संग्रह करके जीने वाले उञ्छवृत्ति माने जाते थे । यथा—

'उञ्छः कणशमादानं कणशाद्यर्जनं शिलम्' ।

(मनु० १०।११२ पर कल्लूकभट्ट)

गन्धेन गावः पश्यन्ति वेदैः पश्यन्ति ब्राह्मणाः ।
चारैः पश्यन्ति राजानश्चक्षुर्भ्यामितरे जनाः ॥ ३४ ॥

शब्दार्थ—गन्धेन = गन्ध से, गावः = गायें, पश्यन्ति = देखती हैं, वेदैः = वेदों से, ब्राह्मणाः = ब्राह्मण, पश्यन्ति = देखते हैं, चारैः = गुप्तचरों से, राजानः = राजा लोग, पश्यन्ति = देखते हैं, इतरे जनाः = अन्य लोग, चक्षुर्भ्याम् = नेत्रों के द्वारा देखते हैं ।

हिन्दी — गायें गन्ध से देखती हैं, ब्राह्मण लोग वेदों से देखते हैं, राजा गुप्तचरों से और साधारण लोग नेत्रों से देखते हैं ।

विशेष — आँखों से देखना राजाओं के लिए सम्भव भी नहीं है, क्योंकि विस्तृत राज्य की सभी बातों का ज्ञान करना कैसे हो सकता है ? इसलिए राजा लोग दूतों के द्वारा प्रजा के विषय में जानते हैं । साथ ही धृतराष्ट्र के लिए भी संकेत है कि गुप्तचरों द्वारा पाण्डवों के विषय में जानकारी प्राप्त करें ।

भूयांसं लभते क्लेशं या गौर्भवति दुर्दुहा ।
अथ या सुदुहा राजन् नैव तां वितुदन्त्यपि ॥ ३५ ॥

शब्दार्थ—हे राजन् = धृतराष्ट्र ! या = जो, गौः = गाय, दुर्दुहा भवति = दूध देने के समय कष्ट से दूध देती है, भूयांसम् = अत्यधिक, क्लेशम् = क्लेश को, लभते = प्राप्त करती है, अथ = इसके, या = जो, सुदुहा = सुखपूर्वक दूध देने वाली, ताम् = उसको, न + एव = नहीं ही, अपि = थोड़ा भी, वितुदन्ति = कष्ट देती है ।

हिन्दी—हे राजन् ! जो गाय कठिनाई से दूध देती है, वह अत्यधिक दुःखों को प्राप्त होती है । जो सुलभ प्रकार से दूध दे देती है, उसको कोई कष्ट नहीं देता है ।

विशेष—दूध देने वाली गाय की लातें भी सहते हैं, लेकिन दूध नहीं देने वाली गाय को चारा भी ठीक से नहीं मिलता । इसलिए जिससे लाभ होता है, उसकी बातें भी सहते हैं, अन्यथा दूर से ही छोड़ देते हैं ।

यदतप्तं प्रणमति न तत् सन्तापयन्त्यपि ।
यश्च स्वयं नतं दारुं न तत् सन्नमयन्त्यपि ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ—यत्=जो (धातु), अतप्तम्=बिना तपाया हुआ, प्रणमति=प्रणाम करता है, तत्=उसको, न=नहीं, सन्तापयन्ति=सन्ताप देते हैं, तपाते हैं, यः=जो, च=और, स्वयम्=स्वतः, दारुम्=लकड़ी को, नतम्=झुकी हुई, तत्=उसको, अपि=भी, सन्नमयन्ति=झुकाते हैं ।

हिन्दी—जो धातु बिना तपाये मुड़ जाता है, उसे गरम नहीं करते हैं। जो लकड़ी स्वयं झुकी होती है, उसे कोई नहीं झुकाता ।

विशेष—यहाँ लकड़ी एवं धातु का दृष्टान्त दिखाकर विदुर युधिष्ठिर के विषय में कहना चाहते हैं। उनका अभिप्राय है कि पाण्डव स्वयं नम्र एवं आपकी इच्छा के अनुसार चलने वाले हैं। अतः उसे सन्तप्त करने की आवश्यकता नहीं है। न्यायोचित प्रक्रिया से प्रसन्न कर उनका लालन कीजिए ।

एतयोपमया धीरः सन्नमेत बलीयसे ।
इन्द्राय स प्रणमते नमते यो बलीयसे ॥ ३७ ॥

शब्दार्थ—एतत्=इस, उपमया=उदाहरण के द्वारा, धीरः=धीर पुरुष, विद्वान् मनुष्य, बलीयसे=बलवान् के लिए, सन्नमेत=झुक जाना चाहिए, यः=जो, बलीयसे=बलवान् के प्रति, नमते=झुक जाता है, सः=वह, इन्द्राय=इन्द्र को, प्रणमते=प्रणाम करता है ।

हिन्दी—इस उदाहरण के द्वारा धीर पुरुष को बलवान् के सामने झुक जाना चाहिए। जो बलवान् के सामने झुकता है, वह इन्द्र को प्रणाम करता है ।

विशेष—इन्द्र देवराज के साथ बलों के भी स्वामी हैं। अतः बलवान् के सामने झुकने का अभिप्राय देवराज को प्रणाम करना माना जा सकता है। देवता को प्रणाम करना कोई दोष नहीं है ।

पर्जन्यनाथाः पशवो राजानो मन्त्रिबान्धवाः ।
पतयो बान्धवाः स्त्रीणां ब्राह्मणा वेदबान्धवाः ॥ ३८ ॥

शब्दार्थ—पर्जन्यनाथाः=मेघ हैं रक्षक जिनके ऐसे, पशवः=पशु होते हैं, राजानः=राजा, मन्त्रिबान्धवाः=मन्त्री हैं सहायक जिनके ऐसे, पतयः=स्वामी, स्त्रीणाम्=स्त्रियों के, बान्धवाः=रक्षक या सहायक होते हैं। ब्राह्मणाः=ब्राह्मण, वेदबान्धवाः=वेद के रक्षक हैं ।

हिन्दी—मेघ पशुओं के रक्षक होते हैं, राजा के रक्षक मन्त्री होते हैं, स्त्रियों के रक्षक उनके स्वामी होते हैं तथा ब्राह्मण वेद के रक्षक हैं ।

विशेष—राजा को राज्यादि नियमों के अनुसार नम्रभाव को भी अपनाना पड़ता है, लेकिन उस समय मन्त्रियों के परामर्श से आचरण करना चाहिए। विचार-विमर्श के अनुसार लिया गया निर्णय लक्ष्यभेदी तथा अनुकूल होता है ।

सत्येन रक्ष्यते धर्मो विद्या योगेन रक्ष्यते।
मृजया रक्ष्यते रूपं कुलं वृत्तेन रक्ष्यते ॥ ३९ ॥

शब्दार्थ—सत्येन = सत्य के द्वारा, धर्मः = धर्म, रक्ष्यते=रक्षित होता है, विद्या = विद्या, योगेन = अभ्यास द्वारा, रक्ष्यते = रक्षित होता है, मृजया = स्वच्छता से, रूपम् = रूप, रक्ष्यते = रक्षित होता है, कुलम् = कुल, वृत्तेन = व्यवहार से, रक्ष्यते = रक्षित होता है।

हिन्दी—सत्य के द्वारा धर्म की रक्षा होती है, योग से विद्या की रक्षा होती है, स्वच्छता से सौन्दर्य की रक्षा होती है तथा उत्तम आचरण से वंश की रक्षा होती है।

मानेन रक्ष्यते धान्यमश्वान् रक्षत्यनुक्रमः।
अभीक्ष्णदर्शनं गाश्च स्त्रियो रक्ष्याः कुचैलतः ॥ ४० ॥

शब्दार्थ—मानेन = प्रमाण से (माप-तौल से), धान्यम् = धान्य की, रक्ष्यते = रक्षा होती है, अश्वान् = घोड़ों को, अनुक्रमः = फेरने से, रक्षति=रक्षा होती है, गाः = गायें, अभीक्ष्णदर्शनम् = निरन्तर देख-भाल करना, च = और, स्त्रियः = स्त्रियों की, कुचैलतः = गन्दे वस्त्रों से, रक्ष्याः = रक्षा करनी चाहिए।

हिन्दी—मापने-तौलने से धान्य की रक्षा होती है, फेरने से घोड़े की रक्षा होती है, बार-बार की देखभाल से गौओं की और गन्दे वस्त्रों से स्त्रियों की रक्षा करनी चाहिए।

न कुलं वृत्तहीनस्य प्रमाणमिति मे मतिः।
अन्तेष्वपि हि जातानां वृत्तमेव विशिष्यते ॥ ४१ ॥

शब्दार्थ—वृत्तहीनस्य = चरित्रहीन का, न कुलम् = श्रेष्ठ कुल नहीं होता है, इति = ऐसा, प्रमाणम् = प्रमाण, मे = मेरी, मतिः = बुद्धि, अन्तेष्वपि = निम्न कुलों में भी, जातानाम् = उत्पन्न व्यक्तिओं का, वृत्तम् = चरित्र, विशिष्यते = विशिष्ट होता है।

हिन्दी—मेरे विचार से चरित्रहीन मनुष्य का श्रेष्ठ कुल प्रमाण नहीं हो सकता, क्योंकि निम्न कुल में उत्पन्न मनुष्य का भी आचार श्रेष्ठ हो सकता है।

विशेष—ऊँचे कुल में उत्पन्न होने मात्र से कोई बड़ा नहीं होता है, साथ ही उसे बड़ा भी नहीं मानना चाहिए। उसी प्रकार नीच कुल में जन्म लेने से भी कोई नीच नहीं हो सकता, वहाँ गुण भी हो सकते हैं।

य ईर्षुः परवित्तेषु रूपे वीर्ये कुलान्वये।
सुखसौभाग्यसत्कारे तस्य व्याधिरनन्तकः ॥ ४२ ॥

शब्दार्थ—यः = जो, ईर्षुः = ईर्ष्या करनेवाला है, परवित्तेषु = दूसरों के धन के विषय में, रूपे = रूप के विषय में, वीर्ये = बल-पराक्रम के विषय में, कुलान्वये = उत्तम कुल के विषय में, सुखसौभाग्यसत्कारे = सुख, सौभाग्य और सत्कार के विषय में, तस्य = उसकी, व्याधिः = रोग, अनन्तकः = निरन्तर रहता है।

हिन्दी—जो दूसरे के धन, रूप, वीरता, कुलीनता, सौभाग्य और सम्मान ईर्ष्या करता है, उसका यह रोग असाध्य है अर्थात् निरन्तर बना रहता है।

अकार्यकरणाद् भीतः कार्याणाञ्च विवर्जनात्।
अकाले मन्त्रभेदाच्च येन माद्येन्न तत् पिबेत्॥ ४३॥

शब्दार्थ—अकार्यकरणात्=अनुचित कार्य करने से, भीतः=डरा हुआ, कार्याणा =करने योग्य कार्यों के, च=और, विवर्जनात्=छोड़ देने से, अकाले=असमय मन्त्रभेदात्=विचार प्रकट होने से, च=और, येन=जिससे, माद्येत्=मत्त हो जा न=नहीं, तत्=उसे, पिबेत्=पान करे।

हिन्दी—न करने योग्य कार्य के करने से डरता रहे तथा करणीय कार्यों के करने से एवं कार्यसिद्धि से पूर्व मन्त्रभेदन से डरता रहे और मद देने वाली वस्तु पान न करे।

विशेष—सदाचार रखना तथा अनुचित कार्यों को न करना सज्जनों का स्वभा है। मन्त्रभेद से भी अनेक दोष आ जाते हैं तथा कार्य नष्ट हो जाते हैं। इसलि इष्टसिद्धि से पूर्व मन्त्रणा का प्रकाश नहीं करना चाहिए। मदिरा से बुद्धि नष्ट जाती है। विवेक नष्ट हो जाने से सही-गलत का ज्ञान ही समाप्त हो जाता है इसलिए मद्यपान नहीं करना चाहिए।

विद्यामदो धनमदस्तृतीयोऽभिजनो मदः।
मदा एतेऽवलिप्तानामेत एव सतां दमाः॥ ४४॥

शब्दार्थ—विद्यामदः=विद्या का मद, धनमदः=धन का मद, तृतीयः=तीसरा अभिजनः=सहायक, मदः=मद, एते=ये, मदाः=मद हैं। अवलिप्तानाम्=घमण्डिय के लिए, एते+एव=ये ही, सताम्=सज्जनों के, दमाः=दमन करने के साधन हैं

हिन्दी—विद्या का मद, सम्पत्ति का मद, उच्च कुल में उत्पन्न होने ए सहायकों का मद केवल अविवेकियों को होता है, सज्जनों के लिए तो ये ही मद दम के द्वारा शान्तिकारक होते हैं।

विशेष—महाभारत काल में कुल का महत्त्व था, इसलिए द्रोणाचार्य ने कर्ण वंश पूछा था। अतः कुल का महत्त्व वंश होता है। लेकिन टीकाकारों ने 'अभिजन शब्द का सहायक अर्थ लिखा है। इसलिए कि सहायक के बल पर लोग बहुत का करते हैं। ऐसी परिस्थिति में सहायक अर्थ करना भी उचित ही है। कर्ण की हार्दिक सहायता के अनुसार ही दुर्योधन ने पाण्डवों से सन्धि नहीं की तथा युद्ध में तत्पर हुआ।

असन्तोऽभ्यर्थिताः सद्भिः क्वचित् कार्ये कदाचन।
मन्यन्ते सन्तमात्मानमसन्तमपि विश्रुतम्॥ ४५॥

शब्दार्थ—असन्तः=असत्पुरुष, अभ्यर्थिताः=प्रार्थित, सद्भिः=सज्जनों से, क्वचित्=किसी, कार्ये=कार्य में, कदाचन=किसी समय, आत्मानम्=अपने-आपको,

सन्तम् = अच्छा, मन्यन्ते = मानते हैं, असन्तम् = बुरे होते हुए को, अपि = भी, विश्रुतम् = प्रसिद्ध को।

हिन्दी — कभी किसी कार्य में सज्जनों द्वारा प्रार्थना किये जाने पर दुर्जन अपने को प्रसिद्ध दुष्ट समझते हुए भी सज्जन मानने लगते हैं।

विशेष — सज्जनों को दुर्जनों से सहायता नहीं लेनी चाहिए। सहायता लेने से दो गति हो सकती है — या तो कार्य सिद्ध नहीं होंगे अथवा बीच में विघ्न उत्पन्न कर देंगें। क्योंकि उनका स्वभाव सदा नीचता से भरा ही रहता है। साथ ही स्वयं के लिए इतना बड़प्पन चाहेंगे जिससे लोकमर्यादा नष्ट होगी।

गतिरात्मवतां सन्तः सन्त एव सतां गतिः।
असतां च गतिः सन्तो न त्वसन्तः सतां गतिः॥ ४६॥

शब्दार्थ—आत्मवताम् = मनुष्यों का, गतिः = सहारा, सन्तः = सत्पुरुष हैं, सन्तः = सत्पुरुष, एव = ही, सन्तः = सत्पुरुषों का, गतिः = सहारा हैं। असताम् = असत्पुरुषों का, च = भी, गतिः = सहारा, सन्तः = सत्पुरुष ही हैं, न = नहीं, तु = तो, असन्तः = असत्-पुरुष, सताम् = सत्पुरुषों का, गतिः = सहारा है।

हिन्दी — आत्मज्ञ मनुष्यों का सहारा सत्पुरुष ही होते हैं, सत्पुरुषों का सहारा भी सत्पुरुष ही होते हैं तथा असत्पुरुषों का सहारा भी सत्पुरुष ही होते हैं। असत्पुरुष सत्पुरुषों के कभी सहारा नहीं होते हैं।

विशेष — सज्जन सबका सहारा होते हैं, परन्तु असत्पुरुष तो सत्पुरुषों की भी सहायता नहीं करते हैं। अतः इससे प्रस्तुत प्रसङ्ग से सम्बन्ध है कि पाण्डव समय आने पर तुम्हारे उपकारक हो सकते हैं, लेकिन तुम उनके सहायक नहीं बन सकते हो।

जिता सभा वस्त्रवता मिष्टाशा गोमता जिता।
अध्वा जितो यानवता सर्वं शीलवता जितम्॥ ४७॥

शब्दार्थ—जिता = जीती गई, सभा = सभा, वस्त्रवता = अच्छे वस्त्र वाले से, मिष्टाशा = मिठाई की इच्छा, गोमता = गाय वाले से, जिता = जीती गयी, अध्वा = मार्ग, जितः = जीता गया, यानवता = सवारी वाले से, सर्वम् = सबको, शीलवता = उत्तम स्वभाव वाले ने, जितम् = जीत लिया है।

हिन्दी—सुन्दर वस्त्र वाला सभी को जीत लेता है, गाय वाला व्यक्ति मीठे स्वाद की इच्छा को जीत लेता है, सवारी से चलने वाला मार्ग को जीत लेता है और शील-सम्पन्न सभी को जीत लेता है।

विशेष — सभा में वही शोभा पाता है जो अच्छे वस्त्र पहनने एवं बोलने में दक्ष हो। इसी प्रकार गाय के दूध से अनेक प्रकार की मिठाई बनाकर खाने वाले की इच्छा जीत लेते हैं। सवारी होने पर रास्ते का कष्ट नहीं झेलना पड़ता है। शीघ्र ही बहुत दूरी को पार किया जा सकता है। शीलवान् पुरुष अपने स्वभाव से सबको जीत लेता है।

शीलं प्रधानं पुरुषे तद् यस्येह प्रणश्यति।
न तस्य जीवितेनार्थो न धनेन न बन्धुभिः॥ ४८॥

शब्दार्थ—शीलम्=शील (उत्तम स्वभाव), प्रधानम्=मुख्य है, तद्= पुरुषे=पुरुष में, यस्य=जिसका, इह=इस लोक में, प्रणश्यति=नष्ट हो जाता तस्य=उसका, न जीवितेन=नहीं जीने से, अर्थः=प्रयोजन होता है, न धनेन= धन से, न बन्धुभिः=नहीं बन्धुओं से।

हिन्दी—मनुष्य में शील ही प्रधान है। इसी कारण इस लोक में वह शील मनुष्य में नष्ट हो जाता है उसका न जीने से प्रयोजन है और न धन से और न बन्धुओं से अर्थात् उसका जीना ही व्यर्थ है।

विशेष—'स्वभावो मूर्ध्नि तिष्ठति' अर्थात् स्वभाव सबसे ऊपर रहता है। उ सामने अन्य साधन व्यर्थ हो जाते हैं। इसलिए शीलस्वभाव का महत्त्व सबसे ऊ माना जाता है।

आढ्यानां मांसपरमं मध्यानां गोरसोत्तरम्।
तैलोत्तरं दरिद्राणां भोजनं भरतर्षभ॥ ४९॥

शब्दार्थ—भरतर्षभ=हे धृतराष्ट्र! आढ्यानाम्=धनवानों का, भोजनम्= भोजन, मांसपरमम्=मांसप्रधान, मध्यानाम्=मध्यम स्थिति वाले मनुष्यों गोरसोत्तरम्=दूध, दही आदि प्रधान होता है, तैलोत्तरम्=तैलप्रधान, दरिद्राण =दरिद्रों का भोजन होता है।

हिन्दी—हे धृतराष्ट्र! धनवानों का भोजन मांस-प्रधान होता है, मध्य स्थिति वाले लोगों में दूध-दही की प्रधानता होती हैं और दरिद्रों के भोजन में त की प्रधानता होती है।

सम्पन्नतरमेवान्नं दरिद्राः भुञ्जते सदा।
क्षुत्स्वादुतां जनयति सा चाढ्येषु सुदुर्लभा॥ ५०॥

शब्दार्थ—सम्पन्नतरम्=बहुत उत्तम, एव=ही, अन्नम्=अन्न को, दरिद्राः दरिद्र पुरुष, भुञ्जते=खाते हैं, सदा=सर्वदा, क्षुत्=भूख, स्वादुताम्=स्वाद को, जनयति=उत्पन्न करती है, सा=वह, च=और, आढयेषु=धनवानों सुदुर्लभा=बहुत दुर्लभ है।

हिन्दी—दरिद्र पुरुष सदा उत्तम अन्नों को ही खाते हैं, क्योंकि उनकी भूख कारण अन्न में स्वादुत्व रहता है। धनवानों में यह दुर्लभ है, क्योंकि उन्हें भूख न लगती हैं। वे प्रायः मन्दाग्नि से पीड़ित रहते हैं।

विशेष—'धनक्षये वर्द्धति जाठराग्निः।' अर्थात् धन के अभाव में भूख अधि लगती है। जो भी खा लेता है वही सब पच जाता है।

प्रायेण श्रीमतां लोके भोक्तुं शक्तिर्न विद्यते।
जीर्यन्त्यपि हि काष्ठानि दरिद्राणां महीपते॥ ५१॥

शब्दार्थ—महीपते ! = हे राजन् ! प्रायेण = बहुत करके, श्रीमताम् = धनवानों की, लोके = लोक में, भोक्तुम् = खाने के योग्य, शक्तिः = सामर्थ्य, न = नहीं, विद्यते = होता है, दरिद्राणाम् = दरिद्र पुरुषों को, काष्ठानि = लकड़ियाँ, अपि = भी, हि = निश्चय ही, जीर्यन्ति = पच जाती हैं।

हिन्दी—हे राजन् ! प्रायः लोक में धनवानों को खाने की शक्ति नहीं होती है और दरिद्रों को लकड़ियाँ भी पच जाती हैं। अर्थात् वे जो खा लेते हैं उसे पचा लेते हैं।

विशेष—ये तीन श्लोक परस्पर अप्रासङ्गिक जान पड़ते हैं, क्योंकि पूर्व के श्लोक में सत्पुरुष के लिए शील एवं मद का प्रसङ्ग है। बाद में भी प्रकारान्तर से इन्हीं के विषय में कहा गया है। अतः महाभारत के टीकाकार नीलकण्ठ दीक्षित ने इनमें सामञ्जस्य स्थापित करने का प्रयास किया है कि ऐश्वर्य-प्राप्ति की अपेक्षा शील की रक्षा करते हुए धनाभाव भी रहे तो वह अच्छा है। क्योंकि दरिद्र पुरुष को भोजन में जो स्वाद आता है, वह धनवानों के लिए दुर्लभ है।

अवृत्तिर्भयमन्त्यानां मध्यानां मरणाद् भयम्।
उत्तमानां तु मर्त्यानामवमानात् परं भयम्॥ ५२॥

शब्दार्थ—अन्त्यानाम् = साधारण लोगों को, अवृत्तिः = जीविका-निर्वाह के साधन का अभाव, भयम् = भय होता है, मध्यानाम् = मध्यम लोगों को, मरणात् = मरण से, भयम् = भय होता है, उत्तमानाम् = उत्तम पुरुषों को, तु = निश्चय ही, मर्त्यानाम् = मनुष्यों के, अवमानात् = अपमान से, परम् = अत्यन्त, भयम् = भय होता है।

हिन्दी—साधारण लोगों को जीविका-निर्वाह के साधनों का भय रहता है, मध्यम लोगों को मृत्यु का भय होता है, लेकिन उत्तम लोगों को केवल अपमान से ही भय होता है।

विशेष—'मानो हि महतां धनम्' अर्थात् महाजनों के लिए मान ही सबसे बड़ा धन है। उनके लिए अपमानित होना सबसे अधिक दुःखदायक वस्तु है। इसलिए नीतिकार ने अपमान से भय उत्तम जनों के लिए माना है। 'मानापमानयोर्तुल्यम्' (गीता)। 'अपमानं पुरस्कृत्य मानं कृत्वा तु पृष्ठतः। स्वकार्यं साधयेत् धीमान् कार्य-ध्वंसो हि मूर्खता'॥ इत्यादि स्थलों में अपमान को अङ्गीकार करने के विधानों से विरोध नहीं माना जाना चाहिए। क्योंकि प्रकरण-भेद से अर्थों के अभिप्राय में भेद हो जाता है।

ऐश्वर्यमदपापिष्ठा मदाः पानमदादयः।
ऐश्वर्यमदमत्तो हि नापतित्वा विबुध्यते॥ ५३॥

शब्दार्थ—पानमदादयः = सुरापान आदि मद, मदाः = मद, ऐश्वर्यमदपापिष्ठाः = ऐश्वर्य रूपी मद से और भी पापपूर्ण हो जाते हैं, ऐश्वर्यमदमत्तः = ऐश्वर्य रूपी मद से मत्त, हि = निश्चय ही, अपतित्वा = बिना गिरे, न विबुध्यते = बोध को प्राप्त नहीं होता है।

हिन्दी—मदिरापान करने से भी मद होता है, लेकिन ऐश्वर्य का मद बहुत होता है। क्योंकि ऐश्वर्य के मद से मतवाला पतित हुए बिना बोध को प्राप्त होता है।

विशेष— 'यौवनं धनसम्पत्तिः प्रभुत्वमविवेकिता।
एकैकमप्यनर्थाय किमु यत्र चतुष्टयम्'॥

युवावस्था, धनसम्पत्ति, अधिकार प्राप्त होना तथा अविवेक का होना—यह एक भी अनर्थ का कारण है, परन्तु जहाँ चारों एक साथ हो, वहाँ क्या कहना इत्यादि स्थलों में ऐश्वर्य की निन्दा की गयी है। साथ ही लक्ष्मी का वाहन उ शास्त्र-पुराणों में बतलाया गया है। इसका अभिप्राय है कि जिस घर में लक्ष्मी निवास होता है, वहाँ अविवेकता प्रायः आ जाती है। इसलिए शास्त्र-पुराणों नीतिकारों ने ऐश्वर्य के मद से बचने के लिए निर्देश किया है। ये सब निर्देश अविनं पुरुषों के लिए हैं, विनीत पुरुष ऐश्वर्य प्राप्त करके लोकोपकार करते हैं।

इन्द्रियैरिन्द्रियार्थेषु वर्तमानैरनिग्रहैः।
तैरयं ताप्यते लोको नक्षत्राणि ग्रहैरिव॥ ५४॥

शब्दार्थ—इन्द्रियैः = इन्द्रियों के द्वारा, इन्द्रियार्थेषु = इन्द्रियों के शब्दादि विष में, वर्तमानैः = वर्तमान, अनिग्रहैः = असंयमितों द्वारा, तैः = उनसे, अयम् = ताप्यते = पीड़ित किया जाता है, लोकः = संसार, नक्षत्राणि = नक्षत्र, ग्रहैः = से, इव = यथा।

हिन्दी—वश में न रहने के कारण भोगों में रमण करने वाली इन्द्रियों से सं वैसे ही कष्ट प्राप्त करता है, जैसे ग्रहों से नक्षत्र।

विशेष—'न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति' (गीता)। कामभो कभी इच्छा की शान्ति नहीं होती है। अतः जो विषय-भोग में समय बिताते उनका अन्त दुःखद होता है। उन्हें संसार में कभी भी शान्ति नहीं मिलती है।

यो जितः पञ्चवर्गेण सहजेनात्मकर्षिणा।
आपदस्तस्य वर्धन्ते शुक्लपक्ष इवोडुराट्॥ ५५॥

शब्दार्थ—यः = जो, जितः = जीता गया, पञ्चवर्गेण = आँख, कान, नाक, तथा जिह्वा—इन पाँच ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा, सहजेन = सरलता से, आत्मकर्षिणा अपनी ओर खींचने वाले से, तस्य = उसकी, आपदः = आपत्तियाँ, वर्धन्ते = बढ़ती शुक्लपक्षे = शुक्लपक्ष में, इव = यथा, उडुराट् = चन्द्रमा।

हिन्दी—जो मनुष्य वश में करने वाली इन्द्रियों से सहज ही जीत लिया ग उसकी विपत्तियाँ शुक्लपक्ष के चन्द्रमा की भाँति वृद्धि को प्राप्त करती हैं।

विशेष—प्रस्तुत तीन श्लोकों के द्वारा यह दिखाने का प्रयास किया गया है धृतराष्ट्र ऐश्वर्य-मद में डूब गया है एवं अजितेन्द्रिय हो गया है, अतः ऐसे लोगों विनाश निश्चित है।

अविजित्य य आत्मानममात्यान् विजिगीषते ।
अमित्रान् वाऽजितामात्यः सोऽवशः परिहीयते ॥ ५६ ॥

शब्दार्थ—यः=जो, आत्मानम्=स्वयं को, अविजित्य=बिना जीते हुए, अमात्यान्=मन्त्रियों को, विजिगीषते=जीतने की इच्छा करता है। वा=अथवा, अजितामात्यः=जिसने मन्त्रियों को नहीं जीता, सः=वह, अवशः=अजितात्मा, परिहीयते=नष्ट हो जाता है।

हिन्दी—जो अपने मन-इन्द्रियों को जीते बिना मन्त्रियों को जीतना चाहता है, मन्त्रियों को वश में किये बिना शत्रुओं को जीतना चाहता है, वह अवश्य नाश को प्राप्त हो जाता है।

विशेष—जो स्वयं को नहीं जीतता, उसके वश में दूसरे कैसे हो सकते हैं? इसलिए आत्मवश होना प्रथम जय का कारण है।

आत्मानमेव प्रथमं द्वेष्यरूपेण यो जयेत्।
ततोऽमात्यानमित्रांश्च न मोघं विजिगीषते ॥ ५७ ॥

शब्दार्थ—आत्मानम्=अपने को, प्रथममेव=पहले ही, द्वेष्यरूपेण=शत्रु रूप से, यः=जो, जयेत्=वश में कर ले, ततः=उसके बाद, अमात्यान्=मन्त्रियों को, अमित्रान्=शत्रुओं को, च=और, न=नहीं, मोघम्=व्यर्थ, विजिगीषते=जीतने की इच्छा रखता है।

हिन्दी—जो राजा अपने को (इन्द्रिय सहित मन को) शत्रु समझ कर जीत लेता है, उसके बाद मन्त्रियों और शत्रुओं को जीतने की इच्छा रखता है, उसे अवश्य ही सफलता मिलती है।

विशेष—'सर्वमात्मवशं सुखम्' अर्थात् आत्मा (मन) को वश में रखना सबसे बड़ा सुख है। 'मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः' (मनु०)। अर्थात् मन ही मनुष्यों के बन्ध और मोक्ष का कारण है।

वश्येन्द्रियं जिताऽत्मानं धृतदण्डं विकारिषु।
परीक्ष्य कारिणं धीरमत्यन्तं श्रीर्निषेवते ॥ ५८ ॥

शब्दार्थ—वश्येन्द्रियम्=जिसके वश में इन्द्रियाँ हैं, जितात्मानम्=इन्द्रियजित्, धृतदण्डम्=दण्ड धारण करने वाला, विकारिषु=बुरा कार्य करने वालों पर, परीक्ष्य=परीक्षा करके, कारिणम्=कार्य करने वाले, धीरम्=धैर्यवान् को, श्रीः=लक्ष्मी, अधिकम्=निरन्तर, निषेवते=सेवन करती है।

हिन्दी—इन्द्रियों तथा मन को वश में करने वाले, अपराधियों को दण्ड देने वाले तथा निरीक्षण कर कार्य करने वाले धीर पुरुष की लक्ष्मी निरन्तर बढ़ती रहती है।

विशेष—इससे यह ध्वनित हो रहा है कि हे धृतराष्ट्र! अजितेन्द्रिय होकर जितेन्द्रिय पाण्डवों को किसी प्रकार अमात्यस्थानीय पुत्रों के वशीभूत होकर जीत भी लिया, तो भी तुम्हारी राज्यलक्ष्मी स्थिर नहीं हो सकती है। अतः इस प्रकार राजनीति-विरुद्ध कार्य को मत करो।

रथः शरीरं पुरुषस्य राजन्नात्मा नियन्तेन्द्रियाण्यस्य चाश्वाः ।
तैरप्रमत्तः कुशली सदश्वैर्दान्तैः सुखं याति रथीव धीरः ॥ ५९ ॥

शब्दार्थ—राजन् = हे धृतराष्ट्र ! पुरुषस्य = पुरुष का, शरीरम् = शरीर, रथ = रथ, आत्मा = आत्मा, नियन्ता = सारथी, इन्द्रियाणि = इन्द्रियाँ, अस्य = इ च = और, अश्वाः = अश्व हैं, तैः = उनसे, अप्रमत्तः = प्रमाद न करता हुआ, कु चतुर, सदश्वैः = अच्छे घोड़ों से, दान्तैः = वश में किये हुए, सुखम् = सुखपू याति = प्राप्त होता है, रथी = रथ वाले के, इव = समान, धीरः = धीर पुरुष ।

हिन्दी—हे राजन् ! मनुष्य का यह शरीर रथ है, बुद्धि (आत्मा) इ सारथी है, इन्द्रियाँ घोड़े हैं, इसको वश में करके सावधान रहने वाला कुशल धीर पुरुष रथी की भाँति वश में किये हुए अश्वों से सुखपूर्वक यात्रा करता है।

विशेष—उपमान-उपमेय भाव से वस्तुओं को सरल करके समझाने की बहुत पुरानी है । इससे गहन विषय सरल एवं बोधगम्य हो जाते हैं । इस प्र के रथ एवं शरीर का दृष्टान्त उपनिषद् में भी देखा जाता है । यथा—

'आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु ।
बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च ॥
इन्द्रियाणि हयानाहुर्विषयांस्तेषु गोचरान्' ॥ (कठोपनि० १।३।३

अर्थात् आत्मा को रथी (रथ में बैठने वाला) समझना चाहिए, शरीर को बुद्धि को सारथि, मन को लगाम और इन्द्रियों के विषय इन्द्रिय रूपी अश्वों के गो (विचरने का स्थान) समझना चाहिए ।

एतान्यनिगृहीतानि व्यापादयितुमप्यलम् ।
अविधेया इवादान्ता हयाः पथि कुसारथिम् ॥ ६० ॥

शब्दार्थ—एतानि = ये इन्द्रियाँ, अनिगृहीतानि = वश में न की गयी, व्या यितुम् = नष्ट करने के लिए, अपि = भी, अलम् = समर्थ हैं, अविधेयाः = अशि इव = जैसे, अदान्ताः = उच्छृङ्खल, हयाः = घोड़े, पथि = मार्ग में, कुसारथिम् = नि सारथि को ।

हिन्दी—न सिखाये गये तथा वश में न आने वाले अश्व जैसे मूर्ख सारथि मार्ग में मार डालते हैं, वैसे ही वश में न की गयी इन्द्रियाँ मनुष्य को मार समर्थ होती हैं ।

विशेष—जिस मनुष्य की इन्द्रियाँ वश में नहीं है वह अवश्य ही नष्ट जाता है—

'कुरङ्गमातङ्गपतङ्गभृङ्गमीना हताः पञ्चभिरेव पञ्च ।
एकः प्रमादी स कथन्न हन्यात् यः सेव्यते पञ्चभिरेव पञ्च' ॥

हिरण, हाथी, कीट, भ्रमर तथा मछली एक-एक इन्द्रिय के वशीभूत होने से न हो जाते हैं । परन्तु मनुष्य के पास पांचों इन्द्रियाँ हैं, यदि एक भी इन्द्रिय व नहीं रही तो कैसे नष्ट नहीं होगा ?

अनर्थमर्थतः पश्यन्नर्थं चैवाप्यनर्थतः ।
इन्द्रियैरजितैर्बालः सुदुःखं मन्यते सुखम् ॥ ६१ ॥

शब्दार्थ—अनर्थम् = अन्याय को, अर्थतः = अर्थ के निमित्त, पश्यन् = देखता हुआ, अर्थम् = अर्थ को, च = और, एव + अपि= भी, अनर्थतः = अन्याय के निमित्त, इन्द्रियैः = इन्द्रियों के द्वारा, अजितैः = नहीं जीतने वाले, बालः = मूर्ख, सुदुःखम् = महान् दुःख को भी, सुखम् = सुख, मन्यते = मानता है ।

हिन्दी—इन्द्रियों पर विजय न प्राप्त करने वाले अर्थ को अनर्थ, अनर्थ को अर्थ समझकर मूर्ख पुरुष बहुत दुःख को भी सुख समझता है ।

विशेष—अज्ञान के कारण सुख में दुःख और दुःख में सुख का ज्ञान होता है । परन्तु मृगमरीचिका की भाँति अन्त में समूल नष्ट हो जाता है ।

धर्मार्थौ यः परित्यज्य स्यादिन्द्रियवशानुगः ।
श्रीप्राणधनदारेभ्यः क्षिप्रं स परिहीयते ॥ ६२ ॥

शब्दार्थ—धर्मार्थौ = धर्म और अर्थ को, यः = जो, परित्यज्य = छोड़कर, इन्द्रिय-वशानुगः = इन्द्रियों के वशीभूत, स्यात् = हो जाय, सः = वह, क्षिप्रम् = शीघ्र ही, श्रीप्राणधनदारेभ्यः = यश, प्राण और स्त्री से, परिहीयते = सर्वथा रहित हो जाता है ।

हिन्दी—जो धर्म तथा अर्थ को छोड़कर इन्द्रियों के वशीभूत हो जाता है, वह लक्ष्मी, प्राण, धन तथा स्त्री के द्वारा शीघ्र ही छोड़ दिया जाता है ।

अर्थानामीश्वरो यः स्यादिन्द्रियाणामनीश्वरः ।
इन्द्रियाणामनैश्वर्यादैश्वर्याद् भ्रश्यते हि सः ॥ ६३ ॥

शब्दार्थ—अर्थानाम् = धन-सम्पत्तियों का, ईश्वरः = स्वामी, यः = जो, स्यात् = हो, इन्द्रियाणाम् = इन्द्रियों का, अनीश्वरः = दास, सः = वह, हि = निश्चय ही, इन्द्रियाणाम् = इन्द्रियों का, अनैश्वर्यात् = दास होने से, ऐश्वर्यात् = ऐश्वर्य से, भ्रश्यते = भ्रष्ट हो जाता है ।

हिन्दी—जो मनुष्य धनसम्पन्न होने पर भी इन्द्रियों पर अधिकार नहीं रखता; इन्द्रियों को वश में न रखने के कारण वह ऐश्वर्य से भ्रष्ट हो जाता है ।

आत्मनाऽऽत्मानमन्विच्छेन्मनोबुद्धीन्द्रियैर्यतैः ।
आत्मा ह्येवात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः ॥ ६४ ॥

शब्दार्थ—आत्मना = अपने-आप से, आत्मानम् = आत्मा को, अन्विच्छेत् = जानने की इच्छा करे, मनोबुद्धीन्द्रियैः = मन, बुद्धि और इन्द्रियों से, यतैः = वश में की हुई से, आत्मा = आत्मा, हि = निश्चयपूर्वक, एव = ही, आत्मनः = अपना, बन्धुः = सहायक है, आत्मा = स्वयं, एव = ही, आत्मनः = अपना, रिपुः = शत्रु है ।

हिन्दी—मन, बुद्धि तथा इन्द्रियों को वश में करके अपने से ही आत्मा को जानने की इच्छा करे, क्योंकि आत्मा ही अपना बन्धु तथा आत्मा ही अपना शत्रु है ।

बन्धुरात्माऽऽत्मनस्तस्य येनैवात्माऽऽत्मना जितः ।
स एव नियतो बन्धुः स एव नियतो रिपुः ॥ ६५ ॥

शब्दार्थ—आत्मा = आत्मा, आत्मनः = अपना, बन्धुः = सहायक है, आत्मनः = अपना, तस्य = उसका, येन = जिससे, एव = निश्चय से, आत्मा = आत्मा, आत्मना = स्वयं से, जितः = जीता गया है, सः = वह, एव = ही, नियतः = निश्चित रूप से, बन्धुः = सहायक है, सः = वह, एव = ही, नियतः = निश्चित रूप से, रिपुः = शत्रु है।

हिन्दी—आत्मा उसका ही बन्धु है, जिसने अपने से आत्मा को जीत लिया है वही सच्चा बन्धु है और वही निश्चित रूप से शत्रु है।

विशेष—शरीर एवं इन्द्रियों के विषय में आत्मा को ही साक्षी एवं निश्चित रूप से उद्धारक माना गया है। उपनिषदों में आत्मा के द्वारा देखना, मनन करना, सुनना एवं निदिध्यासन करने के लिए कहा गया है। गीता में भी छठे अध्याय के पाँचवें एवं छठे श्लोकों में इन्हीं दोनों श्लोकों से मिलते भाव एवं अर्थ मिलते हैं।

क्षुद्राक्षेणेव जालेन झषावपिहितावुरू ।
कामश्च राजन् क्रोधश्च तौ प्रज्ञानं विलुम्पतः ॥ ६६ ॥

शब्दार्थ—क्षुद्राक्षेण = छोटे छेदवाले, इव = जैसे, जालेन = जाल से, झषौ = दो मछलियाँ, अपिहितौ = फाँसी गयी, उरू = बड़ी, कामः = काम, च = और, राजन् = हे धृतराष्ट्र, क्रोधः = क्रोध, च = और, तौ = वे दोनों, प्रज्ञानम् = बुद्धि को विलुम्पतः = नष्ट कर देते हैं।

हिन्दी—राजन् ! जैसे सूक्ष्म छेद वाले जाल में फँसी हुई दो बड़ी मछलियाँ मिलकर जाल को काट देती है, वैसे ही काम और क्रोध दोनों विशिष्ट ज्ञान को विलुप्त कर देते हैं।

विशेष—काम और क्रोध रजोगुणसमुद्भव होने के कारण मनुष्य में रागात्मिका प्रवृत्ति देते हैं। साथ ही वहाँ फँसकर मनुष्य की बुद्धि और विवेक भी समाप्त हो जाता है। इसलिए गीता में तथा अन्यान्य आकर-ग्रन्थों में इसकी निन्दा की गयी है।

समवेक्ष्येह धर्मार्थौ सम्भारान् योऽधिगच्छति ।
स वै सम्भृतसम्भारः सततं सुखमेधते ॥ ६७ ॥

शब्दार्थ—यः = जो, समवेक्ष्य = अच्छी तरह से सोच-विचार कर, इह = इस संसार में, धर्मार्थौ = धर्म और अर्थ को, सम्भारान् = साधन-सामग्रियों को, अधिगच्छति = प्राप्त करता है, सः = वह, वै = निश्चय ही, सम्भृतसम्भारः = एकत्रित किये हुए साधनों से, सततम् = सदा, सुखम् = सुखपूर्वक, एधते = बढ़ता है।

हिन्दी—जो मनुष्य इस जगत् में धर्म एवं अर्थ दोनों को सम्यक् प्रकार से सोंच-विचार कर अपनी उन्नति के साधनों को प्राप्त करता है, वह व्यक्ति निश्चित रूप से एकत्रित हुए साधनों से सुखपूर्वक हमेशा बढ़ता रहता है।

य: पञ्चाभ्यन्तरान् शत्रूनविजित्य मनोमयान्।
जिगीषति रिपूनन्यान् रिपवोऽभिभवन्ति तम् ॥ ६८ ॥

शब्दार्थ—य: = जो, पञ्च = पाँच, आभ्यन्तरान् = अन्दर के काम-क्रोधादि, शत्रून् = शत्रुओं को, अविजित्य = न जीत कर, मनोमयान् = मन के विकारभूत, जिगीषति = जीतने की इच्छा करता है, रिपून् = शत्रुओं को, अन्यान् = अन्यों को, रिपव: = शत्रु, तम् = उसको, अभिभवन्ति = जीत लेते हैं।

हिन्दी—जो मन के विकारभूत पाँच इन्द्रिय रूपी अन्दर के शत्रुओं को जीते विना ही शत्रुओं को जीतने की इच्छा करता है, उसको शत्रु पराजित कर देते हैं।

विशेष—सृष्टि की उत्पत्ति-प्रक्रिया के अनुसार दर्शनों में प्रतिपादित अहंकार रूप मन से पाँच इन्द्रियों की उत्पत्ति मानी गयी है। 'अहङ्काराद् पञ्चतन्मात्राण्युभयमिन्द्रियं च'। उपनिषद् में भी कहा गया है—'मनसा ह्येव पश्यति मनसा शृणोति' इत्यादि तथा 'मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः' (मनु०)। इस प्रकार संकल्प-विकल्प रूप मन के द्वारा आये हुए विकार क्रोधादि को जीतकर जो प्रक्रिया अपनायी जाती है, वह ठीक रहती है। अन्यथा मन के वशीभूत होकर किये गये कार्य से न इष्टसिद्धि होती है और न आत्मकल्याण। इसलिए विदुर ने धृतराष्ट्र से मन के अनुसार कार्य नहीं करने का निर्देश किया है।

दृश्यन्ते हि महात्मानो वध्यमाना: स्वकर्मभि:।
इन्द्रियाणामनीशत्वात् राजानो राज्यविभ्रमै: ॥ ६९ ॥

शब्दार्थ—महात्मान: = सज्जन लोग, स्वकर्मभि: = अपने कर्मों से, वध्यमाना: = मारे जाते हुए, हि = निश्चयपूर्वक, दृश्यन्ते = दिखाई देते हैं, राजान: = राजा लोग, राज्यविभ्रमै: = ऐश्वर्य के मद से, इन्द्रियाणाम् = इन्द्रियों के, अनीशत्वात् = स्वामी न होने से (नष्ट होते हुए देखे जाते हैं)।

हिन्दी—इन्द्रियों पर वश न होने के कारण महात्मा अपने कर्मों से तथा राजा अपने राज्य के भोग-विलास से बँधे नष्ट होते हुए दिखाई देते हैं।

विशेष—इतिहास-पुराणों में अनेक ऐसे उदाहरण भरे हुए हैं, जहाँ इन्द्रिय वश में न होने के कारण एवं ऐश्वर्यमद से काम-क्रोधादि के वशीभूत होकर नष्ट हो गये रावण-दुर्योधनादि इसके उदाहरण हैं।

असन्त्यागात् पापकृतामपापांस्तुल्यो दण्ड: स्पृशते मिश्रभावात्।
शुष्केणार्द्रं दह्यते मिश्रभावात् तस्मात् पापै: सह सन्धिं न कुर्य्यात् ॥ ७० ॥

शब्दार्थ—पापकृताम् = पापियों को, असंत्यागात् = न छोड़ने से, अपापान् = अच्छे पुरुषों को, तुल्य: = समान, दण्ड: = दण्ड, स्पृशते = स्पर्श करता है। मिश्रभावात् = मेल होने से, शुष्केण = सुखे काष्ठ से, आर्द्रम् = गीली लकडी भी, दह्यते = जल जाती है, मिश्रभावात् = सहयोग से, तस्मात् = इस कारण, पापै: सह = पापियों के साथ, सन्धिम् = मेल, न कुर्यात् = नहीं करना चाहिए, न करें।

बन्धुरात्माऽऽत्मनस्तस्य येनैवात्माऽऽत्मना जितः।
स एव नियतो बन्धुः स एव नियतो रिपुः ॥ ६५ ॥

शब्दार्थ—आत्मा = आत्मा, आत्मनः = अपना, बन्धुः = सहायक है, आत्मनः अपना, तस्य = उसका, येन = जिससे, एव = निश्चय से, आत्मा = आत्मा, आत्मना स्वयं से, जितः = जीता गया है, सः = वह, एव = ही, नियतः = निश्चित रूप से, ब = सहायक है, सः = वह, एव = ही, नियतः = निश्चित रूप से, रिपुः = शत्रु है।

हिन्दी—आत्मा उसका ही बन्धु है, जिसने अपने से आत्मा को जीत लिया है वही सच्चा बन्धु है और वही निश्चित रूप से शत्रु है।

विशेष—शरीर एवं इन्द्रियों के विषय में आत्मा को ही साक्षी एवं निश्चित रू से उद्धारक माना गया है। उपनिषदों में आत्मा के द्वारा देखना, मनन करना, सुन एवं निदिध्यासन करने के लिए कहा गया है। गीता में भी छठे अध्याय के पाँच एवं छठे श्लोकों में इन्हीं दोनों श्लोकों से मिलते भाव एवं अर्थ मिलते हैं।

क्षुद्राक्षेणेव जालेन झषावपिहितावुरू।
कामश्च राजन् क्रोधश्च तौ प्रज्ञानं विलुम्पतः ॥ ६६ ॥

शब्दार्थ—क्षुद्राक्षेण = छोटे छेदवाले, इव = जैसे, जालेन = जाल से, झषौ = मछलियाँ, अपिहितौ = फाँसी गयी, उरू = बड़ी, कामः = काम, च = और, राजन् = हे धृतराष्ट्र, क्रोधः = क्रोध, च = और, तौ = वे दोनों, प्रज्ञानम् = बुद्धि विलुम्पतः = नष्ट कर देते हैं।

हिन्दी—राजन्! जैसे सूक्ष्म छेद वाले जाल में फँसी हुई दो बड़ी मछलि मिलकर जाल को काट देती है, वैसे ही काम और क्रोध दोनों विशिष्ट ज्ञान विलुप्त कर देते हैं।

विशेष—काम और क्रोध रजोगुणसमुद्भव होने के कारण मनुष्य में रागात्मि प्रवृत्ति देते हैं। साथ ही वहाँ फँसकर मनुष्य की बुद्धि और विवेक भी समाप्त हो जाता है। इसलिए गीता में तथा अन्यान्य आकर-ग्रन्थों में इसकी निन्दा की गयी है

समवेक्ष्येह धर्मार्थौ सम्भारान् योऽधिगच्छति।
स वै सम्भृतसम्भारः सततं सुखमेधते ॥ ६७ ॥

शब्दार्थ—यः = जो, समवेक्ष्य = अच्छी तरह से सोच-विचार कर, इह = इ संसार में, धर्मार्थौ = धर्म और अर्थ को, सम्भारान् = साधन-सामग्रियों को, अधि गच्छति = प्राप्त करता है, सः = वह, वै = निश्चय ही, सम्भृतसम्भारः = एकत्रित किए हुए साधनों से, सततम् = सदा, सुखम् = सुखपूर्वक, एधते = बढ़ता है।

हिन्दी—जो मनुष्य इस जगत् में धर्म एवं अर्थ दोनों को सम्यक् प्रकार से सोच विचार कर अपनी उन्नति के साधनों को प्राप्त करता है, वह व्यक्ति निश्चित रूप से एकत्रित हुए साधनों से सुखपूर्वक हमेशा बढ़ता रहता है।

य: पञ्चाभ्यन्तरान् शत्रूनविजित्य मनोमयान्।
जिगीषति रिपूनन्यान् रिपवोऽभिभवन्ति तम् ॥ ६८ ॥

शब्दार्थ—य: = जो, पञ्च = पाँच, आभ्यन्तरान् = अन्दर के काम-क्रोधादि, शत्रून् = शत्रुओं को, अविजित्य = न जीत कर, मनोमयान् = मन के विकारभूत, जिगीषति = जीतने की इच्छा करता है, रिपून् = शत्रुओं को, अन्यान् = अन्यों को, रिपव: = शत्रु, तम् = उसको, अभिभवन्ति = जीत लेते हैं।

हिन्दी—जो मन के विकारभूत पांच इन्द्रिय रूपी अन्दर के शत्रुओं को जीते बिना ही शत्रुओं को जीतने की इच्छा करता है, उसको शत्रु पराजित कर देते हैं।

विशेष—सृष्टि की उत्पत्ति-प्रक्रिया के अनुसार दर्शनों में प्रतिपादित अहंकार रूप मन से पाँच इन्द्रियों की उत्पत्ति मानी गयी है। 'अहङ्कारात् पञ्चतन्मात्राण्युभयमिन्द्रियं च'। उपनिषद् में भी कहा गया है—'मनसा ह्येव पश्यति मनसा शृणोति' इत्यादि तथा 'मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयो:' (मनु०)। इस प्रकार संकल्प-विकल्प रूप मन के द्वारा आये हुए विकार कोधादि को जीतकर जो प्रक्रिया अपनायी जाती है, वह ठीक रहती है। अन्यथा मन के वशीभूत होकर किये गये कार्य से न इष्टसिद्धि होती है और न आतमकल्याण। इसलिए विदुर ने धृतराष्ट्र से मन के अनुसार कार्य नहीं करने का निर्देश किया है।

दृश्यन्ते हि महात्मानो वध्यमाना: स्वकर्मभि:।
इन्द्रियाणामनीशत्वात् राजानो राज्यविभ्रमैं: ॥ ६९ ॥

शब्दार्थ—महात्मान: = सज्जन लोग, स्वकर्मभि: = अपने कर्मों से, वध्यमाना: = मारे जाते हुए, हि = निश्चयपूर्वक, दृश्यन्ते = दिखाई देते हैं, राजान: = राजा लोग, राज्यविभ्रमैं: = ऐश्वर्य के मद से, इन्द्रियाणाम् = इन्द्रियों के, अनीशत्वात् = स्वामी न होने से (नष्ट होते हुए देखे जाते हैं)।

हिन्दी—इन्द्रियों पर वश न होने के कारण महातमा अपने कर्मों से तथा राजा अपने राज्य के भोग-विलास से बँधे नष्ट होते हुए दिखाई देते हैं।

विशेष—इतिहास-पुराणों में अनेक ऐसे उदाहरण भरे हुए हैं, जहाँ इन्द्रिय वश में न होने के कारण एवं ऐश्वर्यमद से काम-क्रोधादि के वशीभूत होकर नष्ट हो गये रावण-दुर्योधनादि इसके उदाहरण हैं।

असन्त्यागात् पापकृतामपापांस्तुल्यो दण्ड: स्पृशते मिश्रभावात्।
शुष्केणार्द्रं दह्यते मिश्रभावात् तस्मात् पापै: सह सन्धि न कुर्य्यात् ॥ ७० ॥

शब्दार्थ—पापकृताम् = पापियों को, असंत्यागात् = न छोड़ने से, अपापान् = अच्छे पुरुषों को, तुल्य: = समान, दण्ड: = दण्ड, स्पृशते = स्पर्श करता है। मिश्रभावात् = मेल होने से, शुष्केण = सुखे काष्ठ से, आर्द्रम् = गीली लकडी भी, दह्यते = जल जाती है, मिश्रभावात् = सहयोग से, तस्मात् = इस कारण, पापै: सह = पापियों के साथ, सन्धिम् = मेल, न कुर्यात् = नहीं करना चाहिए, न करें।

हिन्दी—पापी दुष्टों को परित्याग न करके उनके साथ मिले रहने से निरपरा भी उनके समान ही दण्ड प्राप्त करता है। जैसे सूखी लकड़ी के साथ गीली लकड़ी जल जाती है। इसलिए पापियों के साथ मित्रता नहीं करनी चाहिए।

विशेष—यहाँ विदुरजी धृतराष्ट्र से कहते हैं कि हे राजन्! यद्यपि तुम्हारे हृद में पाण्डवों के विषय में किसी प्रकार का दुष्टभाव नहीं है, परन्तु दुर्योधनादि के सम्प से तथा उनका साथ देने के कारण पाण्डवों पर अत्याचार हो रहे हैं। परिणामस्वरू तुम भी दुर्योधन के साथ विनाश को प्राप्त हो जाओगे।

निजानुत्पततः शत्रून् पञ्च पञ्चप्रयोजनान्।
यो मोहान्न निगृह्णाति तमापद् ग्रसते नरम्॥ ७१॥

शब्दार्थ—यः=जो, निजान्=अपने, उत्पततः=गलत मार्ग पर जाते हुए, शत्रून्=शत्रुओं को, पञ्च पञ्चप्रयोजनान्=पाँचों के पाँच प्रयोजन वाले, मोहात्= मोह से, न निगृह्णाति=वश में नहीं करता है, तं नरम्=उस मनुष्य को, आपद्= विपत्ति, ग्रसते=ग्रहण करती है।

हिन्दी—जो मनुष्य गलत मार्ग पर चलने वाली इन्द्रियों के पाँचों विषयों को वश में नहीं करता है, उसे विपत्ति ग्रस लेती है।

विशेष—इसका अभिप्राय यह है कि धृतराष्ट्र को विदुर समझाने का प्रयास करते हैं तथा कहते हैं कि तुम कुमार्गगामी मन को नहीं रोकने के कारण दुःखी हो। इसलिए पहले इसी को वशीभूत करो।

अनसूयाऽऽर्जवं शौचं सन्तोषः प्रियवादिता।
दमः सत्यमनायासो न भवन्ति दुरात्मनाम्॥ ७२॥

शब्दार्थ—अनसूया=असूया न करना, आर्जवम्=सरलता, शौचम्=पवित्रता, सन्तोषः=सन्तोष, प्रियवादिता=प्रिय बोलना, दमः=इन्द्रिय को जीतना, सत्यम्= सत्य, अनायासः=चञ्चलता का अभाव, दुरात्मनाम्=दुर्जनों को, न भवन्ति=नहीं होते हैं।

हिन्दी—दुर्जनों में असूया का अभाव, सरलता, पवित्रता, सन्तोष, प्रिय बोलना इन्द्रिय-दमन करना, सत्य और चञ्चलता का अभाव नहीं होते हैं।

विशेष—अर्थात् इनके विपरीत गुण दुर्जनों में पाये जाते हैं। ये गुण सज्जनों में देखे जा सकते हैं।

आत्मज्ञानमनायासस्तितिक्षा धर्मनित्यता।
वाक् चैव गुप्ता दानं च नैतान्यन्त्येषु भारत॥ ७३॥

शब्दार्थ—हे भरत-कुल में उत्पन्न होने वाले धृतराष्ट्र! आत्मज्ञानम्=आत्मा का ज्ञान, अनायासः=अचाञ्चल्य, तितिक्षा=सहनशीलता, धर्मनित्यता=धर्म में बने रहना, वाक्=वाणी, च=और, एव=ही, गुप्ता=रक्षित, दानम्=दान, एतानि =ये, अन्त्येषु=नीचों में, न=नहीं होते हैं।

हिन्दी—हे धृतराष्ट्र ! आत्मज्ञान, खिन्नता का अभाव, सहनशीलता, धर्मनिष्ठ, वचन की रक्षा तथा दान—ये गुण दुर्जनों में नहीं रहते हैं।

विशेष—इन दोनों श्लोकों का भावार्थ यह है कि दुर्योधन में सज्जनों के लक्षण नहीं दिखाई देते हैं, अतः ये नीच पुरुष में आते हैं। इनके अनुसार व्यवहार करना विनाश का कारण है।

आक्रोशपरिवादाभ्यां विहिंसन्त्यबुधा बुधान्।
वक्ता पापमुपादत्ते क्षममाणो विमुच्यते ॥ ७४ ॥

शब्दार्थ—अबुधाः=मूर्ख लोग, आक्रोशपरिवादाभ्याम्=कठोर भाषण एवं निन्दा के द्वारा, बुधान्=विद्वानों को, विहिंसन्ति=कष्ट पहुँचाते हैं, वक्ता=बोलने वाला, पापम्=पाप को, उपादत्ते=प्राप्त करता है, क्षममाणः=क्षमा करता हुआ, विमुच्यते=छूट जाता है।

हिन्दी—मूर्ख लोग विद्वान् को गाली एवं निन्दा के द्वारा कष्ट पहुँचाते हैं। गाली देने वाला पापयुक्त हो जाता है और क्षमा करने वाला पाप रहित हो जाता है।

विशेष—दुर्योधन में दोनों दुर्गुण वर्तमान हैं, लेकिन पाण्डव क्षमाशील हैं, अतः वे विजय प्राप्त करेंगे।

हिंसाबलमसाधूनां राज्ञां दण्डविधिर्बलम्।
शुश्रूषा तु बलं स्त्रीणां क्षमा गुणवतां बलम् ॥ ७५ ॥

शब्दार्थ—असाधूनाम्=दुर्जनों का, हिंसाबलम्=हिंसा रूपी बल है, राज्ञाम्=राजाओं का, दण्डविधिः बलम्=दण्ड-विधान का बल होता है, शुश्रूषा=सेवा, तु=तो, स्त्रीणाम्=स्त्रियों का, बलम्=बल है, गुणवताम्=गुणी जनों का, क्षमा=क्षमा करना, बलम्=बल होता है।

हिन्दी—दुर्जनों का बल हिंसा है, राजाओं का दण्ड-विधान बल होता है, स्त्रियों का बल सेवा करना है और गुणवानों का बल क्षमा है।

वाक्संयमो हि नृपते ! सुदुष्करतमो मतः।
अर्थवच्च विचित्रञ्च न शक्यं बहु भाषितुम् ॥ ७६ ॥

शब्दार्थ—नृपते=हे राजन् ! वाक्संयमः=वाणी का संयम करना, हि=निश्चय ही, सुदुष्करतमः=अत्यन्त कठिन, मतः=माना गया है, अर्थवत्=अर्थ से युक्त, च=और, विचित्रम्=चमत्कारपूर्ण, बहु=बहुत, भाषितुम्=बोलने को, न शक्यम्=समर्थ नहीं है।

हिन्दी—हे राजन् ! वाणी का संयम अति कठिन है, परन्तु सारगर्भित एवं चमत्कारपूर्ण वचन भी अधिक नहीं कहा जा सकता है।

अभ्यावहति कल्याणं विविधं वाक् सुभाषिता।
सैव दुर्भाषिता राजन्ननर्थायोपपद्यते ॥ ७७ ॥

शब्दार्थ--राजन्=हे राजन्, सुभाषिता वाक्=अच्छी वाणी, विविधम्=विविध प्रकार के, कल्याणम्=कल्याण को, अभ्यावहति=प्राप्त कराती है, सा+एव=वही, दुर्भाषिता=बुरी वाणी, अनर्थाय=अनर्थ के लिए, उपपद्यते=समर्थ होती है।

हिन्दी—राजन्! सुन्दर शब्दों में कही गयी बातें अनेक कल्याण करती हैं, किन्तु वही यदि बुरे शब्दों में कही जाय तो अनेक अनर्थ कर देती है।

रोहते सायकैर्विद्धं वनं परशुना हतम्।
वाचा दुरुक्तं बीभत्सं न संरोहति वाक्क्षतम्॥ ७८॥

शब्दार्थ—सायकैः=वाणों से, विद्धम्=छेदा गया, वनम्=वन, परशुना=फरसे से, हतम्=काटा हुआ, रोहते=पुनः पनप जाता है, वाचा=वाणी से, दुरुक्तम्=अनुचित रूप से कहा गया, बीभत्सम्=विद्वेषपूर्ण, वाक्क्षतम्=वाणी का घाव, न संरोहति=नहीं भरता है।

हिन्दी—बाणों से वेधा गया, फरसे से काटा गया वन पुनः पनप जाता है, लेकिन वाणी के द्वारा कहा गया दुर्वचन कभी भूल नहीं पाता है।

विशेष--दुर्योधन के प्रति द्रौपदी की वाणी ही महाभारत का कारण बना है। जिसके कारण ही अनेक प्रकार के अनर्थ हुए हैं। इसलिए कभी भी दुर्वचन नहीं बोलना चाहिए।

कर्णिनालीकनाराचान्निर्हरन्ति शरीरतः।
वाक्शल्यस्तु न निर्हर्तुं शक्यो हृदिशयो हि सः॥ ७९॥

शब्दार्थ—कर्णिनालीकनाराचान्=कान तक खींच कर नली के द्वारा फेंके गये लोहे के बाण को, शरीरतः=शरीर से, निर्हरन्ति=निकाल लेते हैं, तु=किन्तु, वाक्शल्यः=वाणी रूपी बाण, हृदिशयः=हृदय में बैठा हुआ, हि=निश्चय ही, निर्हर्तुम्=निकालने में, न शक्यः=नहीं समर्थ होता है।

हिन्दी—कान तक खींचकर नली में रखकर लोहे के बाण को शरीर से निकाला जा सकता है, लेकिन हृदय में बैठी हुई वाणी रूपी बाण से छेदे गये काँटे को नहीं निकाला जा सकता है।

विशेष—कर्णिनालीकनाराचान्—कर्ण की आकृति वाला बाण नली के द्वारा जाने वाला एवं 'नरान् आचामति स नाराचः' के व्युत्पत्ति के अनुसार बाण विशेष ही होते हैं, जिनके द्वारा मनुष्य के प्राण सन्देह में पड़ जाते हैं। परन्तु धानुष्क के द्वारा कान पर्यन्त खींचकर फेंके गये बाण को हृदय से निकाला जा सकता है, लेकिन चुभी हुई वाणी को निकाला नहीं जा सकता है।

वाक्सायका वदनान्निष्पतन्ति यैराहतः शोचति रात्र्यहानि।
परस्य नाममर्मसु ते पतन्ति तान् पण्डितो नावसृजेत् परेभ्यः॥ ८०॥

शब्दार्थ—वदनात्=मुख से, वाक्सायकाः=कटु वाणी रूपी बाण, निष्पतन्ति=निकलते हैं, यैः=जिनके द्वारा, आहतः=घायल हुआ, रात्र्यहानि=दिन-रात,

शोचति = शोक करता है, परस्य = दूसरे के, नाममंसु = अत्यन्त मर्मस्थानों में ही, ते = वे, पतन्ति = गिरते हैं, तान् = उनको, पण्डितः = विद्वान्, परेभ्यः = दूसरों के लिए, न अवसृजेत् = नहीं छोडे ।

हिन्दी--वाक् रूपी बाण मुख से निकलकर दूसरे के कोमल हृदय पर प्रहार करते हैं, जिससे आहत मनुष्य दिन-रात शोक करता है। इसलिए बुद्धिमान् दूसरों पर कटु वचनों का प्रयोग न करे ।

विशेष--यहाँ पर विदुर ने दुर्योधनादि के द्वारा द्रौपदी के प्रति सभा में कहे गये दुर्वचनों एवं क्रिया-कलापों को स्मरण करा कर यह कहना चाहते हैं कि युधिष्ठिरादि उसे कभी भी नहीं भूल पायेंगे ।

यस्मै देवाः प्रयच्छन्ति पुरुषाय पराभवम् ।
बुद्धि तस्यापकर्षन्ति सोऽवाचीनानि पश्यति ॥ ८१ ॥

शब्दार्थ — यस्मै = जिस, पुरुषाय = पुरुष के लिए, देवाः = देवगण, पराभवम् = पराजय को, प्रयच्छन्ति = देते हैं, तस्य = उसकी, बुद्धिम् = बुद्धि को, अपकर्षन्ति = नष्ट कर देते हैं, सः = वह, अवाचीनानि = नीच कर्मों को, पश्यति = देखता है ।

हिन्दी--जिस मनुष्य को देवता पराजय देते हैं उसकी बुद्धि को पहले ही नष्ट कर देते हैं। वह सदा बुद्धि नहीं रहने के कारण नीच कर्मों को ही देखता है ।

विशेष--'बुद्धिर्निश्चयात्मिका ज्ञेया' अर्थात् निश्चय करने वाली बुद्धि कहलाती है। जिस व्यक्ति को अपने कर्त्तव्य का ही ज्ञान न हो, उसे निश्चय करने की क्षमता न हो, तो उसका विकास संभव नहीं है। साथ ही गलत कार्यों को करने के कारण शीघ्र ही वह नष्ट भी हो जाता है ।

बुद्धौ कलुषभूतायां विनाशे प्रत्युपस्थिते ।
अनयो नयसङ्काशो हृदयान्नावसर्पति ॥ ८२ ॥

शब्दार्थ — बुद्धौ = बुद्धि में, कलुषभूतायाम् = मलिन होने पर, विनाशे = नाश के, प्रत्युपस्थिते = उपस्थित होने पर, अनयः = अनीति, नयसङ्काशः = नीति के समान, हृदयात् = हृदय से, न अवसर्पति = दूर नहीं होती है ।

हिन्दी — विनाशकाल उपस्थित होने पर बुद्धि नष्ट हो जाती है, अतः अनीति ही नीति के समान होने के कारण हृदय से नहीं निकलती है ।

विशेष — जांके विधि दारुण दुख दीन्हा ।
ताकर बुद्धि पहले हर लीन्हा ॥ (रामचरितमानस)

'बुद्धिनाशात्प्रणश्यति' (गीता) अर्थात् बुद्धि के नाश के बाद विनाश हो जाता है। वह अज्ञान के कारण रज्जू में सर्प के भ्रम के समान अनीति को ही नीति मानने लगता है। साथ ही उसके सहायक भी वैसे ही हो जाते हैं ।

सेयं बुद्धिः परीता ते पुत्राणां भरतर्षभ ।
पाण्डवानां विरोधेन न चैनानवबुध्यसे ॥ ८३ ॥

शब्दार्थ—भरतर्षभ=हे धृतराष्ट्र ! सा=वह, इयम्=यह, बुद्धिः=बुद्धि, ते=तुम्हारे, पुत्राणाम्=पुत्रों की, परीता=नष्ट हो गयी है। पाण्डवानाम्=पाण्डवों के, विरोधेन=विरोध के कारण, च=और, एनान्=इन पुत्रों को, न=नहीं, अवबुध्यसे=जानते हो।

हिन्दी—हे धृतराष्ट्र ! तुम्हारे पुत्रों की वह बुद्धि पाण्डवों के साथ विरोध के कारण नष्ट हो गयी है। इन मलिन बुद्धि वाले अपने पुत्रों को तुम नहीं जानते हो।

विशेष—मोह के कारण तुम सत्यासत्य का ज्ञान नहीं करते हो, जिससे पाण्डवों के प्रति अन्याय हो रहा है। इस पर तुम्हारा ध्यान नहीं जाता है। इस ओर धृतराष्ट्र का ध्यान विदुर आकृष्ट करना चाहते हैं।

राजा लक्षणसम्पन्नस्त्रैलोक्यस्यापि यो भवेत्।
शिष्यस्ते शासिता सोऽस्तु धृतराष्ट्र युधिष्ठिरः॥ ८४॥

शब्दार्थ—धृतराष्ट्र=हे धृतराष्ट्र ! राजा=राजा, लक्षणसम्पन्नः=राजा के लक्षणों से युक्त, त्रैलोक्यस्य=तीनों लोकों का, अपि=भी, यः=जो, भवेत्=हो सकता है, ते शिष्यः=तुम्हारा आज्ञाकारी शिष्य, शासिता=शासन करने वाला है, सः=वह, युधिष्ठिरः=युधिष्ठिर को, अस्तु=होना चाहिए।

हिन्दी—हे धृतराष्ट्र ! राजा के लक्षणों से युक्त होने के कारण जो त्रिलोक का भी राजा हो सकता है, वह आपका आज्ञाकारी युधिष्ठिर पृथ्वी का शासक हो।

अतीव सर्वान् पुत्रांस्ते भागधेयपुरस्कृतः।
तेजसा प्रज्ञया चैव युक्तो धर्मार्थतत्त्ववित्॥ ८५॥

शब्दार्थ—अतीव=अत्यन्त, सर्वान्=सब, पुत्रान्=पुत्रों को, ते=तुम्हारे, भागधेयपुरस्कृतः=राज्यांश से सम्मानित, तेजसा=तेज से, प्रज्ञया=बुद्धि से, च=और, एव=ही, धर्मार्थतत्त्ववित्=धर्म और अर्थ के तत्त्व को जानने वाला, युक्तः=युक्त है।

हिन्दी—यह राज्यांश से पुरस्कृत धर्म और अर्थ के तत्त्व को जानने वाला युधिष्ठिर तुम्हारे सभी पुत्रों से अधिक तेज और बुद्धि से युक्त है।

विशेष—महाभारत के प्रसिद्ध टीकाकार नीलकण्ठ ने युधिष्ठिर को राज्य का अधिकारी माना है तथा अन्धे होने के कारण धृतराष्ट्र एवं उनके पुत्रों को राज्य के अधिकारी नहीं स्वीकार किया है।

अनुक्रोशादानृशंस्याद् योऽसौ धर्मभृतां वरः।
गौरवात् तव राजेन्द्र बहून् क्लेशांस्तितिक्षते॥ ८६॥

इति महाभारते उद्योगपर्वणि प्रजागरपर्वणि विदुरनीतिवाक्ये चतुस्त्रिंशोऽध्यायः।

॥ इति विदुरनीतौ द्वितीयोऽध्यायः समाप्तः॥

शब्दार्थ—राजेन्द्र =हे धृतराष्ट्र ! अनुक्रोशात् =दयालुता के कारण, आनृशंस्यात् =अक्रूरता से, यः =जो, असौ =यह (युधिष्ठिर), धर्मभृताम् =धर्मात्माओं में, वरः =श्रेष्ठ है, गौरवात् =गौरव के कारण, तव =तुम्हारे, बहून् =बहुत, क्लेशान् =दुःखों को, तितिक्षते =सहता है ।

हिन्दी—हे राजेन्द्र धृतराष्ट्र ! धार्मिकों में श्रेष्ठ कृपायुक्त और क्रूरताहीन तथा आपके प्रति आदर बुद्धि के कारण युधिष्ठिर अनेकों कष्टों को भोग रहा है ।

विशेष—धृतराष्ट्र के प्रति युधिष्ठिर का आदर भाव होने के कारण उसने अनेक कष्टों को सहा । यद्यपि दुर्योधन के व्यवहार तथा उसके वचनों में विश्वास नहीं था तथापि धृतराष्ट्र के प्रति आदर एवं विश्वास के कारण युधिष्ठिर ने समय से पूर्व कोई भी माँग नहीं रखी तथा अनेक कष्टों को वनवास में सहा ।

इस प्रकार महाभारत के उद्योगपर्व में प्रजागरपर्व के अन्तर्गत विदुरनीति-वाक्य में चौंतीसवाँ अध्याय समाप्त ।

इस प्रकार विदुरनीति में द्वितीय अध्याय की हिन्दी समाप्त ।

तृतीयोऽध्यायः

धृतराष्ट्र उवाच—

ब्रूहि भूयो महाबुद्धे धर्मार्थसहितं वचः।
श्रृण्वतो नास्ति मे तृप्तिर्विचित्राणीह भाषसे ॥ १ ॥

शब्दार्थ—महाबुद्धे=हे विद्वान् विदुरजी ! धर्मार्थसहितं=धर्म-अर्थ से युक्त वचः=वचन को, भूयः=पुनः, ब्रूहि=कहो, श्रृण्वतः=सुनते हुए, मे=मुझे, तृप्ति=सन्तोष, न+अस्ति=नहीं है, इह=यहाँ, विचित्राणि=आश्चर्यजनक, भाषसे=बोलते हो।

हिन्दी—धृतराष्ट्र ने कहा—हे विद्वान् विदुरजी ! धर्मार्थ युक्त वचन को पुनः सुनाओ, मुझे सुनते हुए सन्तोष नहीं है। तुम आश्चर्ययुक्त भाषण करते हो।

विशेष—विदुर के धर्मार्थसहित वचन को सुनकर धृतराष्ट्र का मोहान्धकार उजागर होने लगा है। अतः अपने हृदयगत भावों को स्पष्ट करने के लिए एवं ज्ञान-पिपासा को शान्त करने के लिए पुनः विदुर से पूछा।

विदुर उवाच—

सर्वतीर्थेषु वा स्नानं सर्वभूतेषु चार्जवम्।
उभे त्वेते समे स्यातामार्जवं वा विशिष्यते ॥ २ ॥

शब्दार्थ—सर्वतीर्थेषु=सभी तीर्थों में, वा=अथवा, स्नानम्=स्नान, सर्वभूतेषु=सभी प्राणियों में, च=और, आर्जवम्=सरलता, उभे=दोनों, तु=किन्तु, एते=ये, समे=तुल्य, स्याताम्=होवें, आर्जवम्=सरलता, वा=अथवा, विशिष्यते=श्रेष्ठ है।

हिन्दी—विदुर ने कहा—समस्त तीर्थों में स्नान करना तथा समस्त प्राणिओं के साथ सरलता का व्यवहार करना ये दोनों समान हैं अथवा कहना चाहिए कि सरलता इनमें श्रेष्ठ है।

विशेष—सरलता होना सर्वश्रेष्ठ गुण है, साथ ही तीर्थों में स्नान करने से भी अपूर्व पुण्योदय होता है। इन दोनों में कौन बड़ा है, इसे विदुर ने यहाँ बतलाया है।

आर्जवं प्रतिपद्यस्व पुत्रेषु सततं विभो।
इह कीर्तिं परां प्राप्य प्रेत्य स्वर्गमवाप्स्यसि ॥ ३ ॥

शब्दार्थ—विभो=हे राजन् ! पुत्रेषु=पुत्रो में (पाण्डवों और कौरवों में), सततम्=निरन्तर, आर्जवम्=सरलता को, प्रतिपद्यस्व=प्राप्त करो, इह=यहाँ,

कीर्तिम् = यश को, पराम् = उत्तम को, प्राप्य = प्राप्त करके, प्रेत्य = मरकर, स्वर्गम् = स्वर्ग को, अवाप्स्यसि = प्राप्त करोगे ।

हिन्दी – हे महाराज ! आप अपने पुत्रों (कौरवों एवं पाण्डवों) में निरन्तर सरलता का व्यवहार कीजिए ! इससे इस संसार में यश और मरने के बाद स्वर्ग मिलेगा ।

विशेष—समता के व्यवहार से दोनों के बीच से द्वेष-व्यवहार हट जायेगा । जिससे संसार में आपकी कीर्ति फैलेगी तथा मरणोपरान्त परमपद या स्वर्ग के अधिकारी होंगे । इसलिए इस प्रकार के उभय-सुखकारी कार्य को कीजिए ।

यावत्कीर्तिर्मनुष्यस्य पुण्या लोके प्रगीयते ।
तावत् स पुरुषव्याघ्र स्वर्गलोके महीयते ।। ४ ।।

शब्दार्थ – पुरुषव्याघ्र = हे पुरुषसिंह ! यावत् = जब तक, मनुष्यस्य = मनुष्य का, पुण्या कीर्तिः = पवित्र यश, लोके = संसार में, प्रगीयते = गाया जाता है, तावत् = तब तक, सः = वह, स्वर्गलोके = स्वर्गलोक में, महीयते = पूजित होता है ।

हिन्दी—हे नरश्रेष्ठ ! इस संसार में जब तक मनुष्य के पुण्य यश का गान किया जाता है तब तक वह स्वर्गलोक में प्रतिष्ठित होता है ।

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
विरोचनस्य संवादं केशिन्यर्थे सुधन्वना ।। ५ ।।

शब्दार्थ—अत्र = इस विषय में, अपि = भी, पुरातनम् = पुराना, इमम् = इस, इतिहासम् = इतिहास को, उदाहरन्ति = उद्धृत करते हैं, केशिन्यर्थे = केशिनी नामक कन्या के लिए, सुधन्वना = सुधन्वा के साथ, विरोचनस्य = विरोचन का (प्रह्लाद के पुत्र का), संवादम् = संवाद, हुआ था ।

हिन्दी—इस विषय में प्राचीन इतिहास का उदाहरण देते हैं, जिसमें केशिनी के लिए सुधन्वा का संवाद वर्णित है ।

विशेष – 'दृष्टान्तः कुशलो भवेत्' अर्थात् वक्ता को दृष्टान्त-कुशल होना चाहिए, जिससे प्रासङ्गिक अर्थ स्पष्ट और सन्देह रहित होता है । सुधन्वा-विरोचन के दृष्टान्त से प्रकृत भी स्पष्ट हो जाता है । जैसे प्रह्लाद ने अपने पुत्र विरोचन का पक्ष न लेकर सत्य भाषण किया, अङ्गिरा के पुत्र सुधन्वा को श्रेष्ठ स्वीकार किया; उसी प्रकार राज्यादि के विषय में दुर्योधन का पक्ष न लेकर न्याय का पक्ष लेकर युधिष्ठिर पर कृपा करो । यह अभिप्राय विदुर के इस दृष्टान्त से व्यञ्जित होता है ।

स्वयंवरे स्थिता कन्या केशिनी नाम नामतः ।
रूपेणाप्रतिमा राजन् विशिष्टपतिकाम्यया ।। ६ ।।

शब्दार्थ—राजन् = हे राजन् ! केशिनी = केशिनी, नाम = नाम वाली, नामतः = नाम से, कन्या = कन्या, स्वयंवरे = स्वयंवर में, स्थिता = ठहरी हुई, रूपेण = रूप से, अप्रतिमा = अनुपम, विशिष्टपतिकाम्यया = उत्तम पति को प्राप्त करने की इच्छा से ।

हिन्दी—हे राजन् ! केशिनी नाम की अप्रतिम सुन्दरी कन्या उत्तम पति प्राप्त करने की इच्छा से स्वयंवर में आयी ।

विशेष—प्राचीन काल में कन्या स्वयंवर में पति का वरण करती थी । इ पत्नी रूप में प्राप्त करने की इच्छा से युवक उपस्थित होते थे । परन्तु कन्या अप इच्छा के अनुसार योग्य पति का वरण करती थी । लेकिन यह परम्परा धीरे-धी समाप्त होती चली गयी ।

विरोचनोऽथ दैतेयस्तदा तत्राजगाम ह ।
प्राप्तुमिच्छंस्ततस्तत्र दैत्येन्द्रं प्राह केशिनी ॥ ७ ॥

शब्दार्थ—अथ = इसके बाद, विरोचनः = विरोचन, दैतेयः = दिति का पु तदा = तब, तत्र = वहाँ, ह = निश्चय से, आजगाम = आया, ततः = इसके बाद, प्राप्तु = प्राप्त करने के लिए, इच्छन् = इच्छा करता हुआ, तत्र = वहाँ, केशिनी = केशिन नाम की कन्या ने, दैत्येन्द्रम् = दैत्यराज को, प्राह = कहा ।

हिन्दी—इसके बाद केशिनी को प्राप्त करने की इच्छा से दिति का पुत्र विरोच वहाँ (स्वयंवर में) पहुँचा । तब केशिनी ने दैत्येन्द्र से कहा ।

विशेष—विरोचन प्रह्लाद का पुत्र एवं बलि का पिता था । इसका वर्ण पुराणों में भी प्राप्त होता है । लेकिन यहाँ पर केवल पत्नी के रूप में केशिनी के प्राप्त करने की इच्छा वाले युवक के रूप में वर्णन किया गया है ।

केशिन्युवाच—

किं ब्राह्मणाः स्विच्छ्रेयांसो दितिजाः स्विद् विरोचन ।
अथ केन स्म पर्यङ्कं सुधन्वा नाधिरोहति ॥ ८ ॥

शब्दार्थ—केशिनि + उवाच = केशिनी बोली, विरोचन = हे विरोचन ! किम् = क्या, ब्राह्मणाः = ब्राह्मण, स्वित् = वा, श्रेयांसः = श्रेष्ठ, स्वित् = वा, दितिजाः = दिति के पुत्र, अथ = इसके बाद, केन = किस कारण से, स्म = निश्चय से, पर्यङ्कम् = पलंग पर, सुधन्वा = सुधन्वा, न + अधिरोहति = न चढे ।

हिन्दी—केशिनी ने कहा—विरोचन ! ब्राह्मण श्रेष्ठ होते हैं या दैत्य ? यदि ब्राह्मण श्रेष्ठ होते हैं तो क्यों न सुधन्वा मेरी शय्या पर चढे अर्थात् मेरा विवाह उसी के साथ क्यों न हो ?

विरोचन उवाच—

प्राजापत्यास्तु वै श्रेष्ठा वयं केशिनि सत्तमाः ।
अस्माकं खल्विमे लोकाः के देवाः के द्विजातयः ॥ ९ ॥

शब्दार्थ—केशिनि = हे केशिनि ! वयम् = हमलोग, प्राजापत्याः = प्रजापति ब्रह्मा की सन्तान, श्रेष्ठाः = श्रेष्ठ हैं, वै = निश्चय ही, सत्तमाः = उत्तम हैं, अस्माकम् = हमारे, खलु = निश्चय ही, इमे = ये, लोकाः = सब भूमि, के देवाः = देवता कौन हैं ? के द्विजातयः = ब्राह्मण कौन है ?

हिन्दी—विरोचन ने कहा—हम प्रजापति की सन्तान निश्चय ही सर्वश्रेष्ठ हैं। हमारे सामने देवता कौन हैं और ब्राह्मण कौन हैं? अर्थात् मेरे सामने इन दोनों का कोई महत्त्व नहीं है।

विशेष—प्रजापति कश्यप की दो पत्नियाँ थी; एक का नाम दिति और दूसरे का अदिति था। 'दितेरपत्यं पुमान् दैत्यः, अदितेरपत्यं पुमानादित्यः'। दिति के पुत्र दैत्य और अदिति के पुत्र आदित्य कहलाये। आयु और शक्ति के अनुसार दिति बड़ी थी। इसलिए दैत्य बड़े पुत्र होने के कारण पृथ्वी के स्वामी बने। उन्होंने अपने छोटे भाई देवों को कोई भाग नहीं दिया, फलस्वरूप देवासुर-संग्राम हुआ। बलाभिमान एवं दायांश नहीं देने के कारण दानव परास्त हुए और देव राज्याधिकारी हुए।

विदुर ने इसी अभिप्राय से धृतराष्ट्र से यह प्रसङ्ग कहा है तथा दुर्योधन के द्वारा के द्वारा दायांश देने एवं अभिमान छोड़ने का आग्रह किया है।

केशिन्युवाच—

इहैवावां प्रतीक्षाव उपस्थाने विरोचन।
सुधन्वा प्रातरागन्ता पश्येयं वां समागतौ ॥ १० ॥

शब्दार्थ—विरोचन=हे विरोचन! इह=यहाँ पर, एव=निश्चय ही, आवाम्=हमदोनों, उपस्थाने=स्थान में, प्रतीक्षाव=प्रतीक्षा करें, सुधन्वा=सुधन्वा, प्रातः=प्रातःकाल, आगन्ता=आयेगा, समागतौ=सम्मुख उपस्थित होने पर, वां=तुम दोनों को, पश्येयम्=देखूंगी।

हिन्दी—केशिनी ने कहा—विरोचन! हम दोनों इसी स्थान पर प्रतीक्षा करें। प्रातः सुधन्वा आयेगा, मैं तुम दोनों को सम्मुख उपस्थित होने पर देखूंगी।

विशेष—विशेष गुणों का निर्णय आमने-सामने होता है। सज्जन लोग किसी का भी गुण-दोष उसके सम्मुख ही प्रस्तुत करते हैं। दुर्जन लोग पीठ पीछे निन्दा एवं सामने प्रशंसा कर सुख-दुःख पहुँचाते हैं।

विरोचन उवाच—

तथा भद्रे करिष्यामि यथा त्वं भीरु भाषसे।
सुधन्वानं च मां चैव प्रातर्द्रष्टासि सङ्गतौ ॥ ११ ॥

शब्दार्थ—भद्रे=हे कल्याणि! तथा=वैसा ही, करिष्यामि=करूंगा, यथा=जैसा, त्वम्=तुम, भीरु=हे डरपोक! भाषसे=कहती हो, सुधन्वानम्=सुधन्वा को, माम्=मुझको, च=और, प्रातः=प्रातःकाल, एव=ही, सङ्गतौ=एक साथ, द्रष्टासि=देखोगी।

हिन्दी—विरोचन ने कहा—हे भद्रे! जैसा तुम कहती हो वैसा ही करता हूँ। हे भीरु! तुम मुझे और सुधन्वा को प्रातःकाल ही एक साथ देखोगी।

विदुर उवाच—

अतीतायां च शर्वर्यामुदिते सूर्यमण्डले।
अथाजगाम तं देशं सुधन्वा राजसत्तम ॥ १२ ॥

विरोचनो यत्र विभो केशिन्या सहितः स्थितः।
सुधन्वा च समागच्छत् प्राह्लादिं केशिनीं तथा ॥ १३ ॥

शब्दार्थ—शर्वर्याम् = रात्रि के, अतीतायाम् = बीत जाने के बाद, उदिते = होने पर, सूर्यमण्डले = सूर्यमण्डल के, अथ = अनन्तर, तं देशम् = उस देश सुधन्वा = सुधन्वा, राजसत्तम = हे श्रेष्ठ राजन् ! आजगाम = आया, विरोच विरोचन, यत्र = जहाँ, विभो = हे राजन् ! केशिन्या = केशिनी के, सहितः = स्थितः = स्थित था, सुधन्वा = सुधन्वा, च = और, तथा = और, प्राह्लादिम् = प्र के पुत्र विरोचन को, केशिनीम् = केशिनी को, समागच्छत् = ठहरा हुआ था।

हिन्दी—विदुर ने कहा—राजश्रेष्ठ धृतराष्ट्र ! रात्रि के बीत जाने और सू हो जाने के बाद सुधन्वा उस स्थान पर आया, जहाँ केशिनी और विरोचन (प्र का पुत्र) पहले से ठहरा था। सुधन्वा केशिनी और प्रह्लाद के पुत्र विरोच पास पहुँचा।

समागतं द्विजं दृष्ट्वा केशिनी भरतर्षभ।
प्रत्युत्थायासनं तस्मै पाद्यमर्घ्यं ददौ पुनः ॥ १४ ॥

शब्दार्थ—भरतर्षभ = हे भरतवंशश्रेष्ठ धृतराष्ट्र ! समागतम् = आये द्विजम् = ब्राह्मण को, दृष्ट्वा = देखकर, केशिनी, प्रत्युत्थाय = खड़े होकर, आसन आसन को, पाद्यम् = पैर धोने हेतु जल को, अर्घ्यम् = पूजा एवं हाथ धोने हेतु को, तस्मै = सुधन्वा के लिए, पुनः = फिर, ददौ = दिया।

हिन्दी—हे भरतकुलश्रेष्ठ धृतराष्ट्र ! सुधन्वा को आये हुए देखकर केशि उसे हाथ-पांव एवं पूजा हेतु जल को प्रदान किया।

विशेष—भारतीय संस्कृति में यह व्यवस्था है कि आये हुए अतिथि का स भावेन सत्कार करना चाहिए। क्योंकि घर में आये हुए अतिथि या मनुष्य देव समान पूजनीय होते हैं। 'अतिथिदेवो भव' की घोषणा वेद में भी की गयी है।

सुधन्वोवाच—

अन्वालभे हिरण्मयं प्राह्लादे ते वरासनम्।
एकत्वमुपसम्पन्नो न त्वासेऽहं त्वया सह ॥ १५ ॥

शब्दार्थ—प्राह्लादे = हे प्रह्लाद के पुत्र विरोचन ! ते = तुम्हारा, हिरण्मय सोने के आसन को, वरासनम् = श्रेष्ठ आसन को, अन्वालभे = स्पर्श करता हूँ, सह = तेरे साथ, अहम् = मैं, एकत्वम् = बराबरी को, उपसम्पन्नः = प्राप्त हुआ, = नहीं, आसे = बैठता-हूँ।

हिन्दी—हे विरोचन ! मैं तुम्हारे श्रेष्ठ सोने के आसन को केवल स्पर्श हूँ, क्योंकि एक साथ तुम्हारे साथ एक आसन पर नहीं बैठूंगा। समान लोग ही आसन पर बैठते हैं।

विशेष—एक आसन पर समान गुण, अवस्था और धर्मवाले लोग ही बैठ

भिन्न वर्ग वाले नहीं । अतः इन विशेष दृष्टिओं से मैं तुम्हारे बराबर न होकर तुमसे श्रेष्ठ हूँ । अतः एक आसन पर तुम्हारे साथ नहीं बैठूंगा

विरोचन उवाच—

तवार्हंते तु फलकं कूर्चं वाप्यथवा बृसी।
सुधन्वन्न त्वमर्होऽसि मया सह समासनम् ॥ १६ ॥

शब्दार्थ—सुधन्वन् !=हे सुधन्वन् ! तव=तुम्हारे, फलकम्=लकड़ी का पीढ़ा, तु=निश्चय ही, कूर्चम्=दर्भ से बना हुआ आसन, वा=अथवा, अपि=भी, बृसी=कुशा का आसन, अर्हते=योग्य है, त्वम्=तुम, मया सह=मेरे साथ, समासनम्=एक ही आसन पर बैठने को, न+अर्ह+असि=योग्य नहीं हो ।

हिन्दी—विरोचन ने कहा—हे सुधन्वन् ! तुम्हारे लिए लकड़ी, घास एवं कुशा के द्वारा बने हुए आसन पर बैठना उचित है । मेरे साथ समान आसन पर बैठने योग्य नहीं हो ।

सुधन्वोवाच—

पितापुत्रौ सहासीतां द्वौ विप्रौ क्षत्रियावपि ।
वृद्धौ वैश्यौ च शूद्रौ च न त्वन्यावितरेतरम् ॥ १७ ॥

शब्दार्थ—पितापुत्रौ=पिता और पुत्र, सह=साथ, आसीताम्=बैठे, द्वौ=दो, विप्रौ=ब्राह्मण, क्षत्रियौ=दो क्षत्रिय, अपि=भी, वृद्धौ=दो वृद्ध, वैश्यौ=दो वैश्य, च=और, शूद्रौ=दो शूद्र, च=और, तु=निश्चय ही, न+अन्यौ=दो अन्य नहीं, इतरेतरम्=एक-दूसरे के साथ न बैठे ।

हिन्दी—सुधन्वा ने कहा—पिता-पुत्र, दो ब्राह्मण, दो क्षत्रिय, दो वृद्ध और दो शूद्र एक साथ बैठ सकते हैं, परन्तु दूसरे कोई एक साथ एक आसन पर नहीं बैठ सकते हैं ।

विशेष—भारतीय संस्कृति एवं धर्मशास्त्र में आचार-व्यवहार का बड़ी ही बारीकियों के साथ निर्णय किया गया है तथा सम्पूर्ण ज्ञान की गरिमा इसी पर आधारित है । अतः उच्चासन, सहासन एवं निम्नासन का बहुत अधिक विचार प्रस्तुत किया गया है ।

पिता हि ते समासीनमुपासीतैव मामधः ।
बालः सुखैधितो गेहे न त्वं किञ्चन बुद्धचसे ॥ १८ ॥

शब्दार्थ—ते=तुम्हारा, पिता=पिता, हि=निश्चय ही, समासीनम्=बैठे हुए, माम्=मुझको, अधः=नीचे बैठकर, उपासीत=उपासना करता है, त्वम्=तुम, बालः=बालक, एव=ही, गेहे=घर में, सुखैधितः=सुखपूर्वक बढ़े हुए, न किञ्चन =कुछ भी नहीं, बुध्यसे=जानते हो ।

हिन्दी—तुम्हारे पिता नीचे बैठकर ही मेरी उपासना करते हैं। तुम अभी बालक हो, घर में सुखपूर्वक बढ़े (पले) हो, अतः कुछ नहीं जानते हो ।

विशेष—व्यवहार का ज्ञान लोक और शास्त्र के ज्ञान से होता है, केवल घर चहारदीवारी के अन्दर रहने वाले को बाहरी ज्ञान नहीं होता है। वस्तुतः व्यव का ज्ञान लोक-व्यवहार से ही सम्भव है। साथ ही यहाँ पर बाल का अर्थ स्तन बालक नहीं लिया जा सकता, क्योंकि विवाह के लिए वर रूप में आये मनुष्य बालक नहीं कह सकते। अतः 'अज्ञो भवति वै बालः' (मनुस्मृति २।१५३) वचन के आधार पर अज्ञ या व्यवहारशून्य को बालक कह सकते हैं।

विरोचन उवाच—

हिरण्यं च गवाश्वं च यद्वित्तमसुरेषु नः।
सुधन्वन् विपणे तेन प्रश्नं पृच्छाव ये विदुः॥ १९॥

शब्दार्थ—सुधन्वन् = हे सुधन्वन् ! हिरण्यम् = सुवर्ण, च = और, गवाश्वम् गाय और अश्व, च = और, यत् = जो, वित्तम् = धन, असुरेषु = असुरों में, नः हमारा, विपणे = पण में (शर्त में), तेन = उससे, प्रश्नम् = प्रश्न को, पृच्छाव पूछे, ये = जो, विदुः = जानते हैं।

हिन्दी—विरोचन ने कहा—हे सुधन्वन् ! असुरों में हमारा जो सुवर्ण, गो, आदि पशु तथा अन्य धन है—उसकी शर्त लगाता हूँ कि जो विद्वान् हो, उनसे दोनों प्रश्न पूछें कि हम दोनों में कौन श्रेष्ठ है ?

विशेष—श्रेष्ठता का निर्णय तटस्थ एवं विद्वान् ही कर सकता है। क्योंकि वि दोषज्ञ एवं गुणज्ञ भी होते हैं। इसलिए उसी को प्रमाण माना गया है।

सुधन्वोवाच—

हिरण्यं च गवाश्वं च तवैवास्तु विरोचन।
प्राणयोस्तु पणं कृत्वा प्रश्नं पृच्छाव ये विदुः॥ २०॥

शब्दार्थ—विरोचन = हे विरोचन ! हिरण्यम् = सुवर्ण, च = और, गवाश्व गाय और अश्व, च = और, तद् + एव = तुम्हारा ही, अस्तु = रहे, प्राणयोः = का, तु = तो, पणम् = शर्त, कृत्वा = करके, प्रश्नम् = प्रश्न को, पृच्छावः = पूछें, जो, विदुः = जानते हैं।

हिन्दी—हे विरोचन ! सुवर्ण, गौ, अश्व आदि पशु तुम्हारे ही रहें। हम प्राणों की बाजी लगाकर जो विद्वान् हो उनसे पूछें।

विशेष—सांसारिक सम्पत्ति तथा धनादि शरीर एवं प्राण रक्षा के लिए हैं। अतः धन से भी श्रेष्ठ मनुष्य का प्राण ही होता है, जिसके लिए ही समस्त व्या एवं क्रिया-कलाप किये जाते हैं। इसलिए सुधन्वा ने प्राण की ही बाजी लगा दूसरी बात यह भी है कि अङ्गिरा के पुत्र सुधन्वा तपस्वी ब्राह्मण होने के नाते सांसारिक धनादि उसके पास बाजी लगाने के लिए था भी नहीं। अतः प्राण की बाजी लगा दी।

विरोचन उवाच—

आवां कुत्र गमिष्यावः प्राणयोर्विपणे कृते।
न तु देवेष्वहं स्थाता न मनुष्येषु कर्हिचित् ॥ २१ ॥

शब्दार्थ—आवाम् = हम दोनों, कुत्र = कहाँ, गमिष्यावः = जायेंगे, प्राणयोः = प्राणों की, विपणे = शर्त लगाकर, कृते = करके, अहम् = मैं, देवेषु = देवों में, न = स्थाता = नहीं ठहरने वाला हूँ। कर्हिचित् = किसी तरह, मनुष्येषु = मनुष्यों में, न तु = नहीं, मानते हैं।

हिन्दी—विरोचन ने कहा—प्राणों की बाजी लगाकर हम दोनों कहाँ चलेंगे? न तो मैं देवताओं के पास जा सकता हूँ और न मनुष्यों के पास। क्योंकि ये दोनों मेरे समान नहीं हैं।

विशेष—विरोचन प्रह्लाद के पुत्र तथा दानव वंश में उत्पन्न होने के कारण देवता एवं मनुष्यों को अपनी अपेक्षा हीन समझता था। अतः वहाँ जाना उसकी दृष्टि में अच्छा नहीं है।

सुधन्वोवाच—

पितरं ते गमिष्यावः प्राणयोर्विपणे कृते।
पुत्रस्यापि स हेतोर्हि प्रह्लादो नानृतं वदेत् ॥ २२ ॥

शब्दार्थ—ते = तुम्हारे, पितरम् = पिता के पास, गमिष्यावः = जायेंगे, प्राणयोः = प्राणों की, विपणे = शर्त, कृते = करने के बाद, सः + अपि = वह भी, पुत्रस्य = पुत्र के, हेतोः = कारण से, हि = निश्चय ही, प्रह्लादः = प्रह्लाद, अनृतम् = झूठ, न वदेत् = नहीं बोलेगा।

हिन्दी—सुधन्वा ने कहा—प्राणों की बाजी लगाकर हम दोनों तुम्हारे पिता के पास जायेंगे। प्रह्लाद पुत्र के लिए भी झूठ नहीं बोलेगा।

विशेष—वेद में 'सत्यं वद' की प्रतिष्ठा की गयी है। प्रायः सभी महाजनों ने प्राणों की बाजी लगाकर इसका पालन किया है। इसी दृढ़ता से सुधन्वा ने प्रह्लाद के पास जाने का निर्णय लिया। क्योंकि प्रह्लाद केवल असुरवंशीय ही नहीं, अपितु सत्यनिष्ठ थे। इसलिए गीता में भगवान् ने कहा है—'प्रह्लादः सर्वदैत्यानाम्' अर्थात् असुरों में प्रह्लाद मैं ही हूँ। इसके अतिरिक्त धर्मशास्त्र में उसकी सौ अश्वमेध यज्ञ के साथ तुलना की है। अपितु उससे भी अधिक महत्त्व सत्य का दिया है। इससे प्रह्लाद के प्रति विश्वास सत्यनिष्ठा एवं न्यायप्रियता की झलक मिलती है।

विदुर उवाच—

एवं कृतपणौ क्रुद्धौ तत्राभिजग्मतुस्तदा।
विरोचनसुधन्वानौ प्रह्लादो यत्र तिष्ठति ॥ २३ ॥

शब्दार्थ—एवम् = इस प्रकार, कृतपणौ = बाजी लगा कर, क्रुद्धौ = क्रोध से भरे

हुए, विरोचनसुधन्वानौ = विरोचन और सुधन्वा, तत्र=वहाँ, अभिजग्मतुः = आ ग
तदा = तब, यत्र = जहाँ पर, प्रह्लादः = हिरण्यकशिपु का पुत्र (विरोचन का पिता
तिष्ठति = रहता था ।

हिन्दी — विदुर बोले--प्राणों की बाजी लगाने के बाद क्रोधित होकर विरो
और सुधन्वा वहाँ गये जहाँ प्रह्लाद रहते थे ।

प्रह्लाद उवाच—

इमौ तौ सम्प्रदृश्येते याभ्यां न चरितं सह ।
आशीविषाविव क्रुद्धावेकमार्गाविहागतौ ॥ २४ ॥

शब्दार्थ--इमौ = ये, तौ = वे दोनों, सम्प्रदृश्येते = दिखाई पड़ते हैं, याभ्याम् =
जिन दोनों का, चरितम् = विचरण किया, सह न = साथ नहीं, आशीविषौ = दो स
के, इव = यथा, क्रुद्धौ = क्रुद्ध हुए, एकमार्गौ = एक मार्ग पर चलने वाले, इह = यहाँ
आगतौ = आये हैं ।

हिन्दी—प्रह्लाद ने मन में सोचा — जो कभी एक साथ नहीं चले थे, वे ही दो
(विरोचन और सुधन्वा) सर्प की भाँति कुद्ध होकर एक ही मार्ग से आते दिखा
पड़ रहे हैं ।

किं वै सहैवं चरथो न पुरा चरथः सह ।
विरोचनैतत् पृच्छामि किं ते सख्यं सुधन्वना ॥ २५ ॥

शब्दार्थ — किम् = कैसे, वै = निश्चय से, सह = साथ, एवम् = इस प्रकार, चर
= घूम रहे हो, पुरा = पहले, न चरथः = भ्रमण नहीं करते थे । विरोचन =
विरोचन ! एतत् = यह, पृच्छामि = पूछता हूँ, किम् = क्या, सुधन्वना = सुधन्वा
साथ, ते = तुम्हारी, सख्यम् = मित्रता है ।

हिन्दी—विरोचन से प्रह्लाद ने पूछा कि क्या तुम्हारी सुधन्वा के साथ मित्रता हो
गयी है जो तुम दोनों साथ-साथ घूम रहे हो ? इससे पहले तो कभी भी साथ-सा
भ्रमण नहीं किये ।

न मे सुधन्वना सख्यं प्राणयोर्विपणावहे ।
प्रह्लाद तत्त्वं पृच्छामि मा प्रश्नमनृतं वदेः ॥ २६ ॥

शब्दार्थ—प्रह्लाद = हे प्रह्लाद ! मे = मेरी, सुधन्वना = सुधन्वा के साथ,
सख्यम् = मित्रता नहीं है, प्राणयोः = प्राणों की, विपणावहे = हम दोनों ने बाजी लगा
है, तत्त्वम् = वास्तविक रूप, पृच्छामि = पूछता हूँ । मा = नहीं, अनृतम् = असत्य
प्रश्नम् = प्रश्न को, वदेः = बोलना ।

हिन्दी—विरोचन ने कहा — पिताजी ! मेरी सुधन्वा के साथ मैत्री नहीं हुई है
हम दोनों प्राणों की बाजी लगाकर आ रहे हैं । मैं आपसे यथार्थ पूछता हूँ, मेरे प्रश्न
का गलत उत्तर मत देना ।

प्रह्लाद उवाच—

उदकं मधुपर्कं वाऽप्यानयन्तु सुधन्वने।
ब्रह्मन्नभ्यर्चनीयोऽसि श्वेता गौः पीवरीकृता॥ २७॥

शब्दार्थ—उदकम् = जल, मधुपर्कम् = मधुपर्क, सुधन्वने = सुधन्वा के लिए, वा अपि = और भी, आनयन्तु = लाओ, ब्रह्मन् = हे ब्राह्मण ! अभ्यर्चनीयः = सत्कार के योग्य, असि = हो, पीवरीकृता = मोटी या पुष्ट की गयी, श्वेता = श्वेत रंग वाली, गौः = गाय।

हिन्दी—प्रह्लाद ने कहा—सुधन्वा के लिए जल और मधुपर्क लाओ। हे ब्राह्मण ! तुम पूजा के योग्य हो, आपके लिए श्वेत रंग वाली मोटी गाय उपस्थित है।

विशेष—घर में आये हुए अतिथि की सेवा सर्वोपरि मानी गयी है। उनके स्वागत के लिए अर्घ, पाद्य, आचमनीय एवं मधुपर्क दिया जाता है। इसके साथ ही जातिभेद से भेटस्वरूप देय वस्तु में भिन्नता होती है। यथा 'गोर्ब्राह्मणस्य वरः, ग्रामो राजन्यः, अश्वो वैश्यस्य'। अर्थात् ब्राह्मण के लिए गाय, क्षत्रिय के लिए ग्राम और वैश्य के लिए अश्व देने का विधान है। सुधन्वा को ब्राह्मण होने के नाते प्रह्लाद ने गौ देने का आदेश दिया है।

सुधन्वोवाच—

उदकं मधुपर्कं च पथिष्वेवार्पितं मम।
प्रह्लाद त्वं तु मे तथ्यं प्रश्नं प्रब्रूहि पृच्छतः।
किं ब्राह्मणाः स्विच्छ्रेयांस उताहो स्विद्विरोचनः॥ २८॥

शब्दार्थ—प्रह्लाद = हे प्रह्लाद ! उदकम् = जल, मधुपर्कम् = मधुपर्क, च = और, पथिषु = मार्ग में, एव = ही, अर्पितम् = प्राप्त हो गया। मम = मुझे, त्वम् = तुम, तु = तो, मे = मेरे, तथ्यम् = ठीक, प्रश्नम् = प्रश्न को, पृच्छतः = पूछते हुए, प्रब्रूहि = कहो, किम् = क्या, ब्राह्मणः = ब्राह्मण, स्वित् = वा, श्रेयांसः = श्रेष्ठ है, उताहो = अथवा, स्वित् = वा, विरोचनः = विरोचन।

हिन्दी—सुधन्वा ने कहा—हे प्रह्लाद ! जल तथा मधुपर्क मार्ग में ही मिल गया। आप हमारे प्रश्न का ही तथ्यपूर्ण उत्तर दे दें कि ब्राह्मण (अर्थात् मैं सुधन्वा) श्रेष्ठ है अथवा विरोचन है।

विशेष—जब सामने कोई समस्या आ खड़ी हो तो उस समय उसका समाधान ही आवश्यक लगता है, अन्य कार्य नहीं। इसलिए प्रह्लाद से सुधन्वा ने प्रश्न का उत्तर ही प्राप्त करना उचित समझा, जलादि नहीं।

प्रह्लाद उवाच—

पुत्र एको मम ब्रह्मंस्त्वं च साक्षादिहास्थितः।
तयोर्विवदतोः प्रश्नं कथमस्मद्विधो वदेत्॥ २९॥

शब्दार्थ—ब्रह्मन् = हे ब्राह्मण ! मम = मेरा, एकः = एक, पुत्रः = पुत्र, त्वम् =

तुम, च=और, साक्षात्=सामने, इह=यहाँ, आस्थितः=खड़े हो, तयोः=उन दोनों के, विवदतोः=विवाद करते हुए, प्रश्नम्=प्रश्न को, कथम्=कैसे, अस्मद्विधः=मेरे सदृश जो तुम्हारा विरोधी अर्थात् विरोचन का पिता है। वदेत्=निर्णय करे, बोले।

हिन्दी--हे ब्रह्मन् ! मेरा एक ही पुत्र है और दूसरे तुम साक्षात् यहाँ उपस्थित हो। इन दोनों के विवाद में मेरे समान लोग किस प्रकार बोले (जो एक का पिता तथा दूसरा सामने उपस्थित हो)।

विशेष--न्यायाधीश अपना निर्णय तभी दे सकता है जब वह निष्पक्ष हो। एक पक्ष से सम्बन्ध रखने वाला न्यायाधीश भी कभी यथार्थ निर्णय नहीं दे सकता। इसी बात को ध्यान में रखते हुए प्रह्लाद ने भी समस्या के समाधान में अपना दृष्टिकोण उपस्थित किया।

सुधन्वोवाच—

गां प्रदद्यास्त्वौरसाय यद्वाऽन्यत् स्यात् प्रियं धनम्।
द्वयोर्विवदतोस्तथ्यं वाच्यं च मतिमंस्त्वया ॥ ३० ॥

शब्दार्थ—मतिमन्=हे बुद्धिमन् ! गाम्=पृथिवी को, औरसाय=औरस पुत्र के लिए, प्रदद्याः=दो, वा=अथवा, यत्=जो, अन्यत्=अन्य, प्रियम्=प्रिय, धनम्=धन, स्यात्=हो, उसे पुत्र को दो, च=परन्तु, द्वयोः=दोनों के, विवदतोः=विवाद करने वाले के, त्वया=तुमको, पथ्यम्=यथार्थ, वाच्यम्=कहना चाहिए।

हिन्दी—सुधन्वा ने कहा—हे प्रह्लाद ! अपने औरस पुत्र को पृथ्वी दो अथवा अन्य प्रियधन जो हो उसे भी दो। किन्तु हे बुद्धिमन् ! दो के विवाद में तुमको यथार्थ प्रश्न का उत्तर देना चाहिए।

विशेष—विशेषज्ञ को बुद्धि के अनुसार निर्णय करना ही चाहिए। इससे दो परम्पराओं की रक्षा होती है—एक तो विवाद की शन्ति तथा दूसरी न्याय की रक्षा। अतः इन दोनों परम्पराओं को ध्यान में रखते हुए न्याय की रक्षा और विवाद की शान्ति करनी ही चाहिए।

प्रह्लाद उवाच—

अथ यो नैव प्रब्रूयात् सत्यं वा यदि वाऽनृतम्।
एतत् सुधन्वन् पृच्छामि दुर्विवक्ता स्म किं वसेत् ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ—अथ=अनन्तर, यः=जो, सत्यम्=सत्य को, नैव=नहीं, प्रब्रूयात्=ठीक से कहे, वा=अथवा, अनृतम्=असत्य को, सुधन्वन्=हे सुधन्वन्, एतत्=यह, पृच्छामि=पूछता हूँ, दु विवक्ता=गलत उत्तर देने वाला, किम्=किसको, वसेत्=प्राप्त करें। स्म=यह पाद-पूरणार्थ है।

हिन्दी—प्रह्लाद ने कहा—हे सुधन्वन् ! तुमसे यह पूछता हूँ कि जो सत्य न बोले और सत्य का निर्णय न दे; ऐसे दुष्ट वक्ता की क्या स्थिति होती है ? अर्थात् वह कहाँ निवास करता है ?

सुधन्वोवाच—

यां रात्रिमधिविन्ना स्त्री यां चैवाक्षपराजितः ।
यां च भाराभितप्ताङ्गो दुर्विवक्ता स्म तां वसेत् ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ—याम् = जिस, रात्रिम् = रात्रि को, अधिविन्ना = पत्नी रहते हुए दूसरी स्त्री से विवाह करने वाला, स्त्री = स्त्री, याम् = जिसको, च = और, एव = ही, अक्षपराजितः = जुए में हारा हुआ, याम् = जिसको, च = और, भाराभितप्ताङ्गः = भार ढोने से थके हुए शरीर वाला, दुर्विवक्ता = मिथ्या बोलने वाला, ताम् = उसको, वसेत् = प्राप्त करे ।

हिन्दी—सुधन्वा ने कहा—सौतवाली स्त्री, जुए में हारे हुए जुआरी तथा भार ढोने से थके शरीर वाले मनुष्य की रात्रि में जो स्थिति होती है, वही स्थिति असत्य निर्णय देने वाले की भी होती है ।

विशेष—जिस प्रकार सौत वाली स्त्री, जुए में हारा हुआ मनुष्य तथा दिनभर भार ढोने के कारण थके हुए मनुष्य को रात में ठीक प्रकार से नींद नहीं आती है, वह रातभर जागता रहता है; उसी प्रकार असत्य निर्णय देने के कारण मानसिक बेचैनी के कारण रातभर नींद नहीं आती है ।

नगरे प्रतिरुद्धः सन् बहिर्द्वारि बुभुक्षितः ।
अमित्रान् भूयसः पश्येत् यः साक्ष्यमनृतं वदेत् ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ—नगरे = नगर में, प्रतिरुद्धः सन् = रोका हुआ, बहिर्द्वारि = द्वार के बाहर, बुभुक्षितः = भूखा, अमित्रान् = शत्रुओं को, भूयसः = बहुतों से, पश्येत् = देखे, यः = जो, साक्ष्यम् = साक्षी को, अनृतम् = झूठ को, वदेत् = बोले ।

हिन्दी—नगर में प्रवेश से रोका हुआ, नगर के बाहर दरवाजे पर भूखा और अपने से शत्रुओं को देखने वाला जो अनुभव करता है, झूठे गवाह देने वाले को वही गति प्राप्त हो ।

विशेष—झूठी गवाही देने वाले व्यक्ति का कोई विश्वास नहीं करता है । यहाँ तक कि उसकी अपनी आत्मा भी उसे सही नहीं मानती । वह अपने को एकाकी अनुभव करने के कारण बहुत अधिक दुःख पाता है । इसी तरह झूठे निर्णय देने वाले को भी बहुत दुःख होता है ।

पञ्च पश्वनृते हन्ति दश हन्ति गवानृते ।
शतमश्वानृते हन्ति सहस्रं पुरुषानृते ॥ ३४ ॥

शब्दार्थ—पञ्च = पाँच पूर्वजों को, पश्वनृते = पशु के लिए झूठ बोलने में, हन्ति = मारता है, दश = दश को, गवानृते = गो के लिए झूठ बोलने में, हन्ति = मारता है, शतम् = सौ को, अश्वानृते = अश्व के लिए झूठ बोलने में, हन्ति = मारता है, सहस्रम् = हजार को, पुरुषानृते = पुरुष के लिए झूठ बोलने में, हन्ति = मारता है ।

हिन्दी—पशु के लिए असत्य भाषण करने वाला अपनी पाँच पीढ़ियों को, गौ के

लिए झूठ बोलने वाला दश पीढ़ियों को, घोड़े के लिए असत्य बोलने वाला सौ पीढ़ियों को और मनुष्य के लिए झूठ बोलने वाला एक हजार पीढ़ियों को नरक में ढकेल देता है।

विशेष—'सत्य बोलना चाहिए' इस वाक्य का किसी प्रकार उल्लंघन हो जाने पर लोकमर्यादा रखने के लिए पारलौकिक भय दिखाकर रक्षा करने का प्रयास किया गया है। जो काम प्रत्यक्ष नहीं होता है, वह परोक्ष किसी कारणवश हो जाता है। लोक में देखा जाता है कि किसी का पूर्वज किसी कारणवश असत्य का शरण लिया, उसका प्रभाव तथा उसके वंश में आने वाले को भी लोग कोशते हैं। अर्थात् वंशानुगत उसका प्रभाव दिखाई देता है। आधुनिक परिवेश में स्वर्ग-नर्क से अनभिज्ञ रहने वाले लोगों में इस प्रकार का अभिप्राय समझना चाहिए।

हन्ति जाता न जातांश्च हिरण्यार्थेऽनृतं वदन्।
सर्वं भूम्यनृते हन्ति मा स्म भूम्यनृतं वदेः॥ ३५॥

शब्दार्थ—जातान्=उत्पन्न हुए, अजातान्=उत्पन्न नहीं हुए, च=और, अनृतम्=झूठ को, वदन्=बोलते हुए, हन्ति=मारता है, सर्वम्=सबको, भूम्यनृतम्=भूमि के लिए झूठ में, सर्वम्=सबको, हन्ति=मारता है, मा स्म=मत, भूम्यनृतम्=भूमि के लिए झूठ, वदेः=बोलो।

हिन्दी—सुवर्ण के लिए झूठ बोलने वाला भूत और भविष्य में उत्पन्न सभी को मारता है। भूमि और स्त्री के लिए झूठ बोलने वाला अपना सर्वस्व नष्ट कर लेता है। इस भूमि के लिए कभी भी असत्य नहीं बोलो।

विशेष—भूमि और स्त्री को समान माना गया है—'माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः' अर्थात् भूमि हमारी माता है और मैं पृथ्वीपुत्र हूँ। इससे यह द्योतित होता है कि प्रह्लाद को सुधन्वा मानो उद्बोधित कर रहा है कि अपने पुत्र के लिए केशिनी को पुत्रवधू बनाने के लोभ में असत्य मत बोलो तथा न्यायाधीश के आसन से सत्य का पक्ष ग्रहण करो।

प्रह्लाद उवाच—

मत्तः श्रेयान् अङ्गिरा वै सुधन्वा त्वद् विरोचन।
माताऽस्य श्रेयसी मातुस्तस्मात्त्वं तेन वै जितः॥ ३६॥

शब्दार्थ—विरोचन=हे विरोचन! मत्तः=मुझसे, वै=निश्चय ही, श्रेयान्=श्रेष्ठ, अङ्गिराः=अङ्गिरा नामक सप्तर्षि के ऋषि, अथवा सुधन्वा के पिता, सुधन्वा=सुधन्वा, त्वत्=तुझसे, अस्य=इसकी, माता=माता, श्रेयसी=श्रेष्ठ है, मातुः=तेरी माता से, तस्मात्=इस कारण से, त्वम्=तुम, तेन=उसके द्वारा, वै=निश्चय ही, जितः=जीत लिया गया है।

हिन्दी—प्रह्लाद ने कहा—हे विरोचन! मुझसे सुधन्वा के पिता अङ्गिरा श्रेष्ठ हैं और तुझसे सुधन्वा श्रेष्ठ है। सुधन्वा की माता तुम्हारी माता से श्रेष्ठ है। इसलिए तुम सुधन्वा के द्वारा जीत लिया गया अर्थात् सुधन्वा की जीत हुई।

विशेष—इतिहास साक्षी है कि इस प्रकार अपने पुत्र के लिए भी असत्य का पक्ष नहीं लेने वाला प्रह्लाद जैसा दूसरा कोई नहीं है। इसलिए असुर वंश में उत्पन्न होने के कारण भी प्रह्लाद सर्वजन पूज्य माने जाते हैं। यही इनकी खास विशेषता है।

विरोचन सुधन्वाऽयं प्राणानामीश्वरस्तव।
सुधन्वन् पुनरिच्छामि त्वया दत्तं विरोचनम्॥ ३७॥

शब्दार्थ—विरोचन=हे विरोचन ! अयम्=यह, सुधन्वा=सुधन्वा, तव=तुम्हारे, प्राणानाम्=प्राणों का, ईश्वरः=स्वामी है, सुधन्वन्=हे सुधन्वन्, त्वया=तुझको, दत्तम्=दिये गये, विरोचनम्=विरोचन को, पुनः=फिर, इच्छामि=चाहता हूँ।

हिन्दी—प्रह्लाद बोला—हे विरोचन ! सुधन्वा तेरे प्राणों का स्वामी है। हे सुधन्वन् ! तुम्हारे द्वारा जीते हुए विरोचन को मैं पुनः चाहता हूँ अर्थात् प्राणों को जीतकर भी तुम इसका प्राणदान करो।

विशेष—महाजन लोग किसी का प्राण नहीं लेते हैं। इसलिए सुधन्वा से प्राणों पर अधिकार शर्त जीतने के कारण रहने पर भी उसे देने के छिए प्रह्लाद ने कहा।

सुधन्वोवाच—

यद्धर्ममवृणीथास्त्वं न कामादनृतं वदीः।
पुनर्ददामि ते पुत्रं तस्मात् प्रह्लाद दुर्लभम्॥ ३८॥

शब्दार्थ—प्रह्लाद=हे प्रह्लाद ! यत्=जिस कारण, त्वम्=तुमने, धर्मम्=धर्म को, अवृणीथाः=स्वीकार किया है, कामात्=मोह से, अनृतम्=असत्य, न वदीः=नहीं बोला, तस्मात्=इसी कारण से, ते पुत्रम्=तुम्हारे पुत्र को, दुर्लभम्=अत्यन्त दुर्लभ, पुनः=फिर, ददामि=देता हूँ।

हिन्दी—सुधन्वा ने कहा—हे प्रह्लाद ! जिस कारण तुमने धर्म को स्वीकार किया है, किसी कारणवश भी असत्य का आश्रयण नहीं किया, इसलिए तुम्हारे दुर्लभ पुत्र को पुनः मैं तुम्हें देता हूँ।

विशेष—'पुं नाम नरकात् त्रायते स पुत्रः' अर्थात् जो 'पुम्' नामक नरक से बचा लेता है उसे पुत्र कहते हैं। 'अपुत्रस्य गतिर्नास्ति' अर्थात् अपुत्र की गति (स्वर्ग) नहीं होती है। इस प्रकार के शास्त्रीय वचन प्रमाण होने के कारण पुत्र को दुर्लभ कहा गया है। दुर्लभ वस्तु की रक्षा की जाती है, न कि उसे नष्ट होने दे। अतः सुधन्वा ने 'दुर्लभ पुत्र देता हूँ' ऐसा कहा।

एषः प्रह्लादपुत्रस्ते मया दत्तो विरोचनः।
पादप्रक्षालनं कुर्य्यात् कुमार्याः सन्निधौ मम॥ ३९॥

शब्दार्थ—प्रह्लाद=हे प्रह्लाद ! एषः=यह, ते=तुम्हारा, पुत्रः=पुत्र, विरोचनः=विरोचन, मया=मेरे द्वारा, दत्तः=दिया गया परन्तु, कुमार्याः=

केशिनी के, सन्निधौ = समीप में, मम = मेरा, पादप्रक्षालनम् = मेरे पैर धोने का कार्य, कुर्य्यात् = करें।

हिन्दी—हे प्रह्लाद ! मेरे द्वारा दिया गया तुम्हारा यह पुत्र विरोचन कुमारी केशिनी के नजदीक मेरे पैर को धोए। अर्थात् मेरी श्रेष्ठता स्वीकार करे।

विशेष—भारतीय संस्कृति में वर को नारायण और कन्या को लक्ष्मीरूप मानकर विवाह के समय में कन्यापक्ष वाले पाद्य-अर्घ के द्वारा वर-वधू का पाद-प्रक्षालन करते हैं। 'वरो नारायणो साक्षात् कन्या लक्ष्मीवदाचरेत्'। इसी कारण कन्यापक्ष की अपेक्षा वरपक्ष वाले श्रेष्ठ भी माने जाते हैं। विरोचन और सुधन्वा में श्रेष्ठता का प्रश्न था, इसी के लिए प्राणों की बाजी लगाई गयी। प्रह्लाद ने इसका निर्णय दिया, अतः सुधन्वा को श्रेष्ठ स्वीकार कर पादप्रक्षालन करने से सुधन्वा की श्रेष्ठता और भारतीय संस्कृति के अनुसार मर्यादा का रक्षण दोनों होता है। अतः महाभारत के प्रसिद्ध टीकाकार नीलकण्ठ का अभिप्राय युक्तिसंगत है आक्षेपयुक्त नहीं।

विदुर उवाच—

तस्माद्राजेन्द्र ! भूम्यर्थे नानृतं वक्तुमर्हसि।
मा गमः ससुतामात्यो नाशं पुत्रार्थमब्रुवन् ॥ ४० ॥

शब्दार्थ—राजेन्द्र = हे राजेन्द्र ! तस्मात् = इस कारण, भूम्यर्थे = राज्य के लिए अनृतम् = झूठ, वक्तुम् = बोलना, न + अर्हसि = योग्य नहीं हो, पुत्रार्थम् = पुत्र के लिए, नाशम् = नाश को, अब्रुवन् = असत्य बोलते हुए, ससुतामात्यः = मन्त्री-पुत्र सहित, मा गमः = मत प्राप्त करो।

हिन्दी—विदुर ने कहा—हे राजेन्द्र धृतराष्ट्र ! राज्य के लिए असत्य बोलना उचित नहीं है। पुत्र के लिए असत्य नहीं बोलते हुए मन्त्री-पुत्र सहित नाश को प्राप्त मत करो।

विशेष—इतिहास-पुराण केवल अतीतकालीन राजाओं के चरित्र का वर्णन ही नहीं करते, बल्कि उनके द्वारा कर्त्तव्याकर्तव्य का परिचय एवं व्यावहारिक ज्ञान भी प्राप्त होता है। अतः प्राचीन प्रह्लाद-विरोचन और सुधन्वा के दृष्टान्त द्वारा धृतराष्ट्र को पुत्रमोह में असत्य भाषण तथा मोह त्यागने का आग्रह किया है, जिससे अमल कीर्ति प्राप्त हो सके। अन्यथा इतिहास के द्वारा निन्दित चरित्र होने के कारण उसे प्राप्त करोगे।

न देवा दण्डमादाय रक्षन्ति पशुपालवत्।
यं तु रक्षितुमिच्छन्ति बुद्धया संविभजन्ति तम् ॥ ४१ ॥

शब्दार्थ—देवाः = देवता, दण्डमादाय = दण्डा लेकर, पशुपालवत् = चरवाहों की तरह, न रक्षन्ति = रक्षा नहीं करते हैं, यम् = जिसको, रक्षितुमिच्छन्ति = रक्षा करना चाहते हैं, तम् = उसको, बुद्धया = बुद्धि से, संविभजन्ति = युक्त कर देते हैं।

हिन्दी—देवता लोग हाथ में दण्डा लेकर किसी की रक्षा नहीं करते हैं। जिसकी रक्षा करना चाहते हैं उसे बुद्धि से युक्त कर देते हैं।

विशेष—बुद्धि ही सुख-दुःख का कारण है। सुमति और कुमति सबके पास रहती हैं। जहाँ सुमति है वहाँ सभी प्रकार की सम्पत्ति प्राप्त हो जाती है और जहाँ कुमति आ जाय वहाँ समस्त दुःख अपने-आप आ जाते हैं। इसलिए मानसकार ने कहा है—

सुमति कुमति सबके उर रहहीं।
नाथ पुरान निगम अस कहहीं॥
जहाँ सुमति तहँ सम्पति नाना।
जहाँ कुमति तहँ विपति निधाना॥

और भी—

जाके विधि दारुण दुख दीन्हा। ताके मति पहिले हरि लीन्हा॥

इसी बिन्दु के सदृश पूर्व के द्वितीय अध्याय के एक्यासी श्लोक (२।८१) में कहा गया है।

देवता मनुष्यों के कर्मानुसार फल देते हैं। ये कर्म तीन प्रकार के होते हैं—प्रारब्ध, क्रियमाण और संचित। प्रारब्ध कर्म पूर्वजन्म का संचित कर्म है। जिसका भोग के बिना क्षय नहीं होता है। इसी का भाग्य शब्द से भी व्यपदेश किया जाता है। क्रियमाण कर्मों का अनुष्ठान मनुष्य प्रतिदिन करता है। इसी के अनुसार देवगण फलाफल का विधान करते हैं।

यथा यथा हि पुरुषः कल्याणे कुरुते मनः।
तथा तथाऽस्य सर्वार्थाः सिद्धयन्ते नात्र संशयः॥ ४२॥

शब्दार्थ—यथा यथा = जैसे-जैसे, हि = निश्चय ही, पुरुषः = पुरुष, मनः = मन को, कल्याणे = शुभकर्मों में, कुरुते = करता है, तथा तथा = वैसे-वैसे, अस्य = इसके, सर्वार्थाः = सब प्रयोजन, सिद्धयन्ते = सिद्ध हो जाते हैं। अत्र = यहाँ, न संशयः = सन्देह नहीं है।

हिन्दी—जैसे-जैसे मनुष्य शुभकार्यों में मन लगाता है वैसे-वैसे उसके सभी प्रयोजन पूरे हो जाते हैं। इस विषय में कोई सन्देह नहीं है।

विशेष—'नहि कल्याणकृत् कश्चिद् दुर्गतिं तात गच्छति'। (गीता) अर्थात् कल्याण करने वाला व्यक्ति कभी दुःखावस्था को प्राप्त नहीं करता है। इसलिए सदा कल्याणकारी कार्य करने चाहिए।

नैनं छन्दांसि वृजनात् तारयन्ति मायाविनं मायया वर्तमानम्।
नीडं शकुन्ता इव जातपक्षाश्छन्दांस्येनं प्रजहत्यन्तकाले॥ ४३॥

शब्दार्थ—मायाविनम् = मायावी को, मायया = माया से, वर्तमानम् = व्यवहार करने वाले को, एनम् = इसको, छन्दांसि = वेद, वृजनात् = पापाचरण से, न तारयन्ति

=पार नहीं करते हैं। जातपक्षाः=पंख उत्पन्न होने पर, शकुन्ताः=पक्षी, नीड़म् इव=घोंसले के समान, एनम्=इसको, छन्दांसि=वेद, अन्तकाले=अन्त समय में प्रजहति=छोड़ देते हैं।

हिन्दी--छल से व्यवहार करने वाले मायावी पुरुष की वेद भी रक्षा नहीं करते हैं। अन्त समय में पक्षी जैसे घोंसले को छोड़ देते हैं, उसी प्रकार अन्त समय में मायावी को वेद भी छोड़ देते हैं अर्थात् उसकी रक्षा नहीं करते हैं।

विशेष--वेदाध्ययन से सभी प्रकार के पाप घुल जाते हैं। लेकिन वेदाध्ययन करने के बाद ज्ञातावस्था में पापाचरण करने वाले को वेदाध्ययन का फल न मिलकर पापाचरण का ही फल मिलता है। अतः ज्ञान से गलत कार्य नहीं करना चाहिए।

मद्यपानं कलहं पूगवैरं, भार्यापत्योरन्तरं ज्ञातिभेदम्।
राजद्विष्टं स्त्रीपुंसयोर्विवादं, वर्ज्यान्याहुर्यश्च पन्थाः प्रदुष्टः॥ ४४॥

शब्दार्थ--मद्यपानम्=शराब पीने को, कलहम्=लड़ाई को, पूगवैरम्=सबसे शत्रुता रखने को, भार्यापत्योरन्तरम्=पति-पत्नी में भेद को, ज्ञातिभेदम्=सगे-सम्बन्धियों में भेद को, राजद्विष्टम्=राजा से द्वेष को, स्त्रीपुंसयोः विवादम्=पति-पत्नी की लड़ाई को, वर्ज्यानि=त्यागने योग्य, आहुः=कहे गये हैं। यः=जो, पन्थाः=मार्ग, च=और, प्रदुष्टः=अधिक दुष्ट हो।

हिन्दी--मद्यपान करना, झगड़ा करना, समुदाय से वैर रखना, पति-पत्नी में भेद करना, सगे-सम्बन्धी में भेद रखना, राजा से द्वेष रखना, स्त्री-पुरुष में विवाद कराना या करना तथा दुष्ट मार्ग—ये सब छोड़ने योग्य कहे गये हैं। अर्थात् इन सबों को छोड़ देना चाहिए।

विशेष--विदुर ने धृतराष्ट्र को इस श्लोक द्वारा समझाने का प्रयास किया है कि सगे-सम्बन्धियों में भेद रखना उचित नहीं है। अतः इस प्रकार के मनीषियों के द्वारा त्यागने योग्य मार्ग का आश्रयण नहीं करना चाहिए। क्योंकि इससे अन्तःकलह की स्थिति रहने के कारण शान्ति नहीं मिलती है।

सामुद्रिकं वणिजं चोरपूर्वं शलाकधूर्त्तं च चिकित्सकं च।
अरिं च मित्रं च कुशीलवं च नैतान् साक्ष्ये त्वधिकुर्वीत सप्त॥ ४५॥

शब्दार्थ--सामुद्रिकम्=शारीरिक रेखा आदि लक्षण जानने वाले को, वणिजम्=व्यापारी को, चोरपूर्वम्=पहले चोरी करने वाले तथा सम्प्रति उस कर्म को छोड़ने वाले को, शलाकधूर्तम्=जुआ खेलने वाले को, च=और, चिकित्सकम्=चिकित्सक को, वैद्य को, च=और, अरिम्=शत्रु को, च=और, मित्रम्=मित्र को, च=और, कुशीलवम्=नाच-गान करने वाले को, च=और, एतान्=इन, सप्त=सात को, साक्ष्ये=साक्षी कर्म में, तु=किन्तु, न अधिकुर्वीत=अधिकृत नहीं करना चाहिए।

हिन्दी--हस्तादि शरीर-लक्षण जानने वाले को, पहले चोर बाद में व्यापारी बनने वाले को, जुआरी तथा वैद्य को, शत्रु, मित्र और नाच-गान करने वाले को—

इन सातों को कभी साक्षी न रखें। क्योंकि ये पूर्व संस्कार तथा अन्य कारणों से असत्य साक्षी दे सकते हैं।

विशेष—साक्षी से समस्याओं का समाधान तथा तथ्य-निर्णय होता है। परन्तु ये सब लोभादि के कारण असत्य भाषण करने से तथ्य सामने नहीं आयेगा। इसलिए इन सबों को प्रमाणभूत नहीं मानना चाहिए।

मानाग्निहोत्रमुत मानमौनं, मानेनाधीमुत मानयज्ञः।
एतानि चत्वार्यभयङ्कराणि भयं प्रयच्छन्त्ययथाकृतानि ॥ ४६ ॥

नोट—इस श्लोक के शब्दार्थ १।७८ श्लोक में ईषत् परिवर्तन से दिया गया है। अतः इसके शब्दार्थ के लिए वहीं देखें।

अगारदाही गरदः कुण्डाशी सोमविक्रयी।
पर्वकारश्च सूची च मित्रध्रुक् पारदारिकः ॥ ४७ ॥
भ्रूणहा गुरुतल्पी च यश्च स्यात् पानपो द्विजः।
अतितीक्ष्णश्च काकश्च नास्तिको वेदनिन्दकः ॥ ४८ ॥
स्रुवप्रग्रहणो व्रात्यः कीनाशश्चात्मवानपि।
रक्षेत्युक्तश्च यो हिंस्यात् सर्वे ब्रह्महभिः समाः ॥ ४९ ॥

शब्दार्थ—अगारदाही = घर जलाने वाला, गरदः = विष देने वाला, कुण्डाशी = कुण्ड (अमृते जारजः कुण्डः) से भोजन करने वाला सर्वभक्षी, सोमविक्रयी = सोमरस बेचने वाला, पर्वकारः = बाणादि शस्त्र बनाने वाला, च = और, सूची = चुगलखोर, मित्रध्रुक् = मित्रद्रोह करने वाला, पारदारिकः = दूसरे की स्त्री से रमण करने वाला, भ्रूणहा = गर्भपात कराने वाला, गुरुतल्पी = गुरुपत्नी के साथ रमण करने वाला, पानपः = शराब पीने वाला, द्विजः = ब्राह्मण, अतितीक्ष्णः = अत्यन्त क्रोधी, च = और, काकः = कौए के समान कटुभाषी, वेदनिन्दकः = वेद की निन्दा करने वाला, स्रुवप्रग्रहणः = सर्वत्र यज्ञ कराने वाला, नास्तिकः = स्वर्गादि को नहीं मानने वाला, व्रात्यः = पतित, कीनाशः = क्रूर, च = और, आत्मवानपि = आत्मरक्षा करने में समर्थ भी, रक्ष = रक्षा करो, इति = इस प्रकार, उक्तः = कहने वाला, च = और, यः = जो, हिंस्यात् = मारे, सर्वम् = सभी, ब्रह्महभिः = ब्रह्मघातकों के, समाः = समान हैं।

हिन्दी—बिना अपराध दूसरों के घर को जलाने वाला, विष देने वाला, सभी वस्तु को खाने वाला, सोमरस बेचने वाला, अस्त्र-शस्त्र बनाने वाला, गुरुपत्नी से व्यभिचार करने वाला, चुगलखोर, मित्रद्रोही, परस्त्रीगामी, गर्भपात कराने वाला, मदिरा पीने वाला ब्राह्मण, अतिक्रोधी, कौए के समान कठोर बोलने वाला, वेद की निन्दा करने वाला नास्तिक, सर्वत्र यज्ञ कराने वाला, पतित, क्रूर और समर्थ होते हुए भी 'रक्षा करो' कहने वाला तथा हिंसा करने वाला—ये सब ब्रह्महा के समान होते हैं।

विशेष—सृष्टि के प्रारम्भ काल से ही ऋषियों ने अनुचित कार्य करने तथा उसे

निषेध के लिए पापों की व्यवस्था एवं उनके भेद किये हैं। बुद्धि-प्रधान समाज राष्ट्र का शुभचिन्तक होने के नाते ब्राह्मण का महत्त्व सर्वोपरि था। अतः उसकी ह करने वाला ब्रह्महा सबसे बड़ा पापी कहलाता था। प्रस्तुत श्लोक में नीति ने ये सब कार्य करने वालों को ब्रह्मघाती के समान माना है तथा उससे बचने लिए आग्रह किया है।

तृणोल्कया ज्ञायते जातरूपं वृत्तेन भद्रो व्यवहारेण साधुः।
शूरो भयेष्वर्थकृच्छ्रेषु धीरः कृच्छ्रेष्वापत्सु सुहृदश्चारयश्च ॥ ५० ॥

शब्दार्थ—तृणोल्कया = काटने एवं तपाने से, जातरूपम् = सुवर्ण, ज्ञायते = ज जाता है, वृत्तेन = आचार से, भद्रः = श्रेष्ठ पुरुष, साधुः = सज्जन, व्यवहारेण = व्यवहार के द्वारा, शूरः = शूरवीर, भयेषु = भयों के उपस्थित होने पर, अर्थकृच्छ्रेषु = धनाभाव होने पर, धीरः = धीर, कृच्छ्रेषु = घोर, आपत्सु = विपत्तियों के स में, सुहृदः = मित्र, च = और, अरयः = शत्रु की पहचान होती है।

हिन्दी—जलाने, पीटने और काटने से सोने की पहचान होती है, शील स्व से भद्र पुरुषों की पहचान होती है, साधु का ज्ञान व्यवहार से, शूरवीर की पह संकट आने पर और शत्रु-मित्र की पहचान घोट संकट के समय में होती है।

विशेष—सुवर्ण का परीक्षण घिसने, काटने, तपाने और चोट मारने से होता है उसी प्रकार दुःख के समय शत्रु-मित्र की पहचान होती है, क्योंकि सुख में सब स हो जाते हैं, लेकिन दुःख के समय अपने लोग भी साथ छोड़ देते हैं। अतः दुःखाव में जो साथ दे, वही मित्र तथा उस अवस्था में साथ छोडने वाला शत्रु सम चाहिए।

जरा रूपं हरति हि धैर्यमाशा मृत्युः प्राणान् धर्मचर्यामसूया।
क्रोधः श्रियं शीलमनार्यसेवा ह्रियं कामः सर्वमेवाभिमानः ॥ ५१ ॥

शब्दार्थ—जरा = बुढ़ापा, रूपम् = रूप को, हरति = हरण कर देता है, आशा = आशा, हि = निश्चय से, धैर्यम् = धैर्य को, मृत्युः = मौत, प्राणान् = प्राणों को, अ = निन्दा या दोषारोपण, धर्मचर्यम् = धर्म के आचरण को, क्रोधः = क्रोध, श्रियम् = धन-सम्पत्ति को, अनार्यसेवा = दुष्टों की सेवा, शीलम् = स्वभाव को, कामः = विषय-वासना, ह्रियम् = लज्जा को, अभिमानः = अभिमान, सर्वम् एव = सभी ही नष्ट कर देता है।

हिन्दी—बुढ़ापा रूप को नष्ट कर देता है, आशा धैर्य को समाप्त करती असूया धर्माचरण को समाप्त कर देती है, क्रोध धननाश कराता है, दुष्टों की सेवा स्वभाव नष्ट हो जाता है, काम से लज्जा दूर हो जाती है और अभिमान से कुछ नष्ट हो जाता है।

विशेष—पूर्व श्लोक में सुवर्णादि के भले-बुरे की पहचान कैसे होती है, बता है। इस श्लोक में कौन-सा दुर्गुण किसका नाशक होता है, निर्देश किया गया है लोभादि अवगुण गुणों का समूल नाश कर देते हैं, भर्तृहरि ने भी कहा है कि—'

स्वेदगुणेन किं पिशुनता यद्यस्ति किं पातकैः'। (नीति० ४४) इसी प्रकार अभिमान सभी प्रकार के सद्गुणों का विनाश कर देता है। अभिमान पराजय का प्रमुख कारण है। इसीलिए गीता कहती है—'अहङ्कारविमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते'। (गीता) इसलिए विज्ञ मनुष्य को कभी भी अभिमान नहीं करना चाहिए।

श्रीर्मङ्गलात् प्रभवति प्रागल्भ्यात् सम्प्रवर्धते।
दाक्ष्यात्तु कुरुते मूलं संयमात् प्रतितिष्ठति॥ ५२॥

शब्दार्थ—श्रीः=लक्ष्मी, मङ्गलात्=शुभकार्यों से, प्रभवति=उत्पन्न होती है, प्रागल्भ्यात्=चतुराई से, सम्प्रवर्धते=बढ़ती है, दाक्ष्यात्=दक्षता से, तु=निश्चय ही, मूलम्=मूल को, कुरुते=करती है, संयमात्=संयम से, प्रतितिष्ठति=ठहरती है।

हिन्दी—लक्ष्मी उत्तम कर्मों से उत्पन्न होती है, चतुराई से बढ़ती है, दक्षता से दृढ़मूल होती है तथा संयम से चिरस्थिति होती है।

विशेष—प्राचीन शास्त्रीय विवेचन के अनुसार लक्ष्मी का वाहन उल्लू माना गया है। इसका अभिप्राय लक्ष्मी प्राप्त कर व्यक्ति अविवेकी बन जाता है, इसलिए नीतिकार ने लक्ष्मी को पाकर उन्मत्त नहीं होना चाहिए अपितु उसे धैर्य तथा संयम द्वारा रक्षा करनी चाहिए। अन्यथा 'चञ्चला' नामानुरूप वह उसे छोड़कर चली जाती है।

अष्टौ गुणाः पुरुषं दीपयन्ति प्रज्ञा च कौल्यं च दमः श्रुतं च।
पराक्रमश्च बहुभाषिता च दानं यथाशक्ति कृतज्ञता च॥ ५३॥

शब्दार्थ—अष्टौ=आठ, गुणाः=गुण, पुरुषम्=पुरुष को, दीपयन्ति=प्रकाशित करते हैं। प्रज्ञा=बुद्धि, च=और, कौल्यम्=कुलीनता, च=और, दमः=इन्द्रिय-दमन, श्रुतम्=ज्ञान, च=और, पराक्रमः=पराक्रम, च=और, अबहुभाषिता=कम बोलना, दानम्=दान देना, यथाशक्ति=शक्ति के अनुसार, कृतज्ञता=उपकार का संस्मरण, च=और।

हिन्दी—प्रज्ञा, कुलीनता, इन्द्रियदमन, ज्ञान, कम बोलना, शक्ति के अनुसार दान देना और कृतज्ञता—ये आठ गुण पुरुष को प्रकाशित करते हैं।

विशेष—'गुणाः पूजास्थानं गुणिषु लिङ्गं न च वयः'। मनुष्य के गुण ही पूजा के स्थान होते हैं, लिङ्ग और अवस्था नहीं। वे गुण जहाँ रहते हैं, उस मनुष्य का महत्त्व बढ़ जाता है। कुछ लोगों के मतानुसार कुलीनता का अर्थ धनसम्पन्न मानते हैं, लेकिन अपने कुल की प्रतिष्ठा को ध्यान में रखने वाले निर्धन और धनसम्पन्न दोनों हो सकते हैं। प्राचीन शास्त्रकारों ने कुलीनता की महत्ता सर्वत्र स्थापित की है, क्योंकि इसके कारण व्यक्ति अपनी नैतिकता के आधार पर निर्णय लेता है। उसे अपने लाभ-हानि का कभी ध्यान नहीं रहता है, इसलिए इसे श्रेष्ठ मानते हैं।

एतान् गुणांस्तात महानुभावानेको गुणः संश्रयते प्रसह्य।
राजा यदा सत्कुरुते मनुष्यं सर्वान्गुणानेष गुणो विभाति॥ ५४॥

शब्दार्थ—तात=हे भाई धृतराष्ट्र ! एतान्=इन, गुणान्=गुणों को, महानु-

भावान् = महत्त्वपूर्णों को, एकः = एक, गुणः = गुण, यदा = जब, राजा = प्रसह्य = दबाकर, संश्रयते = आश्रय देता है, मनुष्यम् = मनुष्य को, सत्कुरुते = करता है, सर्वान् = सब, गुणान् = गुणों को, एषः = यह, गुणः = गुण, विभा प्रकाशित करता है।

हिन्दी—हे धृतराष्ट्र ! इन महत्त्वपूर्ण गुणों से अधिक राजसम्मान श्रेष्ठ हो जाता है। क्योंकि राजसम्मान रूप गुण सबसे अधिक शोभायमान होत अर्थात् राजसत्कार में सब गुण दिखाई देते हैं।

विशेष—इस श्लोक का अभिप्राय यह है कि इन आठ गुणों से मनुष्य स्वा सत्कार को प्राप्त करता है। परन्तु इन स्वाभाविक गुणों के अभाव में भी राजस से सम्पूर्ण गुण विकसित हो जाते हैं।

महाभारत के टीकाकार नीलकण्ठ ने पूर्वोक्त पाँच श्लोकों का प्रासङ्गिक दर्शाया है तथा दुर्योधन एवं उनके सहायकों को हीनत्व का बोध कराया एक्यावन श्लोकों के भावों को व्यञ्जित करते हुए कहा है कि दुर्योधन का अभि नाश का कारण बनेगा। बावनवें श्लोक में लक्ष्मी की चञ्चलता दिखाकर संयम नियन्त्रण का मार्ग बताकर दूर्योधन की उच्छृंखलता के कारण राज्यलक्ष्मी नष्ट की संभावना व्यक्त की है। तिरपन एवं चौवन श्लोकों के द्वारा कर्णादि में वि गुण राज्य-सत्कार के द्वारा प्राप्त है, ऐसा माना है। अतः ये गुण सहायक नहीं हों

अष्टौ नृपेमानि मनुष्यलोके स्वर्गस्य लोकस्य निदर्शनानि।
चत्वार्येषामन्ववेतानि सद्भिश्चत्वारि चैषामनुयान्ति सन्तः ॥ ५५॥

शब्दार्थ—नृप=हे राजन्, इमानि = ये, अष्टौ = आठ, मनुष्यलोके = मनु लोक में, स्वर्गस्य लोकस्य = स्वर्गलोक के, निदर्शनानि = ज्ञान कराने वाले चत्वारि = चार, एषाम् = इनमें, सद्भिः = सज्जनों में, अन्वेतानि = निश्चित रहते चत्वारि = चार च = और, एषाम् = इनमें, सन्तः = सज्जन-गण, अनुयान्ति अनुगमन करते हैं।

हिन्दी—हे राजन् ! ये आठ गुण मनुष्यलोक में स्वर्गलोक का ज्ञान कराने हैं। इनमें चार गुण सज्जनों में सदा रहते हैं तथा चार का सज्जन लोग नित्य करते हैं।

विशेष—इस श्लोक में 'सद्भिः' तथा 'सन्तः' ये दोनों शब्द व्यवहार में एक अर्थ के वाचक हैं। लेकिन नीतिकार के अनुसार यहाँ अलग-अलग अर्थ अभिप्रेत हैं 'सद्भिः' का अर्थ सज्जन होता है। लेकिन सन्त का अर्थ साधु लिया है। अर्थात् सज्ज में गुण आहार्य हो सकते हैं लेकिन साधु में ये गुण स्वाभाविक होते हैं।

यज्ञो दानमध्ययनं तपश्च चत्वार्येतान्यन्वेतानि सद्भिः।
दमः सत्यमार्जवमानृशंस्यं चत्वार्येतान्यनुयान्ति सन्तः ॥ ५६ ॥

शब्दार्थ—यज्ञः = यज्ञ करना, दानम् = दान देना, अध्ययनम् = पढ़ना, तप

तपस्या करना, एतानि = ये, चत्वारि = चार, सद्भिः = सत्पुरुषों के साथ, अन्वेतानि = सम्बन्ध रखते हैं, च = और, दमः = इन्द्रियदमन करना, सत्यम् = सत्य बोलना, आर्जवम् = सरलता, आनृशंस्यम् = कोमलता, एतानि = ये, चत्वारि = चार, सन्तः = सत्पुरुष, अनुयान्ति = अनुगमन करते हैं।

हिन्दी—यज्ञ, दान, अध्ययन तथा तप—ये चार गुण सत्पुरुषों के साथ रहते हैं तथा दम, सत्य, आर्जव और कोमलता—ये चार गुण सज्जनों के साथ रहते हैं।

विशेष—पूर्वोक्त गुणों का कभी दम्भार्थ, दिखावा इत्यादि कारण से भी आचरण हो सकते हैं, परन्तु बाद के गुण सन्त के द्वारा ही आचरण किये जाते हैं।

इज्याध्ययनदानानि तपः सत्यं क्षमा घृणा।
अलोभ इति मार्गोऽयं धर्मस्याष्टविधः स्मृतः ॥ ५७ ॥

शब्दार्थ—इज्याध्ययनदानानि = यज्ञ, अध्ययन और दान, तपः = तप, सत्यम् = सत्यभाषण, क्षमा = क्षमा करना, घृणा = दया, अलोभः = लोभ नहीं करना, इति = पूर्व में कहे गये, धर्मस्यायम् = धर्म का यह, अष्टविधः = आठ प्रकार के, मार्गः = रास्ता, स्मृतः = कहा गया है।

हिन्दी—यज्ञ, अध्ययन, दान, तप, सत्यभाषण, क्षमा, दया और अलोभ—यह धर्म का आठ प्रकार का मार्ग माना गया है।

विशेष—इसमें घृणा शब्द का अर्थ घृणा करना नहीं अपितु 'घृ क्षरणदीप्त्योः' धातु से 'न' प्रत्यय होकर बना है। जिसका अर्थ दुःखी को देखकर पिघल जाने के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। परन्तु घृणा करने रूप अर्थ में भी १।९५ में प्रयोग दिखायी देता है।

तत्र पूर्वचतुर्वर्गो दम्भार्थमपि सेव्यते।
उत्तरश्च चतुर्वर्गो नामहात्मसु तिष्ठति ॥ ५८ ॥

शब्दार्थ—तत्र = इनमें, पूर्वः = पहला, चतुर्वर्गः = चार का वर्ग (यज्ञ, अध्ययन, दान और तप), दम्भार्थम् = दम्भ के लिए, दिखावे के लिए, अपि = भी, सेव्यते = सेवन किया जाता है, उत्तरः = अगला, च = और, चतुर्वर्गः = चार का वर्ग, (सत्य, क्षमा, दया और लोभ, न = नहीं, अमहात्मसु = दुर्जनों में, तिष्ठति = रहता है।

हिन्दी—उक्त आठ गुणों में से चार यज्ञ, अध्ययन, दान और तप—इनको दुर्जन लोग दम्भ के लिए भी सेवन करते हैं, परन्तु उत्तर चार गुण—सत्य, क्षमा, दया और लोभ का परित्याग—ये दुर्जनों में कभी नहीं रहते हैं।

न सा सभा यत्र न सन्ति वृद्धा न ते वृद्धा ये न वदन्ति धर्मम्।
नासौ धर्मो यत्र न सत्यमस्ति न तत् सत्यं यच्छलेनाभ्युपेतम् ॥ ५९ ॥

शब्दार्थ—सा = वह, सभा न = सभा नहीं है, यत्र = जिसमें, वृद्धाः = ज्ञानवृद्ध, न सन्ति = नहीं हैं, ते = वे, वृद्धाः = ज्ञान-वयोवृद्ध हैं, ये = जो, धर्मम् = धर्म को, न वदन्ति = नहीं कहते हैं, असौ = वह, धर्मः न = धर्म नहीं है, यत्र = जिसमें, सत्यम्

=सत्य, न अस्ति=नहीं है, तत्=वह, न सत्यम्=सत्य नहीं है, यत्=जो, छ
छल से, अभ्युपेतम्=संयुक्त हो।

हिन्दी--वह सभा ही नहीं है जिसमें ज्ञान और वयोवृद्ध पुरुष न हों। वे वृ
ज्ञान और वय से वृद्ध ही नहीं है जो धर्म का कथन न करें। न वह धर्म हो जिस
सत्य का योग न हो और वह सत्य ही नहीं है जो छल से संयुक्त हो।

विशेष—इस श्लोक के अनुसार महाभारत की कथाओं पर भी दृष्टिपात हो
है। जिसमें भीष्म पितामह एवं आचार्य द्रोण के सन्मुख रजस्वला एकवस्त्रा द्रौप
को निर्वस्त्र करने के समय भी कुछ भी नहीं बोल पाये। अतः वे वृद्ध की कोटि
नहीं आ सकते। साथ ही युद्ध के समय 'अश्वत्थामा हतो वा नरो कुञ्जरो वा'
वचन असत्य की परिभाषा में ही परिगणित होता है।

सत्यं रूपं श्रुतं विद्या कौल्यं शीलं बलं धनम्।
शौर्यं च चित्रभाष्यं च दशेमे स्वर्गयोनयः ॥ ६० ॥

शब्दार्थ--सत्यम्=सत्यभाषण, रूपम्=सुन्दर स्वरूप, श्रुतम्=वेदार्थ ज्ञा
विद्या=ज्ञान, कौल्यम्=कुलीनता, शीलम्=उत्तम स्वभाव, बलम्=बल, धनम्=
धन, शौर्यम्=शूरता, च=और, चित्रभाष्यम्=आश्चर्ययुक्त भाषण, च=और, द
=दस, इमे=ये, स्वर्गयोनयः=स्वर्ग की योनियाँ साधन हैं।

हिन्दी—सत्य, सुन्दर रूप, श्रेष्ठ ज्ञान, कुलीनता, शील, बल, धन, शूरता औ
आश्चर्ययुक्त भाषण का सामर्थ्य—ये दश स्वर्ग के साधन हैं।

विशेष--'दशेमे स्वर्गयोनयः' के पाठान्तर में 'दश संसर्गजा गुणाः' भी है
इसका अभिप्राय ये दश गुण उत्तम पुरुष के संसर्ग से प्राप्त होते हैं। अतः सत्पुरु
का सङ्ग अवश्य करना चाहिए।

पापं कुर्वन् पापकीर्तिः पापमेवाश्नुते फलम्।
पुण्यं कुर्वन् पुण्यकीर्तिः पुण्यमत्यन्तमश्नुते ॥ ६१ ॥

शब्दार्थ—पापम्=दुष्कर्म को, कुर्वन्=करता हुआ, पापकीर्तिः=दूषित होक
पापम् एव=पाप ही, फलम्=फल, अश्नुते=भोगता है, पुण्यं कुर्वन्=अच्छे क
को करता हुआ, पुण्यकीर्तिः=उत्तम यश वाला, अत्यन्तम्=अत्यन्त, पुण्यम्=पु
को, अश्नुते=भोगता है।

हिन्दी—पापकर्म करता हुआ पुरुष कलङ्कित होकर बुरे फल को ही भोगता
पुण्यकर्म को करता हुआ पुण्यवान् उत्तम फल को ही भोगता है।

विशेष--जो जैसा करता है वैसा ही पाता है, बबूल के पौधे से आम न
मिलता है। वैसे ही आम के वृक्ष में कभी काँटे नहीं उगते हैं।

तस्मात् पापं न कुर्वीत पुरुषः शंसितव्रतः।
पापं प्रज्ञां नाशयति क्रियमाणं पुनः पुनः ॥ ६२ ॥
नष्टप्रज्ञः पापमेव नित्यमारभते नरः।
पुण्यं प्रज्ञां वर्धयति क्रियमाणं पुनः पुनः ॥ ६३ ॥

वृद्धप्रज्ञः पुण्यमेव नित्यमारभते नरः ।
पुण्यं कुर्वन् पुण्यकीर्तिः पुण्यं स्थानं स्म गच्छति ।
तस्मात् पुण्यं निषेवेत पुरुषः सुसमाहितः ।। ६४ ।।

शब्दार्थ—तस्मात् = इसलिए, शंसितव्रतः = उत्तम व्रत वाला, पुरुषः = पुरुष, पापम् = पाप को, न कुर्वीत = नहीं करे । पापम् = पापकर्म, प्रज्ञाम् = बुद्धि को, नाशयति = नष्ट करता है, पुनः पुनः = फिर-फिर से, क्रियमाणम् = करने से, नष्ट-प्रज्ञः = नष्ट बुद्धि वाला, नरः = मनुष्य, पापमेव = पाप को ही, नित्यम् = हर समय, आरभते = प्रारम्भ करता है, पुण्यम् = पुण्य, प्रज्ञाम् = बुद्धि को, वर्धयति = बढ़ाता है, पुनः-पुनः = बार-बार, क्रियमाणम् = करने पर, वृद्धप्रज्ञः = अधिक बुद्धि वाला, पुण्यमेव = उत्तम कर्म को ही, नित्यमारभते = आरम्भ करता है, नरः = मनुष्य, पुण्यं कुर्वन् = पुण्य करते हुए, पुण्यकीर्तिः = उत्तम यश वाला, पुण्यं स्थानं = उत्तम स्थान को, स्म गच्छति = जाता है, तस्मात् = इसलिए, पुण्यम् = धर्म को, सुसमाहितः पुरुषः = एकाग्रचित्त मनुष्य, निषेवेत = आचरण करे ।

हिन्दी—इसलिए पुण्याचरण करने वाला मनुष्य कभी भी पापाचरण न करे। क्योंकि पापाचरण करने वाले की बुद्धि नष्ट हो जाती है, जिससे सदा पापकर्म को ही करता है। पुण्याचरण करने से बुद्धि बढ़ती है, बढ़ी हुई बुद्धि वाला सदा पुण्याचरण ही करता है। उत्तम कर्म को करने वाला उत्तम लोक को प्राप्त करता हुआ उत्तम योनि में जाता है। इसलिए मनुष्य को एकाग्रचित्त होकर पुण्याचरण करना चाहिए।

असूयको दन्दशूको निष्ठुरो वैरकृच्छठः ।
स कृच्छ्रं महदाप्नोति नचिरात् पापमाचरन् ।। ६५ ।।

शब्दार्थ—असूयकः = द्वेष रखने वाला, दन्दशूकः = मर्मस्थान पर प्रहार करने वाला, निष्ठुरः = कठोर वाणी बोलने वाला, वैरकृत् = विरोध करने वाला, शठः = धूर्त, सः = वह, नचिरात् = शीघ्र ही, महत् कृच्छ्रम् = बड़ी आपत्ति को, पापम् आचरन् = पाप करते हुए, आप्नोति = प्राप्त करता है ।

हिन्दी—जो द्वेष रखने वाला, मर्मस्थान पर प्रहार करने वाला, कठोर वाणी बोलने वाला, विरोध रखने वाला तथा धूर्त है; वह पाप करता हुआ शीघ्र ही बड़ी आपत्ति को प्राप्त होता है ।

अनसूयुः कृतप्रज्ञः शोभनान्याचरन् सदा ।
नकृच्छ्रं महदाप्नोति सर्वत्र च विरोचते ।। ६६ ।।

शब्दार्थ—अनसूयुः = द्वेष नहीं करने वाला, कृतप्रज्ञः = बुद्धिमान्, शोभनानि = उत्तम कर्मों को, आचरन् = आचरण करते हुए, सदा = सर्वदा, न कृच्छ्रम् = सुख को, महत् = बड़े, आप्नोति = प्राप्त करता है, च = और, सर्वत्र = सभी स्थानों पर, विरोचते = शोभित होता है ।

हिन्दी—द्वेष नहीं करने वाला बुद्धिमान् मनुष्य पुण्य कर्मों को करता हुआ बड़े सुख को प्राप्त करता है और सर्वत्र शोभित होता है।

प्रज्ञामेवागमयति यः प्राज्ञेभ्यः स पण्डितः।
प्राज्ञो ह्यवाप्य धर्मार्थौ शक्नोति सुखमेधितुम् ॥ ६७ ॥

शब्दार्थ—प्रज्ञामेव=बुद्धि को ही, प्राज्ञेभ्यः=बुद्धिमानों से, अवगमयति=प्राप्त करता है, यः=जो, सः=वह, पण्डितः=विद्वान् होता है, प्राज्ञः=विद्वान्, हि=निश्चय से, अवाप्य=प्राप्त करके, धर्मार्थौ=धर्म और अर्थ को, सुखम्=सुख को, एधितुम्=बढ़ाने के लिए, शक्नोति=प्राप्त करता है।

हिन्दी—जो मनुष्य विद्वानों से बुद्धि प्राप्त करता है वह विद्वान् होता है। विद्वान् पुरुष धर्म और अर्थ को बढ़ाकर सुख बढ़ाने में समर्थ होता है।

विशेष—'बुद्धिर्यस्य बलं तस्य' अर्थात् जिसके पास बुद्धि है, बल भी उसी के पास है। बुद्धि के बल पर ही संसार में सब कुछ प्राप्त हो सकता है। इसलिए नीतिकार ने प्रज्ञा को सबसे बड़ा मान कर उसी को प्राप्त करने की सलाह दी है।

दिवसेनैव तत् कुर्य्याद् येन रात्रौ सुखं वसेत्।
अष्टमासेन तत् कुर्य्याद् येन वर्षाः सुखं वसेत् ॥ ६८ ॥

शब्दार्थ—दिवसेन=दिन में, तत्=उसको, कुर्य्यात्=करे, येन=जिससे, रात्रौ=रात्रि में, सुखं वसेत्=सुखपूर्वक रहे, अष्टमासेन=आठ महिनों से, तत्=उसको, कुर्यात्=करे, येन=जिससे, वर्षाः=वर्षाकाल में, सुखं वसेत्=सुखपूर्वक रहे।

हिन्दी—दिन में ऐसा कार्य करे, जिससे रात्रि में सुखपूर्वक रहे तथा अष्टमास तक ऐसा कार्य करे, जिससे वर्षाकाल में सुखपूर्वक रहे।

विशेष—यद्यपि यातायात के साधन सुलभ हो जाने के कारण वैसी परिस्थिति वर्तमान में नहीं है, तथापि वर्षाकाल में पूर्वकाल में यातायात की सुविधा न रहने के कारण खान-पान की समस्त सामग्री को वर्षाकाल के लिए सुरक्षित रखते थे तथा इसी दृष्टि से सन्त लोग चातुर्मास्य भी करते होंगे। यद्यपि इस परम्परा के अन्य कारण भी हो सकते हैं, परन्तु यह भी एक दृष्टि है।

पूर्वे वयसि तत्कुर्याद् येन वृद्धः सुखं वसेत्।
यावज्जीवेन तत्कुर्याद् येन प्रेत्य सुखं वसेत् ॥ ६९ ॥

शब्दार्थ—पूर्वे वयसि=प्रथम अवस्था में, बाल्यकाल में, तत् कुर्यात्=वह करे, येन=जिससे, वृद्धः=वृद्धावस्था में, सुखं वसेत्=सुखपूर्वक रहे, यावज्जीवेन=सम्पूर्ण जीवन में, तत् कुर्यात्=वैसा करें, येन=जिससे, प्रेत्य=मरकर, सुखं वसेत्=सुखी रहे।

हिन्दी—मनुष्य बाल्यावस्था में ऐसा करे जिससे वृद्धावस्था में सुखपूर्वक निवास करे और सम्पूर्ण जीवन में ऐसा करे जिससे मरकर भी सुख प्राप्त हो।

विशेष—जीवन की चार अवस्थाएँ होती हैं—बाल्य, यौवन, प्रौढ़ और वृद्ध। इस सबका कार्य भी बँटा हुआ है। इसलिए मनु ने कहा है—

'प्रथमे नाधीता विद्या द्वितीये नार्जितं धनम्।
तृतीये न तपस्तप्तं चतुर्थे किं करिष्यति॥

अर्थात् बाल्यकाल में पढ़ा नहीं, युवावस्था में धन नहीं कमाया, प्रौढावस्था में तपस्या नहीं की तो वृद्धावस्था में जाकर सारी इन्द्रियाँ शिथिल हो जाने के बाद क्या कर सकता है? अतः अवस्था के अनुसार कार्य करने से सन्तोष तथा सुख प्राप्त होता है।

जीर्णमन्नं प्रशंसन्ति भार्यां च गतयौवनाम्।
शूरं विजितसङ्ग्रामं गतपारं तपस्विनम्॥ ७०॥

शब्दार्थ—जीर्णमन्नम् = पचे हुए अन्न को, प्रशंसन्ति = प्रशंसा करते हैं, च = और, गतयौवनाम् = युवावस्था बीत जाने पर, भार्याम् = पत्नी की प्रशंसा होती है, विजितसंग्रामम् = युद्ध जीतने के बाद, शूरम् = वीर की प्रशंसा होती है, गतपारम् = तत्त्व जान लेने के बाद, तपस्विनम् = तपस्वी, संन्यासी की प्रशंसा होती है।

हिन्दी—पचे हुए अन्न की, युवावस्था बीतने के बाद स्त्री की, युद्ध जीतने वाले वीर की एवं तत्त्वज्ञान जान लेने के बाद तपस्वी की प्रशंसा होती है।

धनेनाधर्मलब्धेन यच्छिद्रमपिधीयते।
असंवृतं तद् भवति ततोऽन्यदवदीर्यते॥ ७१॥

शब्दार्थ—अधर्मलब्धेन = अन्याय से प्राप्त किये गये, धनेन = धन से, यत् छिद्रम् = जो छिद्र, अपिधीयते = ढका जाता है, तत् = वह, असंवृतम् = बिनां ढका हुआ, भवति = होता है, ततः = उसके बाद, अन्यत् = अन्यत्र, अवदीर्यते = अवदीर्ण हो जाता है।

हिन्दी—अन्याय से प्राप्त धन से जो छिद्र ढका जाता है वह बिना ढके हुए के समान है, उससे अलग भी दिखाई देने लगता है।

विशेष—पाप का घड़ा भरता है और फूटता है। पाप कभी भी छिपाये नहीं छिपता है। इसलिए कहा गया है—

'अधर्मेणेधते तावद्दशवर्षाणि तिष्ठति।
प्राप्ते त्वेकादशे वर्षे समूलश्च विनश्यति'॥

अर्थात् अधर्म से दश वर्ष तक बढ़ता है और ग्यारहवाँ वर्ष प्राप्त होने पर समूल नष्ट हो जाता है।

इस श्लोक का भाव प्रासङ्गिक भी है। विदुर धृतराष्ट्र से कहना चाहता है कि तुम्हारे पुत्र दुर्योधन ने अधर्म के सहारे राज्यादि ग्रहण किया है, अतः इसका विनाश संभव है। इसलिए इस मार्ग से विरत रहो।

गुरुरात्मवतां शास्ता शास्ता राजा दुरात्मनाम् ।
अथ प्रच्छन्नपापानां शास्ता वैवस्वतो यमः ॥ ७२ ॥

शब्दार्थ—आत्मवताम् = जितेन्द्रियों का, शास्ता = शासन करने वाला, उपदेश देने वाला, गुरुः = आचार्य होता है, दुरात्मनाम् = दुष्टों का, शास्ता = शासन करने वाला, दण्ड देने वाला, राजा = राजा होता है, अथ = इसके बाद, प्रच्छन्नपापानाम् = छिपाये गये पापों का, शास्ता = शासन करने वाला, वैवस्वतो यमः = सूर्य का पुत्र यमराज है ।

हिन्दी—सज्जनों को मार्गोपदेश करने वाला गुरु है, दुष्टों को शासन करने वाला राजा और प्रच्छन्न पापों का दण्ड देने वाला सूर्यपुत्र यमराज है ।

ऋषीणां च नदीनां च कुलानां च महात्मनाम् ।
प्रभवो नाधिगन्तव्यः स्त्रीणां दुश्चरितस्य च ॥ ७३ ॥

शब्दार्थ—ऋषीणाम् = ऋषियों का, च = और, नदीनाम् = नदियों का, च = और, महात्मनाम् = महात्माओं का, कुलानाञ्च = कुलों का, प्रभवः = उत्पत्तिस्थान न + अधिगन्तव्यः = नहीं जानना चाहिए, च=और, स्त्रीणाम्=स्त्रियों का, दुश्चरितस्य = दुराचरण करने वाले का मूल नहीं खोजा जाता है ।

हिन्दी—ऋषियों, नदियों और महात्माओं के कुलों का तथा स्त्रियों एवं दुश्चरित्रों का मूल नहीं खोजना चाहिए ।

विशेष—ऋषियों का मूल खोजना उचित नहीं है। क्योंकि प्रारम्भ में उनका अच्छा चरित नहीं भी रहने पर बाद के उज्ज्वल चरित से लाभ लेना चाहिए। … प्रारम्भ के डकैत रत्नाकर वाल्मीकि हो गये । नदी का भी इसी प्रकार समझना चाहिए। एक फीट गहरी और डेढ़ फीट चौड़ी प्रारम्भ की गङ्गा नदी मैदान में विस्तृत रूप धारण कर लेती है। स्त्री पुरुषवर्त्तिनी होती है, अतः उसके चरित्र का अन्वेषण करने से कोई लाभ नहीं है तथा 'स्त्रीरत्नं दुष्कुलादपि' से भी ग्रहण कर लेना चाहिए ।

द्विजातिपूजाभिरतो दाता ज्ञातिषु चार्जवी ।
क्षत्रियः शीलभाग् राजंश्चिरं पालयते महीम् ॥ ७४ ॥

शब्दार्थ—राजन् = हे राजन् ! द्विजातिपूजाभिरतः = ब्राह्मणों का सत्कार करने वाला, दाता = दानी, ज्ञातिषु = सम्बन्धियों के प्रति, आर्जवी = सरल व्यवहार करने वाला, शीलभाक् क्षत्रियः = अच्छे स्वभाव वाला क्षत्रिय, चिरम् = बहुत काल तक महीम् = पृथ्वी को, पालयते = पालन करता है ।

हिन्दी—हे राजन् ! ब्राह्मणों की पूजा करने वाला, अपने सगे-सम्बन्धियों के साथ सरल व्यवहार रखने वाला और दानी शीलसम्पन्न क्षत्रिय बहुत दिनों तक पृथ्वी का पालन करता है अर्थात् राज्य करता है ।

विशेष—इसका भाव यह है कि दुर्योधन सम्बन्धियों के प्रति कुटिल व्यवहार रखने के कारण बहुत दिनों तक राज्य नहीं कर सकता है।

सुवर्णपुष्पां पृथिवीं चिन्वन्ति पुरुषास्त्रयः।
शूरश्च कृतविद्यश्च यश्च जानाति सेवितुम् ॥ ७५ ॥

शब्दार्थ—सुवर्णपुष्पाम् = सुवर्णमयी, पृथिवीम् = पृथ्वी को, त्रयः पुरुषाः = तीन पुरुष, चिन्वन्ति = भोग करते हैं। शूरः = शूरवीर, कृतविद्यः = विद्वान्, यश्च = और जो, सेवितुम् = सेवा करना, जानाति = जानता है।

हिन्दी—तीन प्रकार के मनुष्य पृथ्वी से सुवर्ण रूपी पुष्प का संचय करते हैं—वीर, विद्वान् और सेवाधर्म को जानने वाला।

विशेष—पाण्डव शूरवीर एवं कृतविद्य हैं, अतः वही राज्याधिकारी है।

बुद्धिश्रेष्ठानि कर्माणि बाहुमध्यानि भारत।
तानि जङ्घाजघन्यानि भारप्रत्यवराणि च ॥ ७६ ॥

शब्दार्थ—भारत = हे भरतकुलोत्पन्न धृतराष्ट्र! बुद्धिश्रेष्ठानि = बुद्धिप्रधान, कर्माणि = कर्म, बाहुमध्यानि = बाहुबलप्रधान, जङ्घाजघन्यानि = जङ्घा के समान छिपाने योग्य, भारप्रत्यवराणि = संकट में डालने वाले, तानि च = ये तीन प्रकार कर्म होते हैं।

हिन्दी—धृतराष्ट्र! बुद्धिप्रधान, बाहुबलप्रधान और जङ्घा के समान ढक कर करने योग्य कर्म—ये तीन प्रकार के कर्म होते हैं। इनमें उत्तम बुद्धिप्रधान, मध्यम बलप्रधान और संकटपूर्ण (गोपनीय) कर्म निन्दनीय होते हैं।

विशेष—दुर्योधनादि के कर्म गोपनीय एवं बलप्रधान हैं। अतः वे नष्ट हो जायेंगे।

दुर्योधनेऽथ शकुनौ मूढे दुःशासने तथा।
कर्णे चैश्वर्यमाधाय कथं त्वं भूतिमिच्छसि ॥ ७७ ॥

शब्दार्थ—दुर्योधने = दुर्योधन पर, अथ = और, शकुनौ = शकुनि पर, तथा = और, मूढे दुःशासने = मूर्ख दुःशासन पर, तथा कर्णे = और कर्ण पर, ऐश्वर्यम् = राज्यादि को, आधाय = रखकर, कथम् = कैसे, त्वम् = तुम, भूतिमिच्छसि = कल्याण चाहते हो?

हिन्दी—हे राजन्! दुर्योधन, शकुनि, मूर्ख दुःशासन और कर्ण पर ऐश्वर्य रखकर तुम कैसे कल्याण चाहते हो? अर्थात् इन लोगों के कर्म अच्छे नहीं हैं।

सर्वैर्गुणैरुपेतास्तु पाण्डवा भरतर्षभ।
पितृवत् त्वयि वर्तन्ते तेषु वर्तस्व पुत्रवत् ॥ ७८ ॥

इति महाभारते उद्योगपर्वणि विदुरनीतिवाक्ये पञ्चत्रिंशोऽध्यायः।

इति विदुरनीतौ तृतीयोऽध्यायः।

शब्दार्थ—भरतर्षभ = हे धृतराष्ट्र ! सर्वैर्गुणैरुपेताः = सभी गुणों से युक्त, पाण्डवा = पाण्डुपुत्र, त्वयि = तुम्हारे प्रति, पितृवत् = पिता के समान, वर्तन्ते = व्यवहार करते हैं, तेषु = उनके प्रति, पुत्रवत् = पुत्र के समान, वर्तस्व = व्यवहार करो।

हिन्दी—हे भरतकुलश्रेष्ठ धृतराष्ट्र ! सभी गुणों से युक्त पाण्डुपुत्र तुम्हारे प्रति पिता के समान व्यवहार करते हैं, अतः पुत्र के समान उनकी रक्षा करो।

विशेष—जो जैसा व्यवहार करता है उसके प्रति वैसा ही व्यवहार करना चाहिए। यही नियम है।

इस प्रकार विदुरनीति में तृतीय अध्याय की हिन्दी समाप्त।

चतुर्थोऽध्यायः

विदुर उवाच—

अत्रैवोदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
आत्रेयस्य च संवादं साध्यानां चेति नः श्रुतम् ॥ १ ॥

शब्दार्थ—अत्रैव = यहाँ पर ही, इमम् = इस, पुरातनम् = प्राचीन, इतिहासम् = इतिहास को, उदाहरन्ति = कहते हैं, आत्रेयस्य = आत्रेय के, साध्यानाम् = साध्यों के, संवादम् = संवाद को, च इति = इस प्रकार, नः = हमारे पूर्वजों के द्वारा, श्रुतम् = सुना गया है ।

हिन्दी—विदुर ने कहा—उक्त प्रसङ्ग में आत्रेय और साध्यों के संवाद रूप पुरातन इतिहास को कहते हैं, जिसे मैंने पूर्वजों से सुना है ।

चरन्तं हंसरूपेण महर्षिं संशितव्रतम् ।
साध्या देवा महाप्राज्ञं पर्यपृच्छन्त वै पुरा ॥ २ ॥

शब्दार्थ—हंसरूपेण = संन्यासी के रूप में, चरन्तम् = भ्रमण करते हुए, संशितव्रतम् = कठोर तपस्या करने वाले, महाप्राज्ञम् = बड़े विद्वान्, महर्षिम् = महर्षि को, साध्याः देवाः = साध्यदेवों ने, पुरा = पहले, वै = निश्चय से, पर्यपृच्छन्त = पूछा ।

हिन्दी—संन्यासी रूप में विचरण करते हुए, कठोर तपस्या करने वाले बुद्धिमान् महर्षि आत्रेय को साध्यदेवों ने पहले पूछा ।

विशेष—इतिहास-पुराणों के द्वारा किसी वस्तु की प्रामाणिकता सिद्ध होती है तथा विषय भी निश्चित हो जाता है। इसलिए नीतिकार ने उदाहरणों के द्वारा समझाने का प्रयास किया है ।

साध्या ऊचुः—

साध्या देवा वयमेते महर्षे दृष्ट्वा भवन्तं न शक्नुमोऽनुमातुम् ।
श्रुतेन धीरो बुद्धिमांस्त्वं मतो नः काव्यां वाचं वक्तुमर्हस्युदाराम् ॥ ३ ॥

शब्दार्थ—महर्षे = हे महर्षे ! वयमेते = ये हम, साध्याः देवाः = साध्य नामक देवगण, भवन्तं दृष्ट्वा = आपको देखकर, श्रुतेन = ज्ञान से, अनुमातुम् = अनुमान लगाने में, न शक्नुमः = समर्थ नहीं है, त्वम् = तुम, नः = हमारे लिए, धीरः बुद्धिमान् = धैर्यशाली विद्वान्, मतः = प्रतीत होते हो, काव्याम् = विद्वानों के योग्य, उदाराम् श्रेष्ठ अर्थ वाली, भाषा, वक्तुमर्हसि = कह सकते हैं ।

हिन्दी—साध्यगण ने कहा—हे महर्षे ! हमलोग साध्यदेवता हैं, आपको देखकर आपके विषय में अनुमान लगाने में समर्थ नहीं है। अपने शास्त्रज्ञान से आप धीर एवं बुद्धिमान् जान पड़ते हैं। आप अपनी सरस एवं उदार वाणी कहने की कृपा करें ।

हंस उवाच—

एतत् कार्यममराः संश्रुतं मे धृतिः शमः सत्यधर्मानुवृत्तिः।
ग्रन्थिं विनीय हृदयस्य सर्वं प्रियाप्रिये चात्मसमं नयीत ॥ ४ ॥

शब्दार्थ—अमराः = हे देवगणो ! एतत् कार्यम् = यह कर्त्तव्य रूप कार्य, मे = मैंने, संश्रुतम् = गुरुजनों से सुना है, धृतिः = धैर्य, शमः = शान्ति, सत्यधर्मानुवृत्तिः = सत्यधर्म का व्यवहार, ग्रन्थिम् = गाँठ को, विनीय = दूर करके, हृदयस्य = हृदय का, सर्वं प्रियाप्रिये = सभी प्रिय और अप्रिय को, च = और, आत्मसमम् = अपनी आत्मा के सदृश, नयीत = प्राप्त कराये।

हिन्दी—हंस ने कहा—हे देवताओ ! मैंने सुना है कि धैर्य तथा मन को वश में करना, सत्य धर्म का पालन करना ही कर्त्तव्य है। हृदय की समस्त गाँठों को खोलकर प्रिय-अप्रिय को अपने समान मानो।

विशेष—सज्जनों के लिए सुख-दुःख, मान-अपमान सब बराबर या आत्मसदृश होता है। इसलिए उन्हें सुख के कारण से सुख और दुःख से दुःख नहीं होता है।

आक्रुश्यमानो नाक्रोशेन्मन्युरेव तितिक्षतः।
आक्रोष्टारं निर्दहति सुकृतं चास्य विन्दति ॥ ५ ॥

शब्दार्थ—आक्रुश्यमानः = भला-बुरा कहने के बाद, न आक्रोशत् = भला-बुरा न कहे, मन्युः = क्रोध, तितिक्षतः एव = सहा हुआ ही, आक्रोष्टारम् = भला-बुरा कहने वाले को, निर्दहति = जला देता है, अस्य = इसके, सुकृतञ्च = और श्रेष्ठ कर्मों को, विन्दति = प्राप्त करता है।

हिन्दी—गाली सुनकर भी स्वयं गाली न दे। क्षमा करने वाले का रोका हुआ क्रोध ही गाली देने वाले को जला देता है तथा उसका पुण्य ले लेता है।

नाक्रोशी स्यान्नावमानी परस्य मित्रद्रोही नोत नीचोपसेवी।
न चाभिमानी न च हीनवृत्तो रूक्षां वाचं रुषतीं वर्जयीत ॥ ६ ॥

शब्दार्थ—परस्य = दूसरे का, न + आक्रोशी = भला-बुरा न करे (गाली न दे), न + अवमानी = अपमान न करे, मित्रद्रोही = मित्र के साथ द्रोह नहीं करने वाला, न + उत = और नहीं, नीचोपसेवी = नीच की सेवा करने वाला, न च = नहीं और, अभिमानी = अभिमान करने वाला, न च = और न, हीनवृत्तः = नीच व्यवहार वाला, रूक्षां वाचम् = कठोर वाणी को, रुषतीम् = कोप उत्पन्न करने वाली, वर्जयीत = छोड़ दे।

हिन्दी—दूसरों की न निन्दा करे, न अपमान। मित्रद्रोह तथा निम्न पुरुषों की सेवा न करे। अभिमानी तथा सदाचारहीन न हो। रूखी तथा क्रोधयुक्त वाणी को छोड़ दे।

मर्माण्यस्थीनि हृदयं तथासून्, रूक्षा वाचो निर्दहन्तीह पुंसाम्।
तस्माद् वाचमुषतीमुग्ररूपां धर्मारामो नित्यशो वर्जयीत ॥ ७ ॥

शब्दार्थ—इह = इस संसार में, मर्माणि = मर्मस्थलों को, अस्थीनि = हड्डियों को, हृदयम् = हृदय को, तथा असून् = और प्राणों को, रूक्षा वाचः = रूखी वाणी, पुंसाम् = पुरुषों को, निर्दहन्ति = जला देती हैं। तस्मात् = इसलिए, उषतीं वाचम् = सूखे वचन को, उग्ररूपाम् = अत्यन्त कठोर, धर्मारामः = धर्म में रमण करने वाले, नित्यशः = नित्यप्रति, वर्जयीत = छोड़ दे।

हिन्दी—कठोर बातें मनुष्य के मर्मस्थान, अस्थि, हृदय तथा प्राणों को जला देती हैं। इसलिए धार्मिक व्यक्ति जलाने वाली रूक्ष बातों को सदा के लिए छोड़ दें।

अरुन्तुदं परुषं रूक्षवाचं वाक्कण्टकैर्वितुदन्तं मनुष्यान्।
विद्यादलक्ष्मीकतमं जनानां मुखे निबद्धां निर्ऋतिं वै वहन्तम्॥ ८॥

शब्दार्थ—अरुन्तुदम् = मर्मस्थानों को पीड़ा देने वाले को, परुषम् = कठोर, रूक्षवाचम् = रूखी वाणी को, वाक्कण्टकैः = वाणी रूपी कांटों से, वितुदन्तम् = कष्ट देने वाले को, मनुष्यान् = मनुष्यों को, विद्वान् = जाने, अलक्ष्मीकृतम् = अत्यन्त बुरे लक्षणों से युक्त, जनानाम् = मनुष्यों के बीच में, नैर्ऋतिम् = मृत्यु को, मुखे निबद्धाम् = मुख में रखी हुई, वै = निश्चय ही, वहन्तम् = धारण करने वाले को, दरिद्र समझे।

हिन्दी—मर्मस्थानों को छेदने वाले, कठोर और रूक्ष वाणी तथा वाक्-बाणों से मनुष्य को दुःख पहुँचाने वाले मनुष्य को अतिदरिद्र समझे अर्थात् वह अपने मुख में दरिद्रता एवं मृत्यु को वहन कर रहा है।

परश्चेदेनमभिविध्येत बाणैर्भृशं सुतीक्ष्णैरनलार्कदीप्तैः।
स विध्यमानोऽप्यतिदह्यमानो विद्यात् कविः सुकृतं मे दधाति॥ ९॥

शब्दार्थ—परश्चेत् = यदि दूसरा, एनम् = इसको, अभिविध्येत = कष्ट पहुँचावे, अनलार्कदीप्तैः = अग्नि और सूर्य के समान जलते हुए, सुतीक्ष्णैः बाणैः = अत्यन्त तीखे बाणों से, भृशम् = अधिक, सः = वह, विध्यमानः + अपि = बींधा जाता हुआ भी, अतिदह्यमानः = अत्यन्त जलता हुआ, कविः = मेधावी, मे = मेरा, सुकृतम् = पुण्य को, दधाति = धारण करा रहा है, विद्यात् = जाने।

हिन्दी—यदि कोई दूसरा इस सज्जन को अग्नि एवं सूर्य के समान जलाने वाले वचन रूपी बाणों से अत्यधिक बींधे तो वह विद्वान् बींधा जाने तथा पीड़ित होने के बाद भी समझे कि यह मेरे पुण्यों को पुष्ट कर रहा है।

यदि सन्तं सेवति यद्यसन्तं तपस्विनं यदि वा स्तेनमेव।
वासो यथा रङ्गवशं प्रयाति तथा स तेषां वशमभ्युपैति॥ १०॥

शब्दार्थ—यदि सन्तम् = यदि श्रेष्ठ पुरुष को, सेवति = सेवन करता है, यदि + असन्तम् = यदि दुष्ट को, तपस्विनम् = तपस्वी को, यदि वा = अथवा यदि, स्तेनम् एव = चोर को ही, यथा वासः = जैसे वस्त्र, रङ्गवशम् = रङ्गों के वश को, प्रयाति = चला जाता है, तथा = उसी प्रकार, सः = वह, तेषां वशम् = उसके वश को, अभ्युपैति = प्राप्त होता है।

हिन्दी--यदि कोई सज्जन असज्जन तपस्वी अथवा चोर की सेवा करता है, तो वह उसके वश में हो जाता है। जैसे वस्त्र जिस रंग में रंगा जाय वैसा ही वह हो जाता है।

अतिवादं न प्रवदेन्न वादयेद् यो नाहतः प्रतिहन्यान्न घातयेत्।
हन्तुं च यो नेच्छति पातकं वै तस्मै देवाः स्पृहयन्त्यागताय ॥ ११ ॥

शब्दार्थ—अतिवादम्=निन्दा को, न प्रवदेत्=न बोले, न वादयेत्=न बोलावे, न+अनाहतः=न हिंसित हुआ, प्रतिहन्यात्=हिंसा करे, न घातयेत्=न हिंसा करवाये, यः=जो, पापकम्=पापी को, हन्तुम्=मारने को, न इच्छति=नहीं चाहता है, च=और, वै=निश्चय से, तस्मै देवाः=उसके लिए देवता लोग, आगताय=आने के लिए, स्पृहयन्ति=स्पृहा करते हैं।

हिन्दी--जो मनुष्य स्वयं बुरी बात न कहता है और न कहलवाता है; जो बिना आहत हुए न किसी को मारता है न मरवाता है; जो मार खाकर भी पापियों को मारना नहीं चाहता, देवता भी उसके आगमन की प्रतीक्षा करते रहते हैं।

अव्याहृतं व्याहृताच्छ्रेय आहुः सत्यं वदेद् व्याहृतं यद् द्वितीयम्।
प्रियं वदेद् व्याहृतं तत् तृतीयं धर्मं वदेद् व्याहृतं तच्चतुर्थम् ॥ १२ ॥

शब्दार्थ—अव्याहृतम्=न बोलना, व्याहृतात्=बोलने से, श्रेयः आहुः=अच्छा कहते हैं, सत्यं वदेत्=सत्य बोले, तत् व्याहृतम्=वह बोलना, द्वितीयम्=दूसरा है, प्रियं वदेत्=प्रिय वचन बोले, तत् व्याहृतम्=वह कहना, तृतीयम्=तीसरा है अर्थात् श्रेष्ठतर है, धर्मं वदेत्=धर्मानुकूल बोले, तत् व्याहृतम्=वह बोलना, चतुर्थम्=चौथा है अर्थात् श्रेष्ठतम है।

हिन्दी--बोलने से न बोलना श्रेयस्कर कहा गया है, सत्य बोलना वाणी की दूसरी विशेषता है, सत्य प्रिय बोला जाय तो यह वाणी की तीसरी विशेषता है तथा प्रिय सत्य धर्मानुकूल हो तो वह वाणी की चतुर्थ विशेषता है अर्थात् श्रेष्ठ, श्रेष्ठतर एवं श्रेष्ठतम क्रमशः समझना चाहिए।

विशेष—इसी के सम्बन्ध में कहा गया है कि—'सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात् न ब्रूयात् सत्यमप्रियम्। सत्यं च नानृतं ब्रूयादेष धर्मः सनातनः'॥ अर्थात् सत्य बोलो, परन्तु वह सत्य प्रिय बोलो। यदि सत्य अप्रिय हो तो उसे मत बोलो। सत्य होते हुए भी यदि वह झूठ है तो उसे मत बोलो। यही सनातन अर्थात् परम्पराप्राप्त वास्तविक धर्म है।

यादृशैः सन्निविशते यादृशांश्चोपसेवते।
यादृगिच्छेच्च भवितुं तादृग् भवति पूरुषः ॥ १३ ॥

शब्दार्थ—यादृशैः=जैसों के साथ, सन्निविशते=बैठता है, यादृशान्च=और जैसों का, सेवते=संग करता है, भवितुम्=होने की, यादृक्=जैसी, इच्छेत्=इच्छा करे, तादृक्=वैसा, पूरुषः=पुरुष, भवति=होता है।

हिन्दी—मनुष्य जैसे व्यक्तियों के संग में बैठता है, जैसों का संग करता है और जैसा बनना चाहता है वैसा ही बन जाता है।

विशेष—'संसर्गजा दोषगुणाः भवन्ति' अर्थात् संग से दोषगुण होते हैं, साथ ही मनुष्य वैसा बनने का प्रयास भी करता है। यदि भाग्य के आधार पर जीवन को छोड़ दे और कर्म न करें, तो लौकिक और व्यावहारिक परम्परा नष्ट हो जायेगी। इसलिए गीता में श्रीकृष्ण ने फल की इच्छा के बिना ही अहर्निश कर्म करने का उपदेश दिया है।

यतो यतो निवर्तते ततस्ततो विमुच्यते।
निवर्तनाद्धि सर्वतो न वेत्ति दुःखमण्वपि ॥ १४ ॥

शब्दार्थ—यतः यतः = जहाँ-जहाँ से, निवर्तते = निवृत्त होता है, ततः ततः = उस-उससे, विमुच्यते = छूट जाता है, सर्वतः = सब ओर से, हि = निश्चय ही, निवर्तनात् = निवृत्त होने से, सर्वतः = सब ओर से, न वेत्ति = नहीं जानता है, अणु + अपि = थोड़ा भी, दुःखम् = दुःख को।

हिन्दी—जब मनुष्य जिस-जिस विषय से निवृत्त होता है, उस-उस के सारे विषय छूट जाते हैं। विषयों के छूट जाने से थोड़ा भी दुःख नहीं होता है।

विशेष—संसार का यह नियम है कि अन्त में विषय छूट जाते हैं। अतः यदि विषय मनुष्य को छोड़ता है तो उसे कष्ट होना स्वाभाविक है। इसलिए ज्ञानवान् मनुष्य विषय को ही छोड़ता है, जिससे उसे थोड़ा भी कष्ट नहीं होता है।

न जीयते चानुजिगीषतेऽन्यान् न वैरकृच्चाप्रतिघातकश्च।
निन्दाप्रशंसासु तमस्वभावो न शोचते हृष्यति नैव चायम् ॥ १५ ॥

शब्दार्थ—न जीयते = न पराजित होता है, च + अनुजिगीषते = और पराजित करने की इच्छा करता है, न वैरकृत् = वैर करने वाला, च = और, अप्रतिघातकः = हिंसा न करने वाला, च = और, निन्दाप्रशंसासु = निन्दा और प्रशंसा में, समस्वभावः = समान स्थिति वाला, न शोचते = न शोक करता है, नैव चायं हृष्यति = न ही यह प्रसन्न होता है।

हिन्दी—जो मनुष्य दूसरों से न पराजित होंता है और न पराजित करता है, न वैर करता है और न किसी को मारता है, निन्दा और प्रशंसा में समान रहता है; वह दोनों स्थितियों में दुःख-सुख का अनुभव नहीं करता है।

विशेष—इस स्थिति में पहुँचकर मनुष्य परमहंस बन जाता है। उसे सुख-दुःख से कोई सम्बन्ध नहीं होने के कारण वह द्वन्द्वातीत या परम निर्वाणावस्था है। इस स्थिति का वर्णन करते समय 'अहं ब्रह्मास्मि' 'तत्त्वमसि' का ज्ञान होता है। सांसारिकों में यह अवस्था संभव नहीं।

भावमिच्छति सर्वस्य नाभावे कुरुते मनः।
सत्यवादी मृदुर्दान्तो यः स उत्तमपूरुषः ॥ १६ ॥

शब्दार्थ—सर्वस्य = सबकी, भावमिच्छति = सत्ता चाहता है, अभावे = अभाव में, मनः = मन को, न कुरुते = नहीं करता है। सत्यवादी = सत्य बोलने वाला, मृदुः

=कोमल स्वभाव वाला, दान्तः=जितेन्द्रिय, यः=जो, सः=वह, उत्तमपूरुषः=उत्तम पुरुष होता है।

हिन्दी—जो मनुष्य सभी प्राणियों की यथास्थिति चाहता है, किसी का विनाश नहीं चाहता है, सत्यवादी कोमल स्वभाव वाला जितेन्द्रिय वह उत्तम पुरुष कहलाता है।

नानर्थकं सान्त्वयति प्रतिज्ञाय ददाति च।
रन्ध्रं परस्य जानाति यः सः मध्यमपूरुषः॥ १७॥

शब्दार्थ—न=अनर्थकम्=न बिना प्रयोजन, सान्त्वयति=सान्त्वना देता है, च=और, प्रतिज्ञाय=प्रतिज्ञा करके, ददाति=देता है, रन्ध्रम्=छिद्र को, परस्य=दूसरे के, जानाति=जानता है, यः=जो, सः=वह, मध्यमपूरुषः=मध्यम पुरुष होता है।

हिन्दी—जो मिथ्या सान्त्वना नहीं देता, प्रतिज्ञा करके देता है तथा जो दूसरे के दोषों को जानता है, वह मध्यम पुरुष है।

दुःशासनस्तूपहतोऽभिशस्तो नावर्तते मन्युवशात् कृतघ्नः।
न कस्यचिन्मित्रमथो दुरात्मा कलाश्चैता अधमस्येह पुंसः॥ १८॥

शब्दार्थ—दुःशासनः+तु=दुःशासन तो, उपहतः=मार खाया हुआ, अभिशस्तः=सभी प्रकार से आहत, मन्युवशात्=क्रोध के कारण, न+आवर्तते=नहीं लौटता है, कृतघ्नः=कृतघ्न, न कस्यचित्=न किसी का, मित्रम्=मित्र होता है, एताः कलाः=ये लक्षण, दुरात्मा अधमस्य=पापी नीच का, इह पुंसः=यहाँ के पुरुष के माने जाते हैं।

हिन्दी—दुःशासन गन्धर्वों द्वारा पीटा गया, शस्त्रों से आहत हुआ तथापि कृतंघ्नता के कारण दुष्टता को मन से नहीं हटाता। वह दुष्टात्मा किसी का मित्र नहीं हो सकता। ऐसे चित्तवृत्तिवाले लोग अधम कहलाते हैं।

विशेष—एक समय वनवास के समय घोषयात्रा करके दुर्योधन ने युधिष्ठिरादि को चिढ़ाने का प्रयास किया। परन्तु बीच में गन्धर्वों ने अपने निवास के नजदीक आने के कारण उस पर आक्रमण कर दिया तथा अस्त्रादि के द्वारा यात्रा के सभी लोगों को पीटा। इस बात को जानने के बाद युधिष्ठिर ने अपने भाइयों से गन्धर्वों पर आक्रमण करवाकर दुर्योधनादि को छुड़ाया। उस समय का युधिष्ठिर का कथन बड़ा ही महत्त्वपूर्ण है—

'वयं पञ्चाः वयं पञ्चाः वयं पञ्चाः शतञ्च ते।
अन्येषाञ्च विरोधे तु वयं पञ्चशतोत्तरम्'॥

अर्थात् हमलोग केवल पाँच भाई हैं और दुर्योधन सौ भाई, लेकिन दूसरे के साथ विरोध होने पर हम एक सौ पाँच भाई हैं। आपस मे हम भिन्न हैं, लेकिन दूसरों के लिए एक हैं। कैसा मार्मिक कथन है। कोई नीतिनिष्णात ही समझ सकता है।

न श्रद्दधाति कल्याणं परेभ्योऽप्यात्मशङ्कितः।
निराकरोति मित्राणि यो वै सोऽधमपूरुषः ॥ १९ ॥

शब्दार्थ—आत्मशङ्कितः=स्वभाव से शङ्का रखने के कारण, परेभ्यः अपि=दूसरों से भी, कल्याणम्=कल्याण की, न श्रद्दधाति=श्रद्धा नहीं रखता है, यः=जो, वै=निश्चय ही, मित्राणि=मित्रों को, निराकरोति=परित्याग करता है, सः=वह, अधमपूरुषः=वह नीच पुरुष होता है।

हिन्दी—जो मनुष्य उत्तम कार्यों एवं करने काले मनुष्यों में विश्वास नहीं करता है, स्वभाव से शङ्काकुल रहने के कारण किसी पर भी विश्वास नहीं करता है, मित्रों को भी दूर करता है, वह अधम पुरुष कहलाता है।

विशेष—अधम पुरुष घात-प्रतिघात में लगा रहता है। उसके अतिरिक्त शुभकार्यों एवं सज्जनों को वह दूर से ही नमस्कार करता है। ऐसे मनुष्यों को अधमपुरुष समझना चाहिए।

उत्तमानेव सेवेत प्राप्तकाले तु मध्यमान्।
अधमांस्तु न सेवेत य इच्छेद् भूतिमात्मनः ॥ २० ॥

शब्दार्थ—उत्तमान् एव=उत्तम पुरुषों को ही, सेवेत=सेवन करे, तु=किन्तु, प्राप्तकाले=समय पड़ने पर, मध्यमान्=मध्यम की भी सेवा करे, अधमान्=नीचों को, तु=किन्तु, न सेवेत=सेवा न करे, यः=जो, आत्मनः=अपने लिए, भूतिम् इच्छेत्=कल्याण करना चाहे।

हिन्दी—अपना कल्याण चाहने वाला मनुष्य उत्तम मनुष्यों का ही सेवन करे। किसी कार्य-विशेष के आने पर मध्यम की भी सेवा कर ले, किन्तु अधम की सेवा कभी भी न करे।

विशेष—नीच के सेवन से सदा अकल्याण ही होता है, उससे क्षणिक लाभ के कारण पार्यन्तिक नुकसान ही संभव है। इसलिए नीच का संग कभी भी नहीं करना चाहिए।

प्राप्नोति वै वित्तमसद्बलेन नित्योत्त्थानात् प्रज्ञया पौरुषेण।
न त्वेव सम्यग् लभते प्रशंसां न वृत्तमाप्नोति महाकुलानाम् ॥ २१ ॥

शब्दार्थ—असद्बलेन=बुरे उपायों से, वित्तम्=धन को, वै=निश्चय ही, प्राप्नोति=प्राप्त करता है, नित्योत्त्थानात्=निरन्तर उद्योग करके, प्रज्ञया पौरुषेण=बुद्धि और पुरुषार्थ से प्राप्त करता है, सम्यग् प्रशंसाम्=अच्छी प्रकार से प्रशंसा को, न तु एव लभते=नहीं प्राप्त करता है, महाकुलानाम्=श्रेष्ठकुलों के, वृत्तम्=व्यवहार को, न आप्नोति=नहीं प्राप्त होता है।

हिन्दी—निन्दित उपायों से तथा निरन्तर उद्योग एवं बुद्धि के बल से प्राप्त धन से महाकुलों के अनुरूप प्रशंसा को प्राप्त नहीं करता है। अर्थात् जैसा धन वैसा मन, जैसा मन वैसा कर्म हो जाता है, जिससे सर्वत्र निन्दा होती है।

धृतराष्ट्र उवाच—

महाकुलेभ्यः स्पृहयन्ति देवा धर्मार्थनित्याश्च बहुश्रुताश्च।
पृच्छामि त्वां विदुर प्रश्नमेतं भवन्ति वै कानि महाकुलानि ॥ २२ ॥

शब्दार्थ—विदुर = हे विदुर ! महाकुलेभ्यः = महाकुलों के लिए, देवाः = देवता लोग, स्पृहयन्ति = स्पृहा करते हैं, च = और, धर्मार्थनित्याः = धर्म और अर्थ में लगे हुए, बहुश्रुताः = बहु ज्ञानी होते हैं, एतं प्रश्नम् = इस प्रश्न को, त्वाम् = तुमको, पृच्छामि = पूछता हूँ, वै = निश्चय ही, कानि = कौन, महाकुलानि भवन्ति = महान् कुल होते हैं।

हिन्दी—धृतराष्ट्र ने कहा—हे विदुर ! महान् कुल के लिए देवता लोग भी स्पृहा करते हैं। वे धर्म और अर्थ में निष्ठ महान् ज्ञानी होते हैं, इसलिए इस प्रश्न को पूछ रहा हूँ कि महाकुल कौन होते हैं ?

विदुर उवाच—

तमो दमो ब्रह्मवित्तं वितानाः पुण्या विवाहाः सततान्नदानम्।
येष्वेवैते सप्त गुणा वसन्ति सम्यग्वृत्तास्तानि महाकुलानि ॥ २३ ॥

शब्दार्थ—तपः = तप, दमः = इन्द्रियों का दमन, ब्रह्मवित्तम् = ब्राह्मणों का वेदादि अध्ययन रूपी धन, वितानाः = यज्ञ, पुण्याः विवाहाः = उत्तम विवाह, सततान्नदानम् = निरन्तर अन्नदान देना, येषु + एव + एते = जिनमें ये ही, सप्तगुणाः = सात गुण, सम्यग्वृत्ताः = अच्छे आचार वाले, वसन्ति = वास करते हैं, तानि महाकुलानि = वे महाकुल होते हैं।

हिन्दी—विदुर ने कहा—जिसमें तपस्या, इन्द्रियों की जय, ब्राह्मणों के वेदादि अध्ययनरूपी धन, यज्ञादि, उत्तम विवाह, निरन्तर अन्नदान एवं उत्तम आचार युक्त—ये सात गुण सदा जहाँ रहते हैं, उसे महाकुल कहते हैं।

विशेष—भारतीय संस्कृति में ब्राह्म, दैव, आर्ष, प्राजापत्य, आसुर, गान्धर्व, राक्षस और पैशाच नाम के विवाह के आठ भेद माने गये हैं। इसमें पहले के चार उत्तम एवं बाद के चार अधम माने गये हैं।

विवाह एक सामाजिक बन्धन है। इसे स्वीकार करने से समाज में मात्स्यन्याय नहीं फैलता तथा सन्तान-परम्परा व्यवस्थित चलती है। मनुष्य कभी काम-क्रोधादि के वशीभूत होकर गलत व्यवहार भी कर लेता है, परन्तु शास्त्रकारों ने उसको यथावत् मान्यता दी है और दशविध विवाहों के भेद बताकर उसके अन्दर समाहित करने की प्रक्रिया माना है।

येषां हि वृत्तं व्यथते न योनिश्चित्तप्रसादेन चरन्ति धर्मम्।
ये कीर्त्तिमिच्छन्ति कुले विशिष्टां त्यक्तानृतास्तानि महाकुलानि ॥ २४ ॥

शब्दार्थ—येषां वृत्तम् = जिसके व्यवहार से, योनिः = जन्मकारण माता-पिता, न व्यथते = दुःखी नहीं होते हैं, चित्तप्रसादेन = मन की प्रसन्नता के कारण, धर्मं चरन्ति = धर्म का आचरण करते हैं, ये = जो, विशिष्टां कीर्तिम् = विशेष कीर्त्ति को, कुले +

इच्छन्ति = कुल में इच्छा करते हैं, त्यक्तानृता: = झूठ को छोड़ने वाले, तानि महा-कुलानि = वे महाकुल माने जाते हैं।

हिन्दी—जिसके व्यवहार से माता-पिता को कष्ट नहीं होता, मन की प्रसन्नता के लिए धर्माचरण करते हैं, जो कुल में विशिष्ट कीर्ति की इच्छा करते हैं, असद् व्यवहार नहीं करते, वे महाकुल माने जाते हैं।

विशेष—जिसके उत्पन्न होने से जाति और वंश की उन्नति न हो, वह तो केवल माता के यौवननाशक ही पुत्र माने जाते हैं। अत: पुत्र को अपने कर्मों के द्वारा माता-पिता के यश को फैलाने वाला होना चाहिए। 'योनि: न व्यथते' का अर्थ यह भी हो सकता है कि जिसकी योनि माता-पिता दूषित नहीं हैं अर्थात् माता-पिता सामाजिक नियमानुसार सम्बद्ध होकर प्रजोत्पादन करते हैं, काम के वशीभूत होकर सामाजिक नियमों को भंग नहीं करते। पूर्व के श्लोकों के अनुसार विवाह को महाकुल के लक्षण में माना गया है। इसमें 'योनि: न व्यथते' के द्वारा अधम विवाहों का त्याग करना अभिप्रेत है।

अनिज्यया कुविवाहैर्वेदस्योत्सादनेन च।
कुलान्यकुलतां यान्ति धर्मस्यातिक्रमेण च॥ २५॥

शब्दार्थ—अनिज्यया = यज्ञ न करने से, कुविवाहै: = निन्दित विवाहों से, वेदस्य + उत्सादनेन = वेदानुमोदित व्यवहार को छोड़ देने से, च = और, कुलानि = कुल, धर्मस्य + अतिक्रमेण = धर्म के अतिक्रमण करने से, अकुलतां यान्ति = नीच कुल को प्राप्त होते हैं।

हिन्दी—यज्ञों को नहीं करने से, वेदानुकूल आचरण नहीं करने से तथा धर्म की मर्यादा छोड़ देने से उत्तम कुल भी नीच कुल को प्राप्त हो जाते हैं।

विशेष—पूर्व के श्लोक में महाकुल के लक्षण गिनाये गये हैं। प्रस्तुत श्लोक में महाकुल भी दर्शाये गये कारणों से नीच कुल बन जाता है, यह बतलाया गया है।

देवद्रव्यविनाशेन ब्रह्मस्वहरणेन च।
कुलान्यकुलतां यान्ति ब्राह्मणातिक्रमेण च॥ २६॥

शब्दार्थ—देवद्रव्यविनाशेन = देवता के निमित्त रखे गये धनों के नाश से, ब्रह्म-स्वहरणेन = ब्राह्मणों के धनों एवं वृत्तियों के हरण करने से, ब्राह्मणातिक्रमेण = ब्राह्मणों का अनादर करने से, कुलानि = कुल, अकुलतां यान्ति = नीच कुल को प्राप्त हो जाते हैं।

हिन्दी—देवताओं एवं ब्राह्मणों के निमित्त धन के अपहरण करने से तथा उनका अनादर करने से उत्तम कुल नीच कुल को प्राप्त हो जाते हैं।

विशेष—सार्वजनिक तथा उत्तम कार्यों के लिए रखे गये धनों से कभी उन्नति नहीं होती। साथ ही उसका विपरीत फल भी अवश्य मिलता है। अत: उसका प्रभाव कुलों तथा सन्तानों पर पड़ता है, जिससे महाकुल भी नीच कुल बन जाते हैं।

ब्राह्मणानां परिभवात् परिवादाच्च भारत।
कुलान्यकुलतां यान्ति न्यासापहरणेन च॥ २७॥

शब्दार्थ—भारत=हे भरतवंशीय धृतराष्ट्र! ब्राह्मणानाम्=ब्राह्मणों के, परिभवात्=अनादर करने से, परिवादात्=निन्दा करने से, न्यासापहरणेन=न्यास को अपहरण करने से, कुलानि अकुलताम्=कुल अकुलता को, यान्ति=प्राप्त होते हैं।

हिन्दी—हे धृतराष्ट्र! ब्राह्मणों की हिंसा एवं निन्दा करने से तथा अमानत या न्यास वस्तु के अपहरण करने से उत्तम कुल भी नीच कुल को प्राप्त हो जाते हैं।

विशेष—'दुःखं न्यासस्य रक्षणम्' अर्थात् न्यास=अमानत की रक्षा करने में दुःख होता है। परन्तु वीरव्रती इस कार्य का सम्पादन अवश्य करते हैं। देवता, द्विज एवं ब्राह्मण की वृत्ति को अपहरण करने वाला कभी उन्नति को प्राप्त नहीं होता है। अन्त में उसे इसका फल भोगना ही पड़ता है।

कुलानि समुपेतानि गोभिः पुरुषतोऽर्थतः।
कुलसंख्यां न गच्छन्ति यानि हीनानि वृत्ततः॥ २८॥

शब्दार्थ—कुलानि=कुल, गोभिः=गौवों से, पुरुषतः=पुरुषों से, अर्थतः=धन-धान्य से, समुपेतानि=युक्त रहते हुए भी, कुलसंख्याम्=कुल की श्रेष्ठता को, न गच्छन्ति=नहीं प्राप्त होते हैं। यानि=जो, हीनानि वृत्तयः=हीन आचार होते हैं।

हिन्दी—गौवों, पुरुषों और धन-धान्यों से युक्त भी कुल बड़प्पन को प्राप्त नहीं होते हैं, यदि उनके आचार हीन हैं।

वृत्ततस्त्वविहीनानि कुलान्यल्पधनान्यपि।
कुलसंख्यां च गच्छन्ति कर्षन्ति च महद् यशः॥ २९॥

शब्दार्थ—वृत्ततः=आचार से, तु=किन्तु, अविहीनानि=संयुक्त, अल्पधनानि अपि कुलानि=थोड़े धन वाले भी कुल, कुलसंख्याम्=कुल की गणना को, च गच्छन्ति=और प्राप्त होते हैं, महद् यशः=महान् यश को, च=और, कर्षन्ति=प्राप्त करते हैं।

हिन्दी—जो कुल अल्प धन वाले हैं, परन्तु आचार-व्यवहार से सम्पन्न हैं उनकी श्रेष्ठ कुलों में गणना होती है और महान् यश को प्राप्त होते हैं।

वृत्तं यत्नेन संरक्षेद् वित्तमेति च याति च।
अक्षीणो वित्ततः क्षीणो वृत्ततस्तु हतो हतः॥ ३०॥

शब्दार्थ—वृत्तम्=आचार-व्यवहार को, यत्नेन संरक्षेत्=प्रयत्नपूर्वक रक्षा करना चाहिए, वित्तम् एति याति च=धन आता और जाता है, वित्ततः क्षीणः=धन से रहित, अक्षीणः=सुरक्षित रहता है, तु=तो, वृत्ततः=आचार-व्यवहार से हतो हतः=रहित हुआ व्यक्ति नष्ट हो जाता है।

हिन्दी—श्रेष्ठ कुल के लिए आचार-व्यवहार की श्रेष्ठता ही श्रेष्ठता है, धन से रहित नहीं। इसलिए आचरण या चरित्र की रक्षा करनी चाहिए। जिसका चरित्र अच्छा नहीं है वह नष्ट हो जाता है।

विशेष—'आचारहीनं न पुनन्ति वेदा:' अर्थात् आचार-व्यवहार से हीन व्यक्ति को वेद भी पवित्र नहीं कर सकते हैं। इसलिए एक कहावत प्रसिद्ध है—धन नष्ट हुआ, कुछ नष्ट हुआ; शरीर नष्ट हुआ, बहुत कुछ नष्ट हुआ तथा चरित्र नष्ट हुआ, सब कुछ नष्ट हो गया।

गोभिः पशुभिरश्वैश्च कृष्या च सुसमृद्धया।
कुलानि न प्ररोहन्ति यानि हीनानि वृत्ततः॥ ३१॥

शब्दार्थ—गोभिः=गौवों से, पशुभिः=भैंसादि पशुओं के द्वारा, अश्वैः=घोड़ों से, कृष्या=खेती के द्वारा, सुसमृद्धया=उत्तम से, कुलानि=कुल, न प्ररोहन्ति=नहीं बढ़ते हैं, यानि हीनानि वृत्ततः=जो आचार से हीन होते हैं।

हिन्दी—गौ, घोड़े, भेड़ तथा भैंसादि पशुओं की अधिकता से और खेती से सम्पन्न होते हुए भी कुल नहीं बढ़ते हैं, जो आचार से हीन होते हैं।

विशेष—गौ की महत्ता सभी पशुओं से अधिक है, इसलिए गौ को अन्य पशुओं से अलग दिखाया गया है। कहीं इसका अर्थ विद्या भी है, लेकिन विद्या के साथ कोई सम्बन्ध नहीं बनता है, क्योंकि विद्या उच्च वंश के साथ हीन वंशों में भी चली जाती है।

मा नः कुले वैरकृत् कश्चिदस्तु राजाऽमात्यो मा परस्वापहारी।
मित्रद्रोही नैकृतिकोऽनृती वा पूर्वाशी वा पितृदेवातिथिभ्यः॥ ३२॥

शब्दार्थ—नः कुले=हमारे कुल में, वैरकृत्=वैर करने वाला, मा कश्चिद् अस्तु =कोई न हो, राजा+अमात्यः=राजा और मन्त्री, मा परस्वापहारी=दूसरे के धन हरण करने वाला न हो, मित्रद्रोही=मित्र के साथ वैर करने वाला, नैकृतिकः=कपट करने वाला, अनृती=झूठ बोलने वाला, वा=अथवा, पितृदेवता+अतिथिभ्यः =पितरो, देवताओं एवं अतिथियों से, पूर्वाशी=पहले भोजन करने वाला न हो।

हिन्दी—हमारे वंश में कोई शत्रुता करने वाला न हो, राजा या मन्त्री दूसरे के धन का हरण करने वाला न हो। कोई मित्र से वैर रखने वाला, कपट व्यवहार करने वाला, झूठ बोलने वाला और पितरों, देवताओं एवं अतिथियों से पूर्व भोजन करने वाला न हो।

विशेष—एक गृहस्थ का प्रतिदिन का यह कार्य है कि देवताओं और पितरों के लिए हवन और तर्पण करे। उसके घर आये हुए अतिथियों या अभ्यागतों को भोजन कराकर स्वयं भोजन करे। इस नियम का सदा पालन करना चाहिए। एक सद्गृहस्थ यह कामना करता है कि मेरे कुल में इस नियम का उल्लङ्घन करने वाला न हो। वही उत्तम कुल वाला होता है।

यश्च नो ब्राह्मणान् हन्याद् यश्च नो ब्राह्मणान् द्विषेत्।
न नः स समितिं गच्छेद् यश्च नो निर्वपेत् कृषिम्॥ ३३॥

शब्दार्थ—यः=जो, नः=हमारे कुल में, ब्राह्मणान् हन्यात्=ब्राह्मणों को मारे,

यः च = और जो, नः = हमारे कुल में, ब्राह्मणान् द्विषेत् = ब्राह्मणों से द्वेष करे, स: = वह नहीं, नः = हमारी, समितिम् = सभा को, न गच्छेत् = न जाय, यः च = और जो, नः = हमारी, कृषिम् = खेती को, निर्वपेत् = नष्ट करे।

हिन्दी—जो मनुष्य ब्राह्मणों की हिंसा करे अथवा ब्राह्मणों से द्वेष करे और हमारी खेती को काट ले तथा सभा में न जाय, ऐसा हमारे कुल में न हो।

विशेष—'न नः सः' के स्थान में 'न तस्य' पाठान्तर है। उस अवस्था में अर्थ होगा—उसकी सभा को हम प्राप्त न हों, हम ऐसे दुष्टों से दूर रहें। 'यश्च नो निर्वपेत् पितॄन्' इसका चतुर्थ पांठ में पाठान्तर है। उसका अर्थ होगा—जो पितरों को अन्न-वस्त्र न दें।

तृणानि भूमिरुदकं वाक् चतुर्थी च सूनृता।
सतामेतानि गेहेषु नोच्छिद्यन्ते कदाचन ॥ ३४ ॥

शब्दार्थ—तृणानि = अन्नादि, भूमिः = स्थान, उदकम् = जल, वाक् चतुर्थी = चौथी वाणी, च = और, सूनृता = प्रिय एवं सत्य, सतां गेहेषु = सज्जनों के घर में एतानि = ये, कदाचन = कभी भी, न + उच्छिद्यन्ते = नहीं नष्ट होते हैं।

हिन्दी—सज्जनों के घर में अन्न, जल, भूमि और प्रिय सत्यवचन कभी भी समाप्त नहीं होते हैं। अर्थात् अतिथियों के लिए ये सदा उपलब्ध होते हैं, क्योंकि वे स्वयं भूखे रहकर भी अतिथियों की सेवा करते हैं।

विशेष—जो मनुष्य अतिथियों की सेवा सच्चे मन से करते हैं, उनके घर में किसी वस्तु की कमी नहीं होती। उनके सारे कार्य स्वतः पूर्ण हो जाते हैं। इसलिए येन केन प्रकारेण दान देने के लिए मन बनाना चाहिए। इसलिए तैत्तिरीय उपनिषद् में देने की महत्ता बताते हुए कहा गया है कि—'श्रद्धया देयम्, अश्रद्धया देयम्, भिया देयम्, ह्रिया देयम्, संविदा देयम्'। अर्थात्—श्रद्धा, अश्रद्धा, भय, लज्जा एवं वचन निभाने के लिए दान देना चाहिए। इसलिए कहा गया है कि 'शतहस्त समाहर सहस्रहस्त सं किर'॥ अर्थात् सौ हाथों से संग्रह करो और हजार हाथों से दान करो। अभिप्राय यह है कि यथाशक्ति देना चाहिए। इसमें संकोच नहीं करना चाहिए।

श्रद्धया परया राजन्नुपनीतानि सत्कृतिम्।
प्रवृत्तानि महाप्राज्ञ धर्मिणां पुण्यकर्मिणाम् ॥ ३५ ॥

शब्दार्थ—हे राजन्! परया श्रद्धया = अत्यन्त श्रद्धा से, उपनीतानि = प्राप्त कराए हुए, सत्कृतिम् = सत्कार को, महाप्राज्ञ = हे बुद्धिमान्! पुण्यकर्मिणाम् = पुण्य करने वालों के, धर्मिणाम् = धार्मिकों के, प्रवृत्तानि = प्रवृत्त होते हैं।

हिन्दी—हे महाप्राज्ञशाली! धार्मिक तथा पुण्य कर्म करने वाले व्यक्तियों के यहाँ उपर्युक्त चार वस्तुएँ परम श्रद्धा से सत्कार के लिए प्रस्तुत की जाती है।

सूक्ष्मोऽपि भारं नृपते स्यन्दनो वै शक्तो वोढुं न तथान्ये महीजाः।
एवं युक्ता भारसहा भवन्ति महाकुलीना न तथान्ये मनुष्याः ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ—नृपते=हे राजन्, सूक्ष्मोऽपि=छोटा भी, स्यन्दनः=रथ, भारं शक्यः=भार वहन करने में समर्थ होता है, वै=निश्चय ही, तथान्ये=वैसे दूसरे, महीजाः=वृक्ष, न=समर्थ नहीं है, एवं युक्ताः=ऐसे ही युक्त, महाकुलीनाः=श्रेष्ठ पुरुष, भार-सहाः भवन्ति=भार को सहन करने वाले होते हैं, तथाऽन्ये मनुष्याः न=वैसे अन्य लोग नहीं होते हैं।

हिन्दी—जैसे छोटा भी रथ भार को ढोने में समर्थ होता है, लम्बे वृक्ष नहीं; उसी प्रकार महान् कुल में उत्पन्न मनुष्य भार को सहन करते हैं, अन्य मनुष्य नहीं।

विशेष—कुलीन लोग स्वयं कष्ट सहने के बाद भी दूसरों को कष्ट देना उचित नहीं समझते हैं। सामान्य मनुष्य भय, लोभ इत्यादि कारणों से भार ग्रहण करने के लिए उद्यत नहीं होते हैं।

न तन्मित्रं यस्य कोपाद् बिभेति यद् वा मित्रं शङ्कितेनोपचर्यम्।
यस्मिन् मित्रे पितरीवाश्वसीत तद् वै मित्रं सङ्गतानीतराणि ॥ ३७ ॥

शब्दार्थ—न तत् मित्रम्=वह मित्र नहीं है, यस्य कोपात् बिभेति=जिसके कोप से डरता है, यत् वा मित्रम्=अथवा जो मित्र है, यस्मिन्=जिसमें, शङ्कितेन=शंका युक्त होकर, सेवनीयम्=सेवनीय हो, मित्रे=मित्र में, पितरि इव=पिता के समान, आश्वसीत=विश्वस्त रहना चाहिए, तत् वै मित्रम्=वही मित्र है, इतराणि सङ्गतानि=एकत्रित अन्य नहीं हैं।

हिन्दी—वह मित्र नहीं है, जिसके कोप से भय लगता हो। मित्र वही है जिसमें पिता के समान विश्वास हो, अन्य एकत्रित हुए मित्र नहीं हैं।

विशेष—मित्र का लक्षण भर्तृहरि ने ठीक ही किया है—

'पापान्निवारयति योजयते हिताय गुह्यं निगूहयति गुणान् प्रकटीकरोति।
आपद्गतञ्च ददाति न जहाति काले सन्मित्रलक्षणमिदं निगदन्ति सन्तः' ॥

अर्थात् पापों से निवारण करता है, हित में लगाता है, गोपनीय वस्तुओं को छिपाता है, गुणों को प्रकट करता है, आपत्काल आने पर कुछ देता है और समय पर छोड़ता नहीं है—अच्छे मित्र का यह लक्षण सन्त लोग कहते हैं।

यः कश्चिदप्यसम्बद्धो मित्रभावेन वर्तते।
स एव बन्धुस्तन्मित्रं सा गतिस्तत् परायणम् ॥ ३८ ॥

शब्दार्थ—यः कश्चिदपि=जो किसी प्रकार से भी, असम्बन्धः=सम्बन्ध न रखने वाला, मित्रभावेन=मित्रभाव से, वर्तते=व्यवहार करता है, स एव बन्धुः=वही बन्धु है, तत् मित्रम्=वही मित्र है, सा गतिः=वह गति है, तद् परायणम्=वही सहारा है।

हिन्दी—जो मनुष्य किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं रखते हुए भी मित्रभाव से व्यवहार करता है, वही मित्र, बन्धु, आश्रय और सहारा है।

विशेष—दुर्योधन कर्ण आदि को मित्र समझता है, लेकिन उनमें किसी प्रकार के अच्छे भाव नहीं हैं। स्वयंवर में द्रौपदी के वचनों से उपेक्षित उसने बदला लेने के लिए दुर्योधन का आश्रय ग्रहण किया है।

चलचित्तस्य वै पुंसो वृद्धाननुपसेवतः।
पारिप्लवमतेर्नित्यमध्रुवो मित्रसङ्ग्रहः॥ ३९॥

शब्दार्थ—चलचित्तस्य=चञ्चल चित्तवाले, वै पुंसः=निश्चय से पुरुष के ही, वृद्धान् अनुपसेवितः=वृद्धों के सेवन नहीं करने के कारण, पारिप्लवमतेः=चञ्चल बुद्धिवाले, नित्यम्+अध्रुवम्=नित्य अस्थायी, मित्रसङ्ग्रहः=मित्रों का संग्रह होता है।

हिन्दी—जो पुरुष चंचल चित्तवाला है, वृद्धों का संग नहीं किया है, उससे मित्रता करना अनित्य और अस्थिर है। ऐसे मनुष्य से मित्रता भी कल के लिए शत्रुता का कारण हो सकती है।

चलचित्तमनात्मानमिन्द्रियाणां वशानुगम्।
अर्थाः समभिवर्तन्ते हंसाः शुष्कं सरो यथा॥ ४०॥

शब्दार्थ—चलचित्तम्=चंचल चित्त वाले, अनात्मानम्=अज्ञानी को, इन्द्रियाणां वशानुगम्=इन्द्रियों के वश में हुए मनुष्य को, अर्थाः=धनसम्पत्ति, समभिवर्तन्ते=चारों ओर घेरे रहते हैं, हंसाः=हंस, शुष्कं सरः यथा=जैसे सूखे सरोवर को घेरे रहते हैं, परन्तु उसमें उतरते नहीं हैं।

हिन्दी—चंचल चित्तवाले, अज्ञानी, इन्द्रियों के वश में रहने वाले मनुष्य को धनसम्पत्ति घेरे रहते हैं, परन्तु नजदीक नहीं जाते। जैसे सूखे सरोवर में हंस ऊपर मँड़राते हैं, लेकिन नीचे नहीं उतरते हैं।

विशेष—टीकाकार नीलकण्ठ ने 'समतिवर्तन्ते' पाठ किया है। इसका अर्थ है—ऐसे पुरुष को धनसम्पत्ति छोड़ देती है।

अकस्मादेव कुप्यन्ति प्रसीदन्त्यनिमित्ततः।
शीलमेतदसाधूनामभ्रं पारिप्लवं यथा॥ ४१॥

शब्दार्थ—अकस्मात्+एव=एकाएक ही, कुप्यन्ति=क्रोध करते हैं, अनिमित्ततः=बिना कारण के, प्रसीदन्ति=प्रसन्न होते हैं, एतत् शीलम्=यह स्वभाव, असाधूनाम्=दुर्जनों का होता है, यथा=जैसे, अभ्रम्=मेघ, पारिप्लवम्=सब ओर घूमने वाला होता है।

हिन्दी—जो बिना कारण क्रुद्ध हो जाते हैं तथा बिना कारण प्रसन्न होते हैं, लेकिन ऐसा स्वभाव दुर्जनों का होता है। जैसे—जलहीन बादल सर्वत्र घूमता है, उसका उपयोग कहीं नहीं होता है; उसी प्रकार ऐसे व्यक्ति के क्रोध और प्रसन्नता का कोई मूल्य नहीं होता है।

सत्कृताश्च कृतार्थाश्च मित्राणां न भवन्ति ये।
तान् मृतानपि क्रव्यादाः कृतघ्नान्नोपभुञ्जते॥ ४२॥

शब्दार्थ—सत्कृताः च = सत्कार करने के बाद, कृतार्थाः च = प्रयोजन सिद्ध हो जाने के बाद, मित्राणाम् = मित्रों के हित के लिए, ये न भवन्ति = जो नहीं होते हैं, तान् कृतघ्नान् = उन कृतघ्नों को, मृतान् = मरने के बाद, क्रव्यादाः अपि = गीध भी, न उपभुञ्जते = नहीं खाते हैं।

हिन्दी—जो व्यक्ति मित्रों से सत्कार पाकर और प्रयोजन सिद्ध करके भी मित्रों के हितकारी नहीं होते, उन मरे हुए कृतघ्नों को गीध भी नहीं खाते हैं।

विशेष—सबका निस्तार हो जाता है, लेकिन—'कृतघ्नी नास्ति निष्कृतिः' अर्थात् विश्वासघात एवं उपकार के प्रति कृतज्ञता नहीं ज्ञापन करने वाले का निस्तार नहीं होता है। अर्थात् उससे बचने का कोई उपाय सामने नहीं आता है। इसलिए जीवन में कृतज्ञ होना चाहिए, कृतघ्न नहीं।

अर्चयेदेव मित्राणि सति वाऽसति वा धने।
नानर्थयन् प्रजानाति मित्राणां सारफल्गुताम् ॥ ४३ ॥

शब्दार्थ—अर्चयेत् + एव मित्राणि = मित्रों को आदर करना चाहिए, सति वा + असति वा धने = धन हो या न हो, अनर्थयन् = बिना प्रयोजन के, मित्राणाम् = मित्रों के, सारफल्गुताम् = सारशून्यता को, प्रजानाति = जानता है।

हिन्दी—धन नहीं रहने के बाद भी मित्रों का आदर करना चाहिए, मित्रों से विशेष प्रयोजन नहीं रहने के बाद भी मित्रों की सहायता करनी चाहिए।

विशेष—मित्रों की सहायता करने के लिए लाभांश या प्रस्ताव की अपेक्षा नहीं करनी चाहिए। अवस्था एवं अवसर पर विचार करना चाहिए, लाभांश का नहीं। लाभांश का विचार करने वाला मित्रता का निर्वाह नहीं, अपितु वणिक् वृत्ति है।

सन्तापाद् भ्रश्यते रूपं सन्तापाद् भ्रश्यते बलम्।
सन्तापाद् भ्रश्यते ज्ञानं सन्तापाद् व्याधिमृच्छति ॥ ४४ ॥

शब्दार्थ—सन्तापाद् = सन्ताप से, रूपम् = रूप, भ्रश्यते = नष्ट होता है, सन्तापाद् = शोक से, बलम् = बल, भ्रश्यते = नष्ट होता है, सन्तापाद् = सन्ताप से, ज्ञानं भ्रंशते = ज्ञान नष्ट होता है, सन्तापाद् = शोक से, व्याधिम् = रोग, ऋच्छति = प्राप्त होता है।

हिन्दी—सन्ताप से रूप नष्ट होता है, शोक से बल नष्ट होता है, सन्ताप से ज्ञान नष्ट हो जाता है तथा सन्ताप से रोग उत्पन्न हो जाता है। अतः सन्ताप कभी नहीं करना चाहिए।

अनवाप्यं च शोकेन शरीरं चोपतप्यते।
अमित्राश्च प्रहृष्यन्ति मा स्म शोके मनः कृथाः ॥ ४५ ॥

शब्दार्थ—अनवाप्यं = प्राप्त होने के अयोग्य, शोकेन = शोक से, शरीरम् = शरीर, च = और, उपतप्यते = पीड़ित होता है, अमित्राः = शत्रु लोग, प्रहृष्यन्ति = प्रसन्न होते हैं, मा स्म = मत, शोके = शोक में, मनः कृथाः = मन को लगाओ।

हिन्दी—शोक से कोई अपेक्षित वस्तु प्राप्त नहीं होने से शरीर में कष्ट होता है तथा शत्रु प्रसन्न होते हैं। इसलिए शोक में मन को मत लगाओ अर्थात् शोक मत करो।

विशेष—चिन्ता और शोक में भी अन्तर है। किसी अप्राप्य वस्तु को प्राप्त करने के लिए चिन्ता की जाती है और प्राप्त वस्तु नष्ट होने के बाद शोक होता है। इस प्रकार चिन्ता और शोक में अन्तर है। परन्तु चिन्ता और चिता में चिन्ता ही बलवती है, क्योंकि चिता मरने के बाद ही जलाती है और चिन्ता जीवित को जलाती है। 'चिता दहति निर्जीवं चिन्ता दहति सजीवकम्'।

पुनर्नरो म्रियते जायते च पुनर्नरो हीयते वर्धते च।
पुनर्नरो याचति याच्यते च पुनर्नरः शोचति शोच्यते च ॥ ४६ ॥

शब्दार्थ—पुनः नरः = फिर मनुष्य, जायते म्रियते च = जन्म लेता है और मरता है, पुनः नरः = बार-बार मनुष्य, हीयते वर्धते च = क्षीण होता है और बढ़ता है, पुनर्नरः = बार-बार मनुष्य, याचति याच्यते च = माँगता है और माँगा जाता है, पुनः नरः = बार-बार मनुष्य, शोचति शोच्यते च=शोक करता है और शोक करवाया जाता है।

हिन्दी—बार-बार मनुष्य जन्म लेता है और मरता है, बार-बार मनुष्य नष्ट होता है और बढ़ता है, बार-बार मनुष्य याचना करता है और याचित होता है तथा बार-बार मनुष्य शोक करता है और शोक करवाया जाता है।

सुखं च दुःखं च भवाभवौ च लाभालाभौ मरणं जीवितं च।
पर्यायशः सर्वमेते स्पृशन्ति तस्माद् धीरो न हृष्येन्न शोचेत् ॥ ४७ ॥

शब्दार्थ—सुखं च दुःखं च = सुख और दुःख, भवाभवौ च = और होना न होना, लाभालाभौ = लाभ और हानि, मरणं जीवितं च = जन्म और मरण, पर्यायशः = बारी-बारी से, सर्वम् एते = ये सब, स्पृशन्ति = सबको प्राप्त होते हैं, तस्माद् = इसलिए, धीरः = धीर पुरुष, न च हृष्येत् = न प्रसन्न हो, न शोचेत् = न शोक करे।

हिन्दी—सुख-दुःख, लाभ-हानि, जीवन-मरण तथा होना एवं न होना—ये सब बारी-बारी से सबको स्पर्श करते हैं। इसलिए बुद्धिमान् मनुष्य को इससे न प्रसन्न होना चाहिए और न दुःखी होना चाहिए। अर्थात् ये सब संसार के स्वाभाविक कर्म हैं, इसलिए सबको प्रभावित करते हैं।

चलानि हीमानि षडिन्द्रियाणि तेषां यद् यद् वर्धते यत्र यत्र।
ततस्ततः स्रवते बुद्धिरस्य छिद्रोदकुम्भादिव नित्यमम्भः ॥ ४८ ॥

शब्दार्थ—चलानि हि इमानि षड् इन्द्रियाणि = ये छः इन्द्रियाँ निश्चय ही चंचल हैं, यत् यत् = जो-जो, तेषाम् = उनमें से, वर्धते = बढ़ती है, यत्र यत्र = जिस-जिसमें, ततः ततः = उस-उससे, अस्य बुद्धिः स्रवते = उसकी बुद्धि नष्ट हो जाती है, छिद्रोदकुम्भादिव = जैसे छेदयुक्त घड़ा से, नित्यमम्भः = हमेशा जल गिर जाता है।

हिन्दी — मन से युक्त ये छः इन्द्रियाँ अत्यन्त चंचल हैं। इन इन्द्रियों के द्वारा जैसे-जैसे भोग बढ़ता है, वैसे-वैसे भोग करने वाले पुरुष की बुद्धि नष्ट हो जाती है। जैसे छेद युक्त घड़ा से जल निकल जाता है।

धृतराष्ट्र उवाच--

तनुरुद्धः शिखी राजा मिथ्योपचरितो मया।
मन्दानां मम पुत्राणां युद्धेनान्तं करिष्यति॥ ४९॥

शब्दार्थ — तनुरुद्धः = शरीर में छिपा हुआ, काष्ठ के अन्दर ढका हुआ, शिखी राजा = अग्नि के समान राजा युधिष्ठिर, मया = मेरे द्वारा, मिथ्योपचरितः = असद् व्यवहार किया, मन्दानां मम पुत्राणाम् = मूर्ख मेरे पुत्रों को, युद्धेन = युद्ध के द्वारा, अन्तं करिष्यति = अन्त कर देगा।

हिन्दी — धृतराष्ट्र ने कहा--शरीर में छिपी हुई आग संघर्षण के द्वारा प्रकट हो जाती है, उसी प्रकार अग्नि के समान राजा युधिष्ठिर के प्रति मैंने कपट-व्यवहार किया है। इसलिए वह मेरे पुत्रों को युद्ध के द्वारा विनाश कर देगा।

विशेष — चन्दन की लकड़ी से भी संघर्षण द्वारा अग्नि पैदा हो जाती है, उसी प्रकार अत्यन्त निर्मल व्यवहार एवं धर्मप्रिय युधिष्ठिर के प्रति जुआ, द्रौपदी के वस्त्रापहरण इत्यादि अनुचित व्यवहार हुआ है। जिसके कारण मूर्ख मेरे पुत्रों को वे युद्ध के द्वारा विनाश कर देंगे।

नित्योद्विग्नमिदं सर्वं नित्योद्विग्नमिदं मनः।
यत् तत् पदमनुद्विग्नं तन्मे वद महामते॥ ५०॥

शब्दार्थ—महामते = महाबुद्धिशाली विदुर ! इदं सर्वम् = यह सम्पूर्ण संसार, नित्य + उद्विग्नम् = नित्य भयभीत है, इदं मनः = यह मन, नित्योद्विग्नम् = घबराहट से युक्त है, यत् तत् पदम् = यह जो पद, अनुद्विग्नम् = भय रहित है, तत् मे = उसको मुझे, वद = बताओ।

हिन्दी—यह सब नित्य भय से उद्विग्न है, मेरा मन भी नित्य भय से युक्त है। इसलिए हे महाबुद्धिशाली विदुर ! जो उद्वेग रहित तथा शान्त मार्ग है, वह मुझको बताओ।

विशेष — 'अशान्तस्य कुतः सुखम्' अर्थात् अशान्ति युक्त मनुष्य को सुखप्राप्ति नहीं होती है। इसलिए नीलकण्ठ ने इसका अर्थ अव्यय पद की प्राप्ति के उपदेश के लिए कहा है।

विदुर उवाच—

नान्यत्र विद्यातपसोर्नान्यत्रेन्द्रियविग्रहात्।
नान्यत्र लोभसन्त्यागाच्छान्तिं पश्यामि तेऽनघ॥ ५१॥

शब्दार्थ—अनघ = हे पापरहित ! विद्यातपसोः = विद्या और तप के, न + अन्यत्र = इससे अतिरिक्त नहीं, इन्द्रियनिग्रहात् = इन्द्रिय-जय के, न + अन्यत्र = इसके

बिना नहीं, लोभसन्त्यागात् = लोभ के अत्यन्त त्याग से, न + अन्यत्र = इसके बिना नहीं, ते = तुम्हारी, शान्ति पश्यामि = शान्ति को देखता हूँ।

हिन्दी — विदुर ने कहा—हे पापरहित धृतराष्ट्र! विद्या, तपस्या, इन्द्रियसंयम तथा लोभत्याग के अतिरिक्त आपके लिए अन्य कोई शान्ति का उपाय नहीं देखता हूँ।

बुद्ध्या भयं प्रणुदति तपसा विन्दते महत्।
गुरुशुश्रूषया ज्ञानं शान्तिं योगेन विन्दति॥ ५२॥

शब्दार्थ — बुद्ध्या = बुद्धि के द्वारा, भयं प्रणुदति = भय को दूर करता है, तपसा = तपस्या के द्वारा, महत् विन्दते = महद् ब्रह्म की प्राप्ति होती है, गुरुशुश्रूषया = गुरु की सेवा से, ज्ञानम् = ज्ञान को, योगेन = योग के द्वारा, शान्ति विन्दति = शान्ति को प्राप्त करता है।

हिन्दी—बुद्धि से मनुष्य भय समाप्त करता है, तपस्या के द्वारा महान् पद को प्राप्त करता है, गुरुसेवा द्वारा ज्ञान और योग से शान्ति या मोक्ष पद को प्राप्त करता है।

अनाश्रिता दानपुण्यं वेदपुण्यमनाश्रिताः।
रागद्वेषविनिर्मुक्ता विचरन्तीह मोक्षिणः॥ ५३॥

शब्दार्थ—इह = इस लोक में, दानपुण्यम् = दान और पुण्य का, अनाश्रिताः = आश्रय प्राप्त नहीं करते हुए, वेदपुण्यम् = वेद के पुण्य को, अनाश्रिताः = आश्रय नहीं लेते हुए, रागद्वेषविनिर्मुक्ताः = राग-द्वेष से रहित, मोक्षिणः=मोक्ष को प्राप्त करने वाले, विचरन्ति = विचरण करते हैं।

हिन्दी — जीवन्मुक्त जन दान-पुण्य का आश्रय नहीं लेते हुए वेद-पुण्य को छोड़ते हुए, राग-द्वेष से विमुक्त होकर इस संसार में विचरण करते हैं।

विशेष—जीवन्मुक्त मनुष्य इस संसार में रहता हुआ भी पुष्करपलाशवत् निर्लेप हो जाता है। वह अपने सम्पूर्ण कर्म भगवदर्पण करने के बाद सुख, दुःख, राग, मोह इत्यादि सांसारिक बन्धनों से निर्मुक्त होकर परमहंस के रूप में विचरण करता है। परन्तु लोकाराधन या लोकशिक्षार्थ क्रिया को अवश्य करता है। इस अवस्था में पहुँच जाने के बाद मनुष्य द्वन्द्वातीत हो जाता है। इसलिए ऐसे मनुष्य का सम्पूर्ण उत्तरदायित्व भगवान् अपने ऊपर ले लेते हैं। ऐसे अनेक परमहंसों के उदाहरण इतिहास-पुराण और लोकव्यवहार में सर्वत्र उपलब्ध होते हैं।

स्वधीतस्य सुयुद्धस्य सुकृतस्य च कर्मणः।
तपसश्च सुतप्तस्य तस्यान्ते सुखमेधते॥ ५४॥

शब्दार्थ — स्वधीतस्य = अच्छे प्रकार से अध्ययन किये हुए, सुयुद्धस्य = न्यायोचित युद्ध के, सुकृतस्य = अच्छे प्रकार के कर्मों के, सुतप्तस्य = भलीभाँति की गई तपस्या के, तपसः = तप के, कर्मणः = कर्म के, तस्यान्ते = उसके अन्त में, सुखम् = सुख को, एधते = प्राप्त करता है, वृद्धि होती है।

हिन्दी—भलीभाँति अध्ययन, न्यायोचित युद्ध, पुण्यकर्म तथा भलीभाँति की गयी तपस्या के अन्त में सुख की प्राप्ति होती है।

विशेष—इस प्रकार विदुर बताना चाहते हैं कि जिन कारणों से मनुष्य को सुख मिल सकता है, उनके समुदाय युधिष्ठिर के पास वर्तमान हैं। वे विद्या, तप, जितेन्द्रिय, निर्लोभ, रागद्वेषनिर्मुक्त, स्वाध्यायी तथा धर्मानुष्ठान में लगे हुए हैं। अतः वे सुख के भागी हैं। इन गुणों से विपरीत होने के कारण कौरव दुःख के भागी होंगे तथा नाश को प्राप्त करेंगे।

स्वास्तीर्णानि शयनानि प्रपन्ना न वै भिन्ना जातु निद्रां लभन्ते।
न स्त्रीषु राजन् रतिमाप्नुवन्ति न मागधैः स्तूयमाना न सूतैः॥ ५५॥

शब्दार्थ—स्वास्तीर्णानि=सुन्दर चादरों से युक्त, शयनानि=पलङ्गादि को, प्रपन्नाः=प्राप्त हुए, वैं भिन्नाः=निश्चित रूप से भेद को प्राप्त हुए, न जातु=कभी भी नहीं, निद्रां लभन्ते=नींद को प्राप्त करते हैं, स्त्रीषु=स्त्रियों में, न रतिम्+आप्नुवन्ति=रति को प्राप्त नहीं करते हैं, न मागधैः न सूतैः=न चारणों से, न भाटों से, स्तूयमानाः=स्तुति किये जाते हुए, सुख को प्राप्त करते हैं।

हिन्दी—हे राजन्! आपस में मतभेद रखने वाले व्यक्ति सुन्दर चादर युक्त पलङ्ग पर निद्रा प्राप्त नहीं करते हैं। स्त्रियों के पास रहने के बाद रतिसुख तथा सूत-मागधों की स्तुति से भी सुख को प्राप्त नहीं करते हैं।

न वै भिन्ना जातु चरन्ति धर्मं न वै सुखं प्राप्नुवन्तीह भिन्नाः।
न वै सुखं भिन्ना गौरवं प्राप्नुवन्ति न वै भिन्ना प्रशमं रोचयन्ति॥ ५६॥

शब्दार्थ—भिन्नाः=भेद को प्राप्त हुए, न जातु=न कभी भी, धर्मम्=धर्म को, चरन्ति=आचरण करते हैं, भिन्नाः=भेद को प्राप्त हुए, इह=इस लोक में, न सुखम्=न सुख को, प्राप्नुवन्ति=प्राप्त होते हैं, भिन्ना=भेद को प्राप्त हुए, न सुखम्=न सुख को, न गौरवम्=न गौरव को, प्राप्नुवन्ति=प्राप्त करते हैं, भिन्नाः=भेद को प्राप्त हुए, न प्रशमम्=न शान्ति को, रोचयन्ति=चाहते हैं।

हिन्दी—भेद को प्राप्त हुए मनुष्य कभी भी धर्म का आचरण नहीं करते हैं। भिन्न मति वाले सुख भी प्राप्त नहीं करते हैं तथा उन्हें शान्ति भी रुचिकर नहीं लगती है।

न वै तेषां स्वदते पथ्यमुक्तं योगक्षेमं कल्पते नैव तेषाम्।
भिन्नानां वै मनुजेन्द्र परायणं न विद्यते किञ्चिदन्यत् विनाशात्॥ ५७॥

शब्दार्थ—तेषाम्=उन्हें, पथ्यम्+उक्तम्=ठीक कहा हुआ, न वै स्वदते=अच्छा नहीं लगता है, तेषाम्=उन्हें, योगक्षेमम्=अप्राप्त वस्तु की प्राप्ति, योग-क्षेम, नैव कल्पते=कल्पना नहीं करता है, मनुजेन्द्र=हे राजन्, भिन्नानाम्=भेद को प्राप्त हुए की, परायणम्=अन्तिम गति, विनाशात्=विनाश से, अन्यत्=अतिरिक्त, किञ्चिद=कुछ भी, न विद्यते=नहीं है।

हिन्दी—भेद को प्राप्त हुए मनुष्य को हितकर बात भी अच्छी नहीं लगती और

न उन्हें योगक्षेम की प्राप्ति हो पाती है। महाराज! भिन्न मति वाले मनुष्यों की विनाश के अतिरिक्त और कोई गति नहीं होती है।

सम्पन्नं गोषु सम्भाव्यं सम्भाव्यं ब्राह्मणे तपः।
सम्भाव्यं चापलं स्त्रीषु सम्भाव्यं ज्ञातितो भयम् ॥ ५८ ॥

शब्दार्थ—सम्पन्नं गोषु = गो रूप सम्पत्ति में दूध, सम्भाव्यम् = संभव है, ब्राह्मणे = ब्राह्मण में, तपः = तपस्या, सम्भाव्यम् = संभव है, स्त्रीषु = स्त्रियों में, चापलम् = चपलता, सम्भाव्यम् = संभव है, ज्ञातितः = सगे-सम्बन्धियों से, भयम् = भय, सम्भाव्यम् = संभव है।

हिन्दी—गायों में दूध संभव है, ब्राह्मण में तपस्या संभव है, स्त्रियों में चपलता सम्भव है तथा सगे-सम्बन्धियों से भय संभव है।

तन्तवो प्यायिता नित्यं तनवो बहुलाः समाः।
बहून् बहुत्वादायासान् सहन्तीत्युपमा सताम् ॥ ५९ ॥

शब्दार्थ—तन्तवः = लताएँ, कुलवृक्ष, नित्यम् = नित्य, प्यायिताः = सींची जाने पर, तनवः = सूक्ष्म बालक, बहुलाः समाः = बहुत दिनों तक, बहून् = बहुत, बहुत्वात् = बहुत होने से, आयासान् = दुःखों को, सहन्ति = सहन करते हैं, इति = यह, सताम् = सज्जनों के, उपमा = सदृश है।

हिन्दी—कुलतन्तु के समान बालक पाण्डव तुम्हारे द्वारा बढ़ाये जाने के बाद भी बहुत दुःखों को सहते हैं, अतः वे सज्जनों के सदृश हैं।

धूमायन्ते व्यपेतानि ज्वलन्ति सहितानि च।
धृतराष्ट्रोल्मुकानीव ज्ञातयो भरतर्षभ ॥ ६० ॥

शब्दार्थ—भरतर्षभ = हे भरतकुलश्रेष्ठ धृतराष्ट्र! उल्मुकानि = जलते हुए ईन्धन, व्यपेतानि = पृथक् हुए, धूमायन्ते = धुआँ देते हैं, सहितानि = इकट्ठे रहने पर, ज्वलन्ति = जलते हैं, इव = यथा, ज्ञातयः = सम्बन्धी जन भी, पृथक् रहने पर कष्ट देते हैं और इकट्ठे रहने पर जलकर नष्ट हो जाते हैं।

हिन्दी—हे भरतकुलश्रेष्ठ धृतराष्ट्र! जैसे जलती हुई लकड़ी अलग होने पर धुआँ देती है और इकट्ठे रहने पर जल जाती है, वैसे ही सम्बन्धी जन भी अलग रहने पर दुःख सहते हैं और इकट्ठे रहने पर सुख का भोग करते हैं।

ब्राह्मणेषु च ये शूराः स्त्रीषु ज्ञातिषु गोषु च।
वृन्तादिव फलं पक्वं धृतराष्ट्र! पतन्ति ते ॥ ६१ ॥

शब्दार्थ—धृतराष्ट्र = हे धृतराष्ट्र! ब्राह्मणेषु = ब्राह्मणों में, स्त्रीषु ज्ञातिषु गोषु च = स्त्रियों, सम्बन्धीजनों और गायों में, ये शूराः = जो शूर हैं, ते = वे, पक्वं फलम् = पके हुए फल, वृन्तात् + इव = डण्ठल से जैसे, पतन्ति = गिर जाते हैं, वैसे वे भी नष्ट हो जाते हैं।

हिन्दी—हे धृतराष्ट्र! ब्राह्मणों, गायों और सम्बन्धी जनों के ऊपर जो वीरता दिखलाते हैं, वे पके हुए फल के समान डण्ठल से गिर जाते हैं अर्थात् नष्ट हो जाते हैं।

विशेष—यहाँ पर विदुर के कहने का अभिप्राय यह है कि युद्ध न चाहने वाले युधिष्ठिर के ऊपर वीरता दिखलाने वाले दुर्योधन पके हुए फल के समान राज्य से भ्रष्ट हो जायेगा। इसलिए सम्बन्धियों के ऊपर अन्याय न करे और उन्हें उनका राज्यांश दे।

महानप्येकजो वृक्षो बलवान् सुप्रतिष्ठितः।
प्रसह्य एव वातेन सस्कन्धो मर्दितु क्षणात् ॥ ६२ ॥

शब्दार्थ—महान् अपि = बहुत बड़ा भी, एकजः वृक्षः = अकेला वृक्ष, बलवान् = सुदृढ़, सुप्रतिष्ठितः = अच्छे प्रकार से ठहरा हुआ, प्रसह्य एव = एकाएक ही, वातेन = वायु के द्वारा, सस्कन्धः = शाखाओं के सहित, मर्दितुम् = मर्दन के लिए, क्षणात् = क्षण में, समर्थ होता है।

हिन्दी—अकेला वृक्ष महान् तथा अच्छी तरह जड़ पकड़े होने पर भी क्षणभर में ही आँधी के द्वारा बलपूर्वक उखाड़ा जा सकता है।

अथ ये सहिता वृक्षाः सङ्घशः सुप्रतिष्ठिताः।
ते हि शीघ्रतमान् वातान् सहन्तेऽन्योन्यसंश्रयात् ॥ ६३ ॥

शब्दार्थ—अथ = इसके बाद, ये सहिता वृक्षाः = जो वृक्ष समूह में हैं, सङ्घशः सुप्रतिष्ठिताः = समूह रूप में स्थित हैं, ते हि = वे तो, शीघ्रतमान् वातान् = अत्यन्त तेज आँधी को, अन्योन्यसंश्रयात् = एक-दूसरे के संयोग से, सहन्ते = सहते हैं।

हिन्दी—और जो वृक्ष समूह रूप में अच्छी प्रकार से खड़े हैं, वे एक-दूसरे के आश्रय से भयङ्कर आँधी को भी सह लेते हैं।

विशेष—समूह में बल है, एकत्रित हुई असार वस्तुओं को भी तोड़ा नहीं जा सकता। परन्तु अलग-अलग बलवान् को भी नष्ट किया जा सकता है। इसलिए 'सङ्घे शक्तिः कलौ युगे' कहा गया है।

एवं मनुष्यमप्येकं गुणैरपि समन्वितम्।
शक्यं द्विषन्तो मन्यन्ते वायुर्द्रुममिवैकजम् ॥ ६४ ॥

शब्दार्थ—एवम् = इसी प्रकार, मनुष्यम् अपि = मनुष्य भी, एकम् = अकेले में, गुणैरपि = गुणों से भी, समन्वितम् = युक्त रहने पर भी, द्विषन्तः = शत्रुओं के द्वारा द्वेष करते हुए, शक्यं मन्यन्ते = नष्ट करने योग्य मानते हैं, एकजम् = अकेले, द्रुमम् = वृक्ष को, वायुरिव = वायु के समान। जैसे अकेले वृक्ष को वायु उखाड़ फेंकती है, वैसे ही अकेले मनुष्य को शत्रु मार देते हैं।

हिन्दी—इसी प्रकार अकेले मनुष्य को गुणों से युक्त रहते हुए भी शत्रु नष्ट कर देते हैं। जैसे अकेले वृक्ष को वायु नष्ट कर देती है।

अन्योऽन्यसमुपष्टम्भादन्योऽन्यापाश्रयेण च।
ज्ञातयः सम्प्रवर्धन्ते सरसीवोत्पलान्युत ॥ ६५ ॥

शब्दार्थ—अन्योऽन्यसमुपष्टम्भाद् = एक-दूसरे के सहारे से, अन्योन्यापाश्रयेण = और

एक-दूसरे के सहयोग से, ज्ञातयः=सम्बन्धी लोग, सम्प्रवर्धन्ते=बढ़ते हैं, इव=जैसे, सरसि=सरोवर में, उत्पलानि उत=और कमल जैसे बढ़ते हैं।

हिन्दी—परन्तु एक-दूसरे के सहारे, एक-दूसरे के सहयोग से सम्बन्धी भी बढ़ते हैं, जैसे कमल सरोवर में खिलते हैं।

विशेष—इन दोनों दृष्टान्तों के द्वारा विदुर धृतराष्ट्र को समझाने का प्रयास करते हैं कि अत्यन्त दृढ़ वृक्ष भी हिल जाते हैं और अत्यन्त कोमल कमल का फूल भी एक-दूसरे के सहारे प्रसन्न रहते हैं। इसलिए परस्पर भेद छोड़कर प्रसन्नतापूर्वक एक-दूसरे के साथ रहने का विचार करें और द्वेषभाव छोड़ दें।

अवध्या ब्राह्मणा गावो ज्ञातयः शिशवः स्त्रियः।
येषां चान्नानि भुञ्जीत ये च स्युः शरणागताः॥ ६६॥

शब्दार्थ—ब्राह्मणाः=ब्राह्मण, गावः ज्ञातयः शिशवः स्त्रियः=गायें, सम्बन्धी लोग, बालक और स्त्रियाँ, अवध्याः=मारने योग्य नहीं होते हैं, च=और, येषाम्=जिनका, अन्नानि भुञ्जीत=अन्न खायें, च=और, ये=जो, शरणागताः स्युः=शरणागत हों, ये सब अवध्य होते हैं।

हिन्दी—ब्राह्मण, गायें, सम्बन्धीजन, बालक, स्त्रियाँ तथा जिनका अन्न खाते हैं और जो शरण में आये हुए हैं—ये सभी अवध्य हैं अर्थात् मारने योग्य नहीं हैं। इन्हें कभी भी मारना नहीं चाहिए।

विशेष—भारतीय संस्कृति की यह विशेषता है कि इन पर अपना बल प्रयोग नहीं करते हैं, इन सबों की रक्षा करते हैं। यही इसकी खास विशेषता है।

न मनुष्ये गुणः कश्चिद् राजन् सधनतामृते।
अनातुरत्वाद् भद्रं ते मृतकल्पा हि रोगिणः॥ ६७॥

शब्दार्थ—राजन्=हे धृतराष्ट्र! अनातुरत्वात् सधनताम्+ऋते=धनिकता एवं रोग राहित्य को छोड़कर, मनुष्ये=मनुष्य में, न कश्चित् गुणः=कोई गुण नहीं है, ते भद्रम्=तुम्हारा कल्याण हो, हि=क्योंकि, रोगिणः=रोगी, मृतकल्पाः=मरे हुए के समान हैं।

हिन्दी—हे राजन्! नीरोगता और धनिकता को छोड़कर मनुष्य में कोई गुण नहीं है। हे राजन्! तुम्हारा कल्याण हो, रोगी तो मरे हुए के समान हैं।

विशेष—स्वास्थ्य के अनुरूप भोग करने के लिए सामग्री मिल जाय तो इसके अतिरिक्त संसार में श्रेष्ठ वस्तु कोई नहीं है। इसलिए स्वास्थ्य के साथ धन का महत्त्व बतलाया गया है।

अव्याधिजं कटुकं शीर्षरोगि पापानुबन्धं परुषं तीक्ष्णमुष्णम्।
सतां पेयं यन्न पिबन्त्यसन्तो मन्युं महाराज पिब प्रशाम्य॥ ६८॥

शब्दार्थ—अव्याधिजम्=बिना रोग से उत्पन्न होने वाले को, कटुकम्=अरुचिकर को, शीर्षरोगि=शिरोरोगयुक्त को, पापानुबन्धम्=बुरे कर्मों से सम्बन्ध रखने वाले को, परुषम्=कठोर को, तीक्ष्णम्=छेदक को, उष्णम्=गर्म को, सताम्=सज्जनों

है, पेयम्=पान करने योग्य को, असन्तः=असज्जन, यन्न पिबन्ति=जो नहीं पीते हैं, महाराज=हे धृतराष्ट्र ! मन्युम्=क्रोध को, पिब=पीयो, प्रशाम्य=शान्त हो जाओ।

हिन्दी—हे धृतराष्ट्र ! जो बिना व्याधि से उत्पन्न, कटु, सिरदर्द उत्पन्न करने वाला, पाप से लिप्त कठोर, तीखा और गर्म है तथा जिसका सज्जन ही पान कर सकते हैं, दुर्जन नहीं; ऐसे उस क्रोध को पी जाइए तथा शान्त हो जाइए।

रोगार्दिता न फलान्याद्रियन्ते न वै लभन्ते विषयेषु तत्त्वम्।
दुःखोपेता रोगिणो नित्यमेव न बुध्यन्ते धनभोगान्न सौख्यम् ॥ ६९ ॥

शब्दार्थ—रोगार्दिताः=रोग से पीड़ित, न फलानि=न फलों को, आद्रियन्ते=आदर करते हैं, विषयेषु=विषयों में, तत्त्वम्=तत्त्व को, वै=निश्चय ही, न लभन्ते=प्राप्त नहीं करते हैं, दुःखोपेताः=दुःख से युक्त, रोगिणः=रोगी, धनभोगान्=धन के भोगों को, सौख्यम्=सुख को, नैव बुध्यन्ते=नहीं जानते हैं।

हिन्दी—रोग से व्याकुलजन फलों का भी आदर नहीं करते हैं तथा विषयों के भोगों में भी उन्हें कोई सार नहीं मिलता है। रोगी नित्य दुःखी रहते हैं, वे धनों को और सुखों को नहीं जानते हैं।

पुरा ह्युक्तं नाकरोस्त्वं वचो मे द्यूते जितां द्रौपदीं प्रेक्ष्य राजन्।
दुर्योधनं वारयेत्यक्षवत्यां कितवत्वं पण्डिताः वर्जयन्ति ॥ ७० ॥

शब्दार्थ—पुरा हि उक्तम्=पहले निश्चयपूर्वक कहा हुआ, मे वचः=मेरा वचन, त्वम्=तुमने, न अकरोः=नहीं किया, राजन्=हे राजन्, द्यूते जिताम्=जुआ में जीती हुई, द्रौपदीं प्रेक्ष्य=द्रौपदी को देखकर, दुर्योधनम्=दुर्योधन को, वारय=निवारण करो, अक्षवत्याम्=जुए वाली सभा में, कितवत्वम्=जुए के प्रेम को, पण्डिताः=पण्डित लोग, वर्जयन्ति=छोड़ देते हैं।

हिन्दी—हे राजन् ! जुए में द्रौपदी को जीती गयी देखकर मैंने पहले ही कहा था कि जुए में आसक्त दुर्योधन को रोकिए। विद्वान् लोग जुए का निषेध करते हैं, लेकिन आपने मेरे वचन को नहीं माना।

न तद् बलं यन्मृदुना विरुध्यते सूक्ष्मो धर्मस्तरसा सेवितव्यः।
प्रध्वंसिनी क्रूरसमाहिता श्रीर्मृदुप्रौढा गच्छति पुत्रपौत्रान् ॥ ७१ ॥

शब्दार्थ—न तद् बलम्=वह बल नहीं है, यन्मृदुना=जो कोमलता से, विरुध्यते=विरुद्ध होता है, सूक्ष्मो धर्मः=सूक्ष्म धर्म को, तरसा सेवितव्यः=शीघ्रता से सेवन करना चाहिए, क्रूरसमाहिता=दुष्टों के आश्रित, प्रध्वंसिनी=नाश करने वाली, श्रीः=लक्ष्मी, मृदुप्रौढा=कोमलता द्वारा बढ़ायी गयी, पुत्रपुत्रान्=पुत्र-पौत्रों तक, गच्छति=जाती है अर्थात् स्थिर रहती है।

हिन्दी—वह बल नहीं जिसे कोमलता से विरोध हो, सूक्ष्म धर्म शीघ्रता से सेवन

करना चाहिए, क्रूरता से अर्जित की गयी लक्ष्मी नाश करने वाली होती है तथा कोमलतापूर्वक अर्जित लक्ष्मी पुत्र-पौत्रों तक जाती है ।

विशेष—युधिष्ठिर सहिष्णु है, उनके साथ विरोध रखने से नष्ट होने की सम्भावना है । क्रूरता से प्राप्त लक्ष्मी शीघ्र नष्ट हो जाती है तथा कोमलता द्वारा प्राप्त लक्ष्मी बहुत दिनों तक चिरस्थायी रहती है ।

धार्तराष्ट्राः पाण्डवान् पालयन्तु पाण्डोः सुतास्तव पुत्रांश्च पान्तु ।
एकारिमित्राः कुरवो ह्येककार्या जीवन्तु राजन् सुखिनः समृद्धाः ॥ ७२॥

शब्दार्थ—राजन्=हे राजन् ! धार्तराष्ट्राः=धृतराष्ट्र के पुत्र, पाण्डवान्=पाण्डुपुत्रों को, पालयन्तु=पालन करें, पाण्डोः सुताः=पाण्डु के पुत्र, तव पुत्रान्=तुम्हारे पुत्रों को, पान्तु=रक्षा करें, एकारिमित्राः=एक समान शत्रु-मित्र वाले, कुरवः=कौरव और पाण्डव, हि=निश्चयेन, एककार्याः=एक समान कार्य वाले, जीवन्तु=जीवित रहें, सुखिनः समृद्धाः=सुख-समृद्धि हों ।

हिन्दी—हे राजन् ! दुर्योधनादि पाण्डवों की रक्षा करें और पाण्डव तुम्हारे पुत्र दुर्योधनादि की रक्षा करें । दोनों एक ही शत्रु, मित्र तथा समान कार्य करने वाले होकर सुख और समृद्धि प्राप्त कर चिरकाल तक जीवें ।

विशेष—कौरव अपने पिता के अधीन होकर पाण्डवों की रक्षा करें और दाय-भाग दे । पाण्डव अपनी वीरता के द्वारा कौरवों की रक्षा करें । दोनों मिलकर चिरकाल तक पृथ्वी का पालन करें । कोई किसी का बाधक न बने, सहभाव से उन्नति प्राप्त करे ।

मेढीभूतः कौरवाणां त्वमद्य त्वय्याधीनं कुरुकुलमाजमीढ ।
पार्थान् बालान् वनवासप्रतप्तान् गोपायस्व स्वं यशस्तात रक्षन् ॥ ७३॥

शब्दार्थ—मेढीभूतः=निरोध रूप, कौरवाणाम्=कौरवों के, त्वम् अद्य=तुम इस समय, त्वयि अधीनं=तुम्हारे अधीन, आजमीढ=हे अजमीढ के पुत्र, कुरुकुलम्=कुरुकुल को, पार्थान्=पृथु के पुत्रों को, बालान्=बालकों को, वनवासप्रतप्तान्=वनवास से दुःखी हुओं को, गोपायस्व=पालन करो, त्वम्=तुम अपना, यशः=यश को, तात रक्षन्=हे तात ! रक्षा करते हुए ।

विशेष—जैसे मेढ़ खेत का रोधक होता है, वैसे ही धृतराष्ट्र तुम अपने पुत्रों और पाण्डवों के रक्षक हो । तुम्हें सम्पूर्ण कुरुकुल की रक्षा करनी चाहिए । यही एकमात्र उपाय है ।

सन्धत्स्व त्वं कौरव पाण्डुपुत्रैर्मा तेऽन्तरं रिपवः पार्थयन्तु ।
सत्ये स्थितास्ते नरदेव सर्वे दुर्योधनं स्थापय त्वं नरेन्द्र ॥ ७४ ॥

इति महाभारते उद्योगपर्वणि प्रजागरपर्वणि विदुरहितवाक्ये षट्त्रिंशोऽध्यायः ।

॥ इति विदुरनीतौ चतुर्थोऽध्यायः समाप्तः ॥

शब्दार्थ—त्वम्=तुम, कौरव=हे कुरुकुल में उत्पन्न धृतराष्ट्र! पाण्डुपुत्रैः =पाण्डुपुत्रों के साथ, सन्धत्स्व=सन्धि करो, तेऽन्तरम्=तुम्हारे भेद को, रिपवः= शत्रु, न प्रार्थयन्तु=न प्रार्थना करें, न जाने, नरदेव=हे राजन्! ते सर्वे=वे सब, सत्ये स्थिताः=सत्य में स्थित रहें, नरेन्द्र=हे राजन्, त्वम्=तुम, दुर्योधनम्= दुर्योधन को, स्थापय=वश में करो। जिससे तुम्हारा कल्याण होगा।

हिन्दी—हे धृतराष्ट्र! तुम पाण्डुपुत्रों के साथ सन्धि करो। शत्रुजन तुम्हारे दोनों के भेद को न जाने। हे राजन्! वे पाण्डु के पुत्र सत्य पर स्थित हैं, तुम दुर्योधन को वश में रखो।

इस प्रकार विदुरनीति की चतुर्थ अध्याय की हिन्दी समाप्त।

पञ्चमोऽध्यायः

विदुर उवाच—

सप्तदशेमान् राजेन्द्र मनुः स्वायम्भुवोऽब्रवीत् ।
वैचित्रवीर्यं पुरुषान् आकाशं मुष्टिभिर्घ्नतः ॥ १ ॥

शब्दार्थ—राजेन्द्र = राजाओं में श्रेष्ठ, वैचित्रवीर्य = विचित्रवीर्य के पुत्र, इमान् + सप्तदश = इन सतरह को, पुरुषान् = पुरुषों को, स्वयम्भुवः मनुः = स्वयम्भु के पुत्र मनु ने, आकाशं मुष्टिभिर्घ्नतः = आकाश को मुट्ठी से मारने वाला अर्थात् मूर्ख, अब्रवीत् = कहा है।

हिन्दी—विदुर ने कहा—हे विचित्रवीर्य के पुत्र राजाओं में श्रेष्ठ धृतराष्ट्र! स्वयम्भु के पुत्र मनु ने इन सतरह पुरुषों को आकाश को मुठ्ठी से मारने वाला अर्थात् मूर्ख कहा है।

विशेष—इन सतरह वस्तुओं की गणना आगे की गयी है। आकाश शून्य होता है, उसे मुट्ठी से नहीं मारा जा सकता। अतः इस कार्य को करने वाला अर्थात् असम्भव को सम्भव करने वाला मूर्ख होता है।

दानवेन्द्रस्य च धनुरनाम्यं नमतोऽब्रवीत् ।
अथ मरीचिनः पादान् अग्राह्यान् गृह्णतस्तथा ॥ २ ॥

शब्दार्थ—अथ = इसके बाद, दानवेन्द्रस्य = मेघ से उत्पन्न, धनुः = इन्द्रधनुष को, अनाम्यम् = नहीं झुकाने योग्य, नमतः = झुकाते हुए, तथा = और, मरीचिनः पादान् = सूर्य की चन्द्र के किरणों को, अग्राह्यान् = नहीं ग्रहण के योग्य, गृह्णतः = ग्रहण करते हुए, अब्रवीत् = मूर्ख कहा है।

हिन्दी—मेघ में उत्पन्न इन्द्रधनुष न झुकाने योग्य को झुकाते हुए और सूर्य की चन्द्रकिरणों को न ग्रहण करने योग्य को ग्रहण करते हुए को (मूर्ख) कहा है।

विशेष—इन्द्रधनुष मेघ में उत्पन्न होकर कुछ ही क्षणों में विलीन हो जाता है, अतः उसे झुकाने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। उसी प्रकार सूर्य-चन्द्र की किरणें अग्राह्य होती हैं, उसे पकड़ने वाला भी असम्भव को सम्भव करना चाहता है, अतः मूर्ख है।

यश्चाशिष्यं शास्ति वै यश्च तुष्येद् यश्चातिवेलं भजते द्विषन्तम् ।
स्त्रियश्च यो रक्षति भद्रमश्नुते यश्चायाच्यं याच्यते कत्थते च ॥ ३ ॥

शब्दार्थ—यः = जो, अशिष्यम् = शासन न करने योग्य शिष्य को, शास्ति = शासन करता है, यः च = और जो, तुष्येत् = सन्तुष्ट हो जाय, यः च = और जो, अतिवेलम् = हर समय, मर्यादा को पार कर, तुष्यन्तः = द्वेष करने वाले को, भजते = सेवन करता है, यः च = और जो, स्त्रियः रक्षति = स्त्रियों की रक्षा करता है,

भद्रमश्नुते = कल्याण प्राप्त करता है, यः च = और जो, अयाच्यम् = माँगने के अयोग्य को, याचते = माँगता है, च = और, कत्थते = प्रशंसा करता है।

हिन्दी — जो शासन नहीं करने योग्य को शासित करता है और मर्यादा का अतिक्रमण करने वाले शत्रु की सेवा करता है और जो स्त्री की रक्षा करता है और कल्याण चाहता है और जो नहीं माँगने योग्य वस्तु को माँगता है तथा उसकी प्रशंसा करता है — ऐसा मनुष्य मूर्ख होता है।

यश्चाभिजातः प्रकरोत्यकार्यं यश्चाबलो बलिना नित्यवैरी।
अश्रद्दधानाय च यो ब्रवीति यश्चाकाम्यं कामयते नरेन्द्र॥ ४॥

शब्दार्थ — यः च = और जो, अभिजात्यः = श्रेष्ठ कुल में उत्पन्न होने पर भी, अकार्यम् = अनुचित कार्य को, प्रकरोति = करता है, यः च = और जो, अबलः = निर्बल, बलिना = बलवान् के साथ, नित्यवैरी = नित्य वैर करता है, अश्रद्दधानाय = श्रद्धा नहीं रखने वाले के लिए, यः च = और जो, ब्रवीति = कहता है, नरेन्द्र = हे राजन्, यः च = और जो, अकाम्यम् = कामना नहीं करने योग्य की, कामयते = कामना करता है।

हिन्दी—हे राजन्! जो उत्तम कुल में उत्पन्न होकर भी नहीं करने योग्य कार्य को करता है और जो निर्बल होकर बलवान् से नित्य वैर रखता है और जो श्रद्धा नहीं रखने वाले के प्रति बोलता है तथा जो कामना नहीं करने वाले की कामना करता है।

वध्वावहासं श्वशुरो मन्यते यो वध्वाऽवसन्नभयो मानकामः।
परक्षेत्रे निर्वपति यश्च बीजं स्त्रियं च यः परिवदतेऽतिवेलम्॥ ५॥

शब्दार्थ—यः = जो, श्वशुरः = श्वसुर, वध्वा + अवहासम् = पुत्रवधू के साथ मजाक को, मन्यते = करता है, वध्वा + अवसन्नभयः = वधू के द्वारा रक्षित होकर, मानकामः = मान की इच्छा करता है, यः च = और जो, परक्षेत्रे = दूसरे के क्षेत्र में, निर्वपति = बीज बोता है, यः च = और जो, अतिवेलम् = मर्यादा का उलङ्घन कर, परिवदते = निन्दा करता है।

हिन्दी—जो श्वसुर पुत्रवधू से मजाक करता है और जो वधू के साथ एकान्त में रहकर भी समाज में मान चाहता है और जो दूसरे के खेत में बीजवपन करता है अथवा दूसरे की स्त्री में गर्भाधान करता है और जो स्त्री की मर्यादा का उलङ्घन कर निन्दा करता है। ये सब मूर्ख माने गये हैं।

यश्चापि लब्ध्वा न स्मरामीति वादी दत्त्वा च यः कत्थति याच्यमानः।
यश्चासतः सत्त्वमुपानयीत एतान् नयन्ति निरयं पाशहस्ताः॥ ६॥

शब्दार्थ—यः च = और जो, लब्ध्वापि = प्राप्त करके भी, न स्मरामि इति वादी = नहीं स्मरण करता हूँ — ऐसा बोलने वाला, यः च = और जो, याच्यमानः = माँगता हुआ, दत्त्वा = देकर, कत्थति = आत्मप्रशंसा करता है, यः च = और जो, असतः =

असत्पुरुष की, सत्त्वमुपानयीत = सत्यता को प्रमाणित करता है, एतान् = इनको, पाशहस्ताः = हाथ में रस्सी लेकर, निरयम् = नरक को, नयन्ति = ले जाते हैं।

हिन्दी—जो किसी से वस्तु लेकर भी 'मुझे स्मरण नहीं है' ऐसा कहता है और दान देकर जो आत्मप्रशंसा करता है तथा जो झूठ को सत्य सिद्ध करने का प्रयास करता है—इन सतरह व्यक्तियों को यमराज के दूत हाथ में रस्सी लेकर नरक में ले जाते हैं।

विशेष—यमराज सूर्यपुत्र तथा देवताओं में एक है। इनका कार्य इस लोक के मनुष्यों को कर्मानुसार न्याय एवं दण्ड देना है। जो जैसा करता है उसे उसके कर्मानुसार दण्ड देते हैं। उनके दूत भी हाथ में पाश लेकर उस कर्मानुयायी जीव को बाँधकर ले जाते हैं। ऐसा वर्णन पुराणों, इतिहासों एवं प्राचीन आख्यान-आख्यायिकाओं में पर्याप्त प्राप्त होता है।

यस्मिन् यथा वर्तते यो मनुष्यस्तस्मिंस्तथा वर्तितव्यं स धर्मः।
मायाचारो मायया वर्तितव्यः साध्वाचारः साधुना प्रत्युपेयः ॥ ७ ॥

शब्दार्थ—यः मनुष्यः = जो मनुष्य, यस्मिन् = जिसमें, यथा वर्तते = जैसे व्यवहार करता है, तस्मिन् = उसमें, तथा वर्तितव्यम् = उसी प्रकार का व्यवहार करना चाहिए, सः धर्मः = वह धर्म है। मायाचारः = कपट-व्यवहार करने वाले से, मायया वर्तितव्यः = कपट-व्यवहार करना चाहिए, साध्वाचारः = सज्जनों का आचरण करने वाले से, साधुना = अच्छे व्यवहार से, प्रत्युपेयः = सेवन करना चाहिए।

हिन्दी—जो मनुष्य जैसा व्यवहार करे उसके साथ वैसा व्यवहार करना चाहिए, वही धर्म है। कपट-व्यवहार करने वाले के साथ कपट से व्यवहार और सज्जनों के साथ साधुता का व्यवहार करना चाहिए।

विशेष—यहाँ जिस धर्म का वर्णन है वह लौकिक है। सज्जनों का व्यवहार इसके विपरीत होता है। साथ ही इस श्लोक के द्वारा यह ध्वनित होता है कि दुर्योधन छली है, इसलिए उसके साथ युधिष्ठिर के छल व्यवहार करने से कोई दोष नहीं है। परन्तु युधिष्ठिरादि उनके साथ भी साधुता का व्यवहार कर रहे हैं, जिसके कारण युधिष्ठिर का महत्त्व ख्यापित होता है।

जरा रूपं हरति धैर्यमाशा मृत्युः प्राणान् धर्मचर्यामसूया।
कामो ह्रियं वृत्तमनार्यसेवा क्रोधः श्रियं सर्वमेवाभिमानः ॥ ८ ॥

शब्दार्थ—जरा = वृद्धावस्था, रूपं हरति = रूप को नष्ट करती है, आशा = आशा, धैर्यम् = धैर्य को, हरण करती है, मृत्युः = मृत्यु, प्राणान् = जीवन को हरण करती है, असूया = दोषारोपण, धर्मचर्याम् = धर्माचरण को हरण करता है, कामः = काम, ह्रियम् = लज्जा को हरण करता है, वृत्तम् = व्यवहार को, अनार्यसेवा = दुष्टों का संग, क्रोधः = क्रोध, श्रियम् = सम्पत्ति को, अभिमानः = अभिमान, सर्वम् एव = सबको ही नाश करता है।

हिन्दी—वृद्धावस्था रूप को नष्ट करती है, आशा धैर्य का, मृत्यु जीवन का,

असूया धर्माचरण का, लज्जा काम का, दुष्टों का सङ्ग सदाचार का, क्रोध लक्ष्मी का और अभिमान सबका नाश कर देता है।

विशेष—अभिमान के आ जाने से मनुष्य का सम्पूर्ण गुणगणसमुदाय नष्ट हो जाते हैं। इसलिए अभिमान किसी स्थिति में रखना उचित नहीं है।

धृतराष्ट्र उवाच—

शतायुरुक्तः पुरुषः सर्ववेदेषु वै यदा।
नाप्नोत्यथ च तत् सर्वमायुः केनेह हेतुना ॥ ९ ॥

शब्दार्थ—शतायुः=सौ वर्ष की आयुवाला, पुरुषः=पुरुष, उक्तः=कहा गया है, सर्ववेदेषु=सभी वेदों में, यदा वै=जब यह, न+आप्नोति=प्राप्त नहीं करता है, अथ=इसके बाद, तत्=वह, केन हेतुना=किस कारण से, सर्वमायुः=सभी आयु को प्राप्त नहीं करता है।

हिन्दी—धृतराष्ट्र ने कहा—सभी वेदों में पुरुष को सौ वर्ष की आयुवाला कहा गया है, तब किस कारण से वह पूर्ण आयु को प्राप्त नहीं करता है?।

विशेष—यहाँ धृतराष्ट्र ने विदुर से प्रश्न किया है कि जब अभिमान सब वस्तुओं का नाश कर देता है तो मेरे पुत्र अभिमान में ही जी रहे हैं, उन्हें अभिमान छोड़ने के बाद भी सौ वर्ष की आयु मिलेगी अथवा नहीं? क्योंकि 'शतं जीवेम शरदः' इत्यादि वाक्यों में सौ वर्ष की कामना की गयी है।

विदुर उवाच—

अतिमानोऽतिवादश्च तथाऽत्यागो नराधिप।
क्रोधश्चात्मविधित्सा च मित्रद्रोहश्च तानि षट् ॥ १० ॥

शब्दार्थ—नराधिप=हे राजन्! अतिमानः=अधिक अभिमान रखना, अतिवादः=अधिक बोलना, तथा च=और उसी प्रकार, अत्यागः=त्याग नहीं करना, क्रोधः=क्रोध, आत्मविधित्सा=आत्मपोषण मात्र की इच्छा, च=और, मित्रद्रोहः=मित्रों के साथ द्रोह, तानि च षट्=ये छः कार्यों को करने से पूर्ण आयु की प्राप्ति नहीं होती।

हिन्दी—हे राजन्! अति अभिमान, बहुत बोलना, त्याग नहीं करना, क्रोध, आत्मपोषण की इच्छा और मित्रद्रोह—ये छः कारणों के द्वारा पूर्ण आयु प्राप्त नहीं होती है।

विशेष—'अति सर्वत्र वर्जयेत्' अर्थात् अत्यधिक सब कुछ त्याज्य ही है। क्योंकि इसके द्वारा आत्मकल्याण तो होता ही नहीं बल्कि सब कुछ नष्ट हो जाता है।

एत एवासयस्तीक्ष्णाः कृन्तन्त्यायूंषि देहिनाम्।
एतानि मानवान् घ्नन्ति न मृत्युर्भद्रमस्तु ते ॥ ११ ॥

शब्दार्थ—एते एव असयः=ये ही तलवारें, तीक्ष्णाः=तेज, कृन्तन्ति=काटती

हैं, देहिनाम् = शरीरधारियों के, आयूंषि = आयु को, एनान् मानवान् = ये मानवों को, घ्नन्ति = मारती हैं, न मृत्युः = मृत्यु नहीं, ते भद्रमस्तु = तुम्हारा कल्याण हो।

हिन्दी—ये छः ही तीक्ष्ण तलवार हैं, ये ही शरीरधारियों की आयु को काटती है; मृत्यु नहीं। इसलिए हे राजन् ! अभिमान को छोड़ो और कल्याण प्राप्त करो।

विशेष—'ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमुपाघ्नत'। (वेद) अर्थात् ब्रह्मचर्य और तपस्या के द्वारा देवताओं ने मृत्यु को जीत लिया। इसलिए मृत्यु से बचने का एकमात्र यही उपाय है।

विश्वस्तस्यैति यो दारान् यश्चापि गुरुतल्पगः।
वृषलीपतिर्द्विजो यश्च पानपश्चैव भारत॥ १२॥
आदेशकृद् वृत्तिहन्ता द्विजानां प्रेषकश्च यः।
शरणागतहा चैव सर्वे ब्रह्महणः समाः।
एतैः समेत्य कर्त्तव्यं प्रायश्चित्तमिति श्रुतिः॥ १३॥

शब्दार्थ—भारत = हे भरतकुलश्रेष्ठ धृतराष्ट्र ! विश्वस्तस्य = विश्वस्त मनुष्य के, यः = जो, दारान् एति = स्त्रियों के पास जाता है, यः च अपि = और जो भी, गुरुतल्पगः = गुरुजनों एवं मान्यों की स्त्रियों के साथ सहवास करता है, वृषलीपतिः = वृषली स्त्री का पति, द्विजः = द्विज, यश्च पानपः = और जो मद्य पीनेवाला, आदेशकृत् = आदेश देने वाला, वृत्तिहन्ता = जीविका नष्ट करने वाला, द्विजानाम् = ब्राह्मणों को, प्रेषकः = आज्ञा देने वाला, यश्च = और जो, शरणागतहा = शरण में आये हुए को मारने वाला, सर्वे एव = सभी ही, ब्रह्महणः समाः = ब्रह्मघाती के समान हैं, एतैः समेत्य = इनके साथ सम्बन्ध करके, प्रायश्चित्तम् = प्रायश्चित करना चाहिए, इति श्रुतिः = यह वेद की आज्ञा है।

हिन्दी—हे धृतराष्ट्र ! जो विश्वासी पुरुषों की पत्नियों के पास जाता है, जो गुरुजनों (मान्यों) की स्त्रियों के साथ सहवास करता है, जो ब्राह्मण नीच स्त्री के साथ सम्बन्ध रखता है, जो शराब पीता है, जो स्वामी अपने अधीनों की जीविका नष्ट करता है, जो ब्राह्मणों को आदेश देता है तथा शरणागतों की रक्षा नहीं करता—ये सब ब्रह्महत्यारे के समान है। इनके साथ रहने पर भी प्रायश्चित करना चाहिए, ऐसा वेद कहता है।

विशेष—इसका अभिप्राय यह है कि धृतराष्ट्र से विदुर कहता है कि तुम्हारा पुत्र अभिमान तथा छल के वशीभूत होकर पाण्डवों का राज्य हरण करता है, अतः उसको सहयोग नहीं देना चाहिए। अन्यथा तुम भी उसके पापों का भागी बनोगे।

गृहीतवाक्यो नयविद् वदान्यः शेषान्नभोक्ता ह्यविहिंसकश्च।
नानार्थकृत्याकुलितः कृतज्ञः सत्यो मृदुः स्वर्गमुपैति विद्वान्॥ १४॥

शब्दार्थ—गृहीतवाक्यः = वाक्यों को जानने वाला, नयविद् = नीतिशास्त्रज्ञ, वदान्यः = दाता, शेषान्नभोक्ता = यज्ञशेष को खानेवाला, हि = निश्चय ही, अवि-

हिंसक:=हिंसा न करने वाला, नानार्थकृत्याकुलित:=अनर्थ करके जो दु:खी होता है, गलत न करने वाला, कृतज्ञ:=उपकार को मानने वाला, सत्य:=सत्य बोलने वाला, मृदु:=कोमल स्वभाव वाला, विद्वान्=विद्वान्, स्वर्गमुपैति=स्वर्ग प्राप्त करता है।

हिन्वी—जो विद्वान् नीतिशास्त्र को जानने वाला, दाता, यज्ञ के अवशेष को खाने वाला, हिंसा न करने वाला, गलत कार्यों को नहीं करने वाला, कोमल तथा सत्यवादी है, वह स्वर्ग को प्राप्त करता है।

सुलभा: पुरुषा राजन् सततं प्रियवादिन:।
अप्रियस्य तु पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभ:॥ १५॥

शब्दार्थ—राजन्=हे राजन्! सुलभा:=सुगमता से प्राप्त होने वाले, पुरुषा:=पुरुष, सततम्=निरन्तर, प्रियवादिन:=प्रिय बोलने वाले, अप्रियस्य=प्रिय न लगने वाले, तु=तो, पयस्य=हितकारी, वक्ता=कहने वाला, श्रोता=सुनने वाला, च=और, दुर्लभ:=दुर्लभ होता है।

हिन्दी—हे राजन्! इस संसार में प्रिय बोलने वाले लोग सुलभ होते हैं, लेकिन अप्रिय होते हुए भी हितकारी वचन बोलने वाला दुर्लभ होता है।

यो हि धर्मं समाश्रित्य हित्वा भर्तु: प्रियाप्रिये।
अप्रियाण्याह पथ्यानि तेन राजा सहायवान्॥ १६॥

शब्दार्थ—यो हि=जो निश्चय ही, धर्मं समाश्रित्य=धर्म का आश्रय करके, प्रियाप्रिये=प्रिय और अप्रिय को, भर्तु: हित्वा=स्वामी को छोड़कर, अप्रियाणि=अप्रिय वचन, पथ्यानि=हितकारी वचन, आह=कहता है, तेन=उससे, राजा=राजा, सहायवान्=सहायक होता है।

हिन्बी—जो व्यक्ति राजा के प्रिय और अप्रिय लगने की चिन्ता छोड़कर प्रिय न लगनेवाला हितकारी वचन कहता है, उससे राजा मित्रवान् होता है अर्थात् वही पुरुष राजा का मित्र होता है।

त्यजेत् कुलार्थे पुरुषं ग्रामस्यार्थे कुलं त्यजेत्।
ग्रामं जनपदस्यार्थे आत्मार्थे पृथिवीं त्यजेत्॥ १७॥

शब्दार्थ—कुलार्थे=कुल के लिए, पुरुषम्=पुरुष को, त्यजेत्=छोड़ देना चाहिए, ग्रामस्यार्थे=ग्राम के लिए, कुलम्=कुल को, त्यजेत्=छोड़ देना चाहिए, जनपदस्यार्थे=प्रदेश के लिए, ग्रामम्=ग्राम को छोड़ देना चाहिए, आत्मार्थे=आत्मा के लिए, पृथिवीम्=पृथ्वी के राज्य को, त्यजेत्=छोड़ देना चाहिए।

हिन्दी—मनुष्य को चाहिए कि कुल की उन्नति के लिए अहितकारी व्यक्ति को छोड़ दे, ग्राम के हित के लिए कुल को छोड़ दे, जनपद के हित के लिए ग्राम को छोड़ दे तथा अपने हित के लिए सम्पूर्ण पृथ्वी के राज्य को छोड़ दें। अर्थात् आत्मकल्याण सर्वविध करना चाहिए।

विशेष—यह नियम सार्वभौम है, जो नायक, नेता या राजा इस नियम का पालन नहीं करता है उस देश, समाज या जाति की सर्वविध उन्नति नहीं हो सकती है। उसका कोई भी जन पीड़ित, दलित या उपेक्षित रहेगा या उसे अपना प्राप्तांश नहीं मिलेगा, तो इसका प्रभाव सर्वत्र पड़ेगा। जिस परिवार का' नायक इस नियम का पालन नहीं करता, वह अपनी हानि तो करता ही है, साथ ही अपने कुल, ग्राम, नगर एवं प्रदेश के दुःख का कारण भी बनता है।

आपदर्थे धनं रक्षेद् दारान् रक्षेद् धनैरपि।
आत्मानं सततं रक्षेद् दारैरपि धनैरपि॥ १८॥

शब्दार्थ—आपदर्थे=संकटकाल के लिए, धनम्=धन की, रक्षेत्=रक्षा करे, दारान्=स्त्रियों की, धनैरपि रक्षेत्=धन से भी रक्षा करे, आत्मानम्=आत्मा की, अपने आपकी, सततं रक्षेत्=हमेशा रक्षा करे, दारैरपि=स्त्रियों से भी, और, धनैरपि =धनों से भी।

हिन्दी—संकटकाल के लिए धन की रक्षा करे, धन के द्वारा स्त्री की रक्षा करे तथा स्त्री एवं धन दोनों के द्वारा सदैव अपनी रक्षा करे। अर्थात् स्वयं स्त्री और धन में कदापि लिप्त न हो।

द्यूतमेतत् पुराकल्पे दृष्टं वैरकरं नृणाम्।
तस्माद् द्यूतं न सेवेत हास्यार्थमपि बुद्धिमान्॥ १९॥

शब्दार्थ—द्यूतमेतत्=यह जुआ, पुराकल्पे=पुराने समय में, नृणाम्=मनुष्यों में, वैरकरं दृष्टम्=शत्रुता उत्पन्न करने वाला देखा गया है, तस्मात्=इसलिए, द्यूतम्=जुए को, न सेवेत=सेवन नहीं करें, बुद्धिमान्=बुद्धिमान् मनुष्य, हास्यार्थम् +अपि=परिहास के लिए भी, हँसी-मजाक के लिए भी।

हिन्दी—प्राचीन समय में यह जुआ मनुष्यों में वैरकारक देखा गया है, इसलिए बुद्धिमान् मनुष्य हँसी-मजाक में भी जुआ न खेले।

विशेष—राजा नल जुआ में राज्य तथा सम्पूर्ण सम्पत्ति को हार गया था। जुए के कारण ही महाभारत जैसा भयङ्कर युद्ध हुआ, जिसमें भव्य भारत वर्ष का सर्वस्व स्वाहा हो गया। इस प्रकार अनेक उदाहरण भरे पड़े हैं। इसलिए मनुष्य को कभी जुआ नहीं खेलना चाहिए।

उक्तं मया द्यूतकालेऽपि राजन् नेदं युक्तं वचनं प्रातिपेय।
तदौषधं पथ्यमिवातुरस्य न रोचते तव वैचित्रवीर्य॥ २०॥

शब्दार्थ—राजन्=हे राजन्! मया=मेरे द्वारा, मैंने, द्यूतकाले=जुए के समय, उक्तम्+अपि=कहा भी था, प्रातिपेय=प्रतीप कुल में उत्पन्न, इदं वचनम्=वह वचन, न युक्तम्=हितकारी नहीं लगा, वैचित्रवीर्य=हे विचित्रवीर्य के पुत्र, तव औषधम्=वह औषध, पथ्यम्+इव=हितकारी के समान, आतुरस्य=रोगी के, तव न रोचते=तुमको अच्छा नहीं लगा है।

हिन्दी—हे विचित्रवीर्य के पुत्र धृतराष्ट्र ! मैंने जुए के समय भी कहा था कि 'जुआ खेलना बुरा है'—तब तुमको मेरा वह हितकारी वचन अच्छा नहीं लगा; जैसे रोगी को कड़वी हितकारी औषध अच्छी नहीं लगती है।

विशेष—यहाँ पर धृतराष्ट्र के लिए 'प्रातिपेय' विशेषण दिया है, जिसका अर्थ प्रतीपवंशीय लिया है। परन्तु अलंकारशास्त्र में एक प्रतीपालङ्कार होता है, जिसका अर्थ विपरीत होता है। अभिप्राय यह है कि धृतराष्ट्र की बुद्धि पुत्रमोह के कारण विपरीत हो गयी है तथा जैसे हितकारी कड़वी औषधि रोगी को अच्छी नहीं लगती, उसी प्रकार विदुर के हितकारी वचन धृतराष्ट्र को अच्छे नहीं लगे थे; इसी का स्मरण दिला रहे हैं।

काकैरिमांश्चित्रबर्हान् मयूरान् पराजयेथाः पाण्डवान् धार्तराष्ट्रैः।
हित्वा सिंहान् क्रोष्टुकान् गूहमानः प्राप्ते काले शोचिता त्वं नरेन्द्र ॥ २१ ॥

शब्दार्थ—नरेन्द्र = राजन्, त्वम् = तुम धृतराष्ट्र, इमान् चित्रबर्हान् = इन चित्र-विचित्र पूँछ वाले, मयूरान् = मयूरों को, पाण्डवान् = पाण्डवों को, काकैः = कौओं से, पराजयेथाः = पराजित करना चाहते हो, सिंहान् = सिंहों को, हित्वा = मारकर, क्रोष्टुकान् = सियारों को, गूहमानः = रक्षा करता हुआ, प्राप्ते काले = समय आने पर, शोचिता = शोक करोगे।

हिन्दी—हे राजन् ! तुम कौवों रूपी कौरवों से विचित्र पूँछ वाले मयूर रूपी पाण्डवों को पराजित करना चाहते हो। सिंह रूपी पाण्डवों को मारकर गीदड़ों की रक्षा करने पर अवसर आने पर शोक करोगे।

यस्तात न क्रुध्यति सर्वकालं भृत्यस्य भक्तस्य हिते रतस्य।
तस्मिन् भृत्या भर्तरि विश्वसन्ति न चैनमापत्सु परित्यजन्ति ॥ २२ ॥

शब्दार्थ—तात = हे भाई, यः = जो, भक्तस्य भृत्यस्य = भक्तसेवक के, हिते रतस्य = कल्याण में लगे हुए, सर्वकालम् = सभी समय में, न क्रुध्यति = नहीं क्रोध करता है, तस्मिन् भृत्याः = उस पर सेवक, भर्तरि = स्वामी में, विश्वसन्ति = विश्वास करते हैं, च + एनम् = और ऐसे स्वामी को, आपत्सु = विपत्तियों में, न परित्यजन्ति = नहीं छोड़ते हैं।

हिन्दी—हे भाई ! जो स्वामी के हित में लगे हुए भक्त सेवक के प्रति हर समय क्रोध नहीं करता है, उस स्वामी के प्रति सेवक विश्वास करते हैं और आपत्तियों के समय भी उसका परित्याग नहीं करते हैं।

न भृत्यानां वृत्तिसंरोधनेन राज्यं धनं सञ्जिघृक्षेदपूर्वम्।
त्यजन्ति ह्येनं वञ्चिता वै विरुद्धाः स्निग्धा ह्यमात्याः परिहीनभोगाः ॥ २३ ॥

शब्दार्थ—भृत्यानाम् = सेवकों के, वृत्तिसंरोधेन = निर्वाह के रोकने से, राज्यम् + धनम् = राज्य और धन को, न सञ्जिघृक्षेत् = ग्रहण करने की इच्छा न करे। अपूर्वम् = अभूतपूर्व, वञ्चिताः वै = वञ्चित किये गये, एनम् + हि = इस प्रकार निश्चय

ही, परिहीनभोगा: = निर्वाह से रहित हुए, अमात्या: = मन्त्री लोग, स्निग्धा: हि = स्नेह करने वाले भी, विरुद्धा: = विरोध हुए, त्यजन्ति = छोड़ देते हैं।

हिन्दी—सेवकों की जीविका हरण कर दूसरे के धन और राज्य को छीनने वाले स्वामी को जीविका से रहित हुए मन्त्री आदि स्नेह रखते हुए भी निश्चय ही विरुद्ध होकर छोड़ देते हैं।

कृत्यानि पूर्वं परिसंख्याय सर्वाण्यायव्यये चानुरूपां च वृत्तिम्।
सङ्गृह्णीयादनुरूपान् सहायान् सहायसाध्यानि हि दुष्कराणि ॥ २४ ॥

शब्दार्थ—पूर्वम् = पहले, कृत्यानि = कार्यों को, परिसंख्याय = गिनती करके, सर्वाणि = सबको, आयव्यये = आय और व्यय को, च अनुरूपाम् = और अनुकूल, च वृत्तिम् = और निर्वाह करने योग्य धन को, संगृह्णीयात् = संग्रह करे, अनुरूपान् सहायान् = अनुकूल सहायकों को, सहायसाध्यानि = सहायक सिद्ध होने वाले, हि = निश्चय ही, दुष्कराणि = कठिनता से प्राप्त होते हैं।

हिन्दी—पहले करणीय कार्यों और आय-व्यय के अनुरूप वृत्ति का निश्चय करके तत्पश्चात् योग्य सहायकों को एकत्र करे, क्योंकि दुष्कर कार्य सहायकों द्वारा ही सिद्ध होते हैं।

अभिप्रायं यो विदित्वा तु भर्तुः सर्वाणि कार्याणि करोत्यतन्द्री।
वक्ता हितानामनुरक्त आर्यः शक्तिज्ञ आत्मेव हि सोऽनुकम्प्यः ॥ २५ ॥

शब्दार्थ—यः = जो, अभिप्रायम् = अभिप्राय को, विदित्वा = जानकर, भर्तुः = स्वामी के, सर्वाणि कार्याणि = सभी कार्यों को, करोति = करता है, अतन्द्री = आलस्य रहित, वक्ता = बोलने वाला, हितानाम् = हितकारी कार्यों का, अनुरक्तः = अनुकूल भक्त, आर्यः = श्रेष्ठ, शक्तिज्ञः = अपनी शक्ति को जानने वाला, आत्मा इव = आत्मा के समान, सः अनुकम्प्यः = वह अनुकम्पा के योग्य है।

हिन्दी—जो सेवक स्वामी के अभिप्राय को जानकर निरालस्य होकर सब कार्यों को करता है, हितकारी बात करने वाले स्वामी से अनुराग करने वाला सज्जन तथा राजा की शक्ति को जानने वाला है; उसे अपने समान समझ कर ही कृपा करनी चाहिए।

वाक्यं तु यो नाद्रियतेऽनुशिष्टः प्रत्याह यश्चापि नियुज्यमानः।
प्रज्ञाभिमानी प्रतिकूलवादी त्याज्यः स तादृक् त्वरयैव भृत्यः ॥ २६ ॥

शब्दार्थ—वाक्यम् = वचन को, अनुशिष्टः = आदेश दिया हुआ, तु = तो, यः न आद्रियते = जो नहीं आदर करता है, यः च = और जो, नियुज्यमानः = कार्य में लगाने पर, प्रत्याह = प्रत्युत्तर देता है, प्रज्ञाभिमानी = अपने ऊपर अभिमान करने वाला, प्रतिकूलवादी = विपरीत कहने वाला, सः = वह, तादृक् भृत्यः = ऐसे नौकर को, त्वरया एव = शीघ्र ही, त्याज्यः = छोड़ देना चाहिए।

हिन्दी—जो नौकर आदेश देने पर उसके वचन का आदर नहीं करता है, कार्य में लगाने पर प्रत्युत्तर देता है, अपनी बुद्धि का घमण्ड करने वाला तथा विपरीत बोलता है; ऐसे नौकर को शीघ्र ही छोड़ देना चाहिए।

अस्तब्धमक्लीबमदीर्घसूत्रं सानुक्रोशं श्लक्ष्णमहार्यमन्यैः।
अरोगजातीयमुदारवाक्यं दूतं वदन्त्यष्टगुणोपपन्नम् ॥ २७ ॥

शब्दार्थ—अस्तब्धम् = अभिमान से रहित को, अक्लीबम् = सामर्थ्ययुक्त को, दीर्घसूत्रम् = शीघ्र कार्य करने वाले को, सानुक्रोशम् = दयायुक्त को, श्लक्ष्णम्=सुयोग्य को, अहार्यम् = भेदन नहीं करने योग्य को, अन्यैः = दूसरों से, अरोगजातीयम् = स्वस्थ को, उदारवाक्यम् = युक्तियुक्त वचन बोलने वाले को, अष्टगुणोपपन्नम् = आठ गुणों से युक्त को, दूतं वदन्ति = दूत कहते हैं।

हिन्दी—जो व्यक्ति अभिमान रहित, सामर्थ्ययुक्त, शीघ्र कार्यों को करने वाला, दूसरों से अभेद्य, स्वस्थ और ठीक वचन बोलने वाले को दूत कहते हैं। अर्थात् दूत में ये आठ गुण होते हैं।

न विश्वासाज्जातु परस्य गेहे गच्छेन्नरश्चेतयानो विकाले।
न चत्वरे निशि तिष्ठेन्निगूढो न राजकाम्यां योषितं प्रार्थयीत ॥ २८ ॥

शब्दार्थ—परस्य गेहे = दूसरे के घर में, जातु = कभी भी, विश्वासात् = विश्वास से, न गच्छेत् = न जा सके, नरः चेतयानः = मूर्ख पुरुष, विकाले = असमय में जाय, चत्वरे = चबूतरे पर, निशि = रात्रि में, निगूढः = छिपकर, न तिष्ठेत् = न रह सके, राजकाम्याम् = राजा के इच्छानुसार, योषितम् = स्त्री को, न प्रार्थयीत = न चाहे।

हिन्दी—जो दूसरे के घर कभी भी विश्वासपूर्वक न जा सके और असमय में चला जाय, चबूतरे के ऊपर रात्रि में छिपकर न रह सके तथा राजा की इच्छा के अनुसार स्त्री को प्रार्थना न करे—इन सबसे राजा का व्यवहार नहीं होना चाहिए।

न निह्नवं मन्त्रगतस्य गच्छेत् संसृष्टमन्त्रस्य कुसङ्गतस्य।
न च ब्रूयान्नाश्वसिमि त्वयीति सकारणं व्यपदेशं तु कुर्यात् ॥ २९ ॥

शब्दार्थ—मन्त्रगतस्य = विचारित मन्त्रों को, निह्नवम् = दबाने को, न गच्छेत् = न कर सके, मन्त्र के छिपाने में समर्थ न हो, कुसङ्गतस्य=बुरी संगत वाले, संसृष्टमन्त्रस्य = बहुविध विचार वाले मन्त्रों को, न च ब्रूयात् = न कहे, नाश्वसिमि = विश्वास नहीं करता हूँ, त्वयि = तुझमें, इति सकारणम् = ऐसा कारण सहित, व्यपदेशम् = कहने में, तु = तो, कुर्यात् = करे। ऐसे जनों से राजा को व्यवहार नहीं करना चाहिए।

हिन्दी—मन्त्रणाओं को न छिपा सके, कुमन्त्रों का विरोध न कर सके, 'तुझमें विश्वास नहीं करता हूँ' इस प्रकार कहे—ऐसे जनों से राजा को व्यवहार नहीं करना चाहिए।

घृणी राजा पुंश्चली राजभृत्यः पुत्रो भ्राता विधवा बालपुत्रा।
सेनाजीवी चोद्धृतभूतिरेव व्यवहारेषु वर्जनीयाः स्युरेते ॥ ३० ॥

शब्दार्थ—घृणी राजा = लज्जावान् राजा, पुंश्चली=वेश्या, राजभृत्यः = राजा का सेवक हो, पुत्रः = पुत्र, भ्राता = भाई, विधवा = विधवा, जिसका पति मर गया हो,

बालपुत्रा = छोटे बच्चों वाली, सेनाजीवी = सेना में रहकर जीविका निर्वाह करने वाला सैनिक, उद्धृतभूति: = अधिकार से हटाया गया अधिकारी, एते = ये, व्यवहारेषु = व्यवहार में, वर्जनीया: = छोड़ने योग्य, स्यु: = होते हैं।

हिन्दी—लज्जावान् राजा, वेश्या, राजसेवक, पुत्र, भाई, विधवा स्त्री, सैनिक और अधिकार से हटाया गया अधिकारी—ये सब राजा के व्यवहार के लिए नहीं होते हैं।

अष्टौ गुणा: पुरुषं दीपयन्ति प्रज्ञा च कौल्यं च श्रुतं दमश्च।
पराक्रमश्चाबहुभाषिता च दानं यथाशक्ति कृतज्ञता च॥ ३१॥

नोट—इस श्लोक की अध्याय १।१०४ तथा ३।५३ में व्याख्या की गयी है। यहाँ केवल 'श्रुतं दमश्च' का क्रमभेद मात्र दिखाया गया है।

एतान् गुणांस्तात महानुभावान् एको गुण: संश्रयते प्रसह्य।
राजा यदा सत्कुरुते मनुष्यं सर्वान् गुणानेष गुणो बिभर्ति॥ ३२॥

नोट—यह श्लोक अ० ३।५४ में आ गया है, अत: इसका शब्दार्थ वहीं अवलोकन करें।

गुणा दश स्नानशीलं भजन्ते बलं रूपं स्वरवर्णप्रशुद्धि:।
स्पर्शश्च गन्धश्च विशुद्धता च श्री: सौकुमार्यं प्रवराश्च नार्य:॥ ३३॥

शब्दार्थ—दश गुणा: = दश गुण, स्नानशीलम् = स्नान करने वाले को, भजन्ते = प्राप्त होते हैं, बलं रूपम् = बल, रूप, स्वरवर्णप्रशुद्धि: = स्पष्ट उच्चारण, स्पर्श: = स्पर्श का ज्ञान, च = और, गन्ध: = गन्ध, च विशुद्धता = और शुद्धता, च श्री: = और कान्ति, सौकुमार्यम् = कोमलता, प्रवरा: = श्रेष्ठ, च नार्य: = और स्त्रियाँ।

हिन्दी—नित्य स्नान करने वाले मनुष्य को दस लाभ प्राप्त होते हैं—शक्ति, सुन्दरता, मधुर स्वर, उज्ज्वल रंग, कोमलता, सुगन्ध, पवित्रता, शोभा, सुकुमारता तथा सुन्दर स्त्रियाँ।

विशेष—नित्य स्नान करने वाले को ये गुण प्राप्त होते हैं, स्नान नहीं करने वाले को इसके विपरीत दस अवगुण स्वत: मिल जाते हैं।

गुणाश्च षण्मितभुक्तं भजन्ते आरोग्यमायुश्च बलं सुखं च।
अनाविलं चास्य भवत्यपत्यं न चैनमाद्यून इति क्षिपन्ति॥ ३४॥

शब्दार्थ—षट् गुणा: = छ: गुण, मितभुक्तम् = परिमित खाने वाले को, भजन्ते = प्राप्त होते हैं, आरोग्यम् = स्वस्थता, आयु: = जीवन, च बलम् = और बल, सुखं च = और सुख, अनाविलम् = दोषरहित, च अस्य = और इसके, अपत्यम् = पुत्र, भवति = होता है, एनम् = इसको, आद्यून = पेटू, इति न क्षिपन्ति = ऐसी निन्दा नहीं करते हैं।

हिन्दी—अल्पाहारी को छ: गुण प्राप्त होते हैं—नीरोग रहना, आयु, शक्ति और सुख, 'इनकी सन्तान सुन्दर होती है' तथा 'यह अधिक खाने वाला है' ऐसा कहकर लोग उस पर आक्षेप नहीं करते हैं।

अकर्मशीलं च महाशनं च लोकद्विष्टं बहुमायं नृशंसम् ।
अदेशकालज्ञमनिष्टवेषमेतान् गृहे न प्रतिवासयेत ॥ ३५ ॥

शब्दार्थ — अकर्मशीलम् = कर्म नहीं करने वाले को, च = और, महाशनम् = अधिक खाने वाले को, च = और, लोकद्विष्टम् = लोकनिन्दित को, बहुमायम् = बहुत प्रपञ्च करने वाले को, नृशंसम् = दुष्ट को, अदेशकालज्ञम् = देशकाल को नहीं जानने वाले को, अनिष्टवेषम् = निन्दित वस्त्र धारण करने वाले को, एतान् गृहे = इनको घर में, न प्रतिवासयेत् = न बसाये ।

हिन्दी — काम नहीं करने वाला, बहुत खाने वाला, लोगों से द्वेष करने वाला, अधिक मायावी, क्रूर, देश और काल का ज्ञान नहीं रखनेवाला तथा निन्दित वेष धारण करने वाला — इन लोगों को घर में वास न करने दे ।

कदर्यमाक्रोशकमश्रुतं च वनौकसं धूर्तममान्यमानिनम् ।
निष्ठूरिणं कृतवैरं कृतघ्नमेतान् भृशार्तोऽपि न जातु याचेत् ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ—कदर्यम् = कंजूस को, आक्रोशकम् = गाली देने वाले को, अश्रुतम्=मूर्ख को, च = और, वनौकसम् = जंगली को, धूर्त्तम् = जुआरी को, अमान्यमानिनम् = अपात्र को मान देने वाले को, निष्ठूरिणम् = निर्दयी को, कृतवैरम् = शत्रुता से युक्त को, कृतघ्नम् = कृतघ्नी को, एतान् = इनको, भृशार्त्तोऽपि = अत्यधिक दुःखी होने के बाद भी, न जातु याचेत् = कभी याचना न करे, कभी नहीं मांगे ।

हिन्दी — कंजूस, गाली देने वाला, मूर्ख, जंगली, धूर्त, अपात्र को मान देने वाला, निर्दयी और वैरी — इन व्यक्तियों से बहुत अधिक दुःखी होने के बाद भी याचना न करे।

सङ्क्लिष्टकर्माणमतिप्रमादं नित्यानृतं चादृढभक्तिकं च ।
विसृष्टरागं पटुमानिनं चाप्येतान् न सेवेत नराधमान् षट् ॥ ३७ ॥

शब्दार्थ—सङ्क्लिष्टकर्माणम्=अत्यन्त कठोर कर्म करने वाले को, अतिप्रमादम् = अत्यन्त आलसी को, नित्यानृतम् = सदा असत्य बोलने वाले को, च = और, अदृढ-भक्तिकम् = जिसकी भक्ति दृढ़ नहीं है, च = और, विसृष्टरागम् = राग रहित को, पटुमानिनम् = अपने को चतुर मानने वाले को, च अपि = और भी, एतान् = इनको, नराधमान् = नीच पुरुषों को, षट् न सेवेत = छः का सेवन न करे ।

हिन्दी — आततायी, अतिप्रमादी, सदा झूठा, दिखावटी भक्ति वाला, नष्ट स्नेह वाला और अपने को चतुर मानने वाला — इन छः नीच पुरुषों का संग न करे ।

विशेष—शास्त्रों में आततायी को मारने तथा उसके साथ संग के लिए मना किया है । घर में अग्नि देने वाला, विष देने वाला, शस्त्र हाथ में लेकर मारने वाला, धन छीनने वाला, पत्नी और खेत का अपहरण करने वाला — ये छः आततायी होते हैं । ये कोई भी हों, उसे देखते ही मारने में किसी प्रकार का दोष नहीं माना गया है ।

सहायबन्धना ह्यर्थाः सहायाश्चार्थबन्धनाः ।
अन्योऽन्यबन्धनावेतौ विनान्योऽन्यं न सिध्यतः ॥ ३८ ॥

शब्दार्थ—सहायबन्धनाः = सहायक हैं बन्धन जिनके ऐसे, हि अर्थाः = निश्चय ही धन हैं, सहायाः = मित्र, अर्थबान्धवाः = अर्थ है बांधने वाले जिनके, एतौ = ये दोनों, अन्योऽन्यबन्धनौ = एक-दूसरे के बाँधने वाले होते हैं, अन्योन्यं विना = एक-दूसरे के बिना, न सिध्यतः = सिद्ध नहीं होते हैं।

हिन्दी—मित्रों को बांधने वाले अर्थ होते हैं और अर्थों को बांधने वाले मित्र—ये दोनों एक-दूसरे को बांधने वाले हैं, एक-दूसरे के बिना ये सिद्ध नहीं होते हैं।

उत्पाद्य पुत्राननृणांश्च कृत्वा वृत्तिं चे तेभ्योऽनुविधाय काञ्चित्।
स्थाने कुमारीः प्रतिपाद्य सर्वा अरण्यसंस्थोऽथ मुनिर्बुभूषेत् ॥ ३९ ॥

शब्दार्थ—पुत्रान् = पुत्रों को, उत्पाद्य = उत्पन्न करके, अनृणाम् = ऋण रहित, च = और, कृत्वा = करके, तेभ्यः = उनके लिए, वृत्तिम् = निर्वाह-साधन, अनुविधाय = व्यवस्था करके, काञ्चित् = किसी, स्थाने = उचित स्थान में, कुमारीः = कन्याओं को, प्रतिपाद्य = देकर, सर्वाः = सबको, अरण्यसंस्थः = वन में रहने वाला, अथ = अनन्तर, मुनिः = तपस्वी, बुभूषेत् = होने की इच्छा करे।

हिन्दी—पुत्रों को उत्पन्न करके, उन्हें ऋणरहित करके, उनके जीवन-निर्वाह के लिए व्यवस्था करके तथा कन्याओं का उचित वर से विवाह करके वानप्रस्थ आश्रम में रहकर वन में मुनि रूप में होने की इच्छा करे।

हितं यत् सर्वभूतानामात्मनश्च सुखावहम्।
तत् कुर्यादीश्वरे ह्येतन्मूलं सर्वार्थसिद्धये ॥ ४० ॥

शब्दार्थ—यत् = जो, सर्वभूतानाम् = सब भूतों के, हितम् = हितकारी, आत्मनश्च = और अपने लिए, सुखावहम् = सुख देने वाला है, तत् = वह, ईश्वरे = ईश्वर में, कुर्यात् = करे, एतत् हि = यही, सर्वार्थसिद्धये = सभी प्रकार की सिद्धि के लिए, मूलम् = मूल है।

हिन्दी—जो सबके लिए हितकारी है और अपने लिए भी सुखकारक है, वही करना चाहिए। इसके द्वारा धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष रूपी पुरुषार्थों की प्राप्ति होती है।

वृद्धिः प्रभावस्तेजश्च सत्त्वमुत्थानमेव च।
व्यवसायश्च यस्य स्यात् तस्यावृत्तिभयं कुतः ॥ ४१ ॥

शब्दार्थ—यस्य = जिसकी, वृद्धिः = धन की वृद्धि, प्रभावः = प्रभाव, तेजः = शूरता, च = और, सत्त्वम् = सात्त्विकता, उत्थानम् = प्रयत्न, एव च = और ही, व्यवसायः = और व्यवसाय, स्यात् = हो, तस्य = उसका, कुतः = कहाँ से, अवृत्तिभयम् = निर्वाह का भय कैसे हो सकता है, अर्थात् उसे सर्वत्र निर्वाह-साधन मिलेंगे।

हिन्दी—जिस मनुष्य की धनवृद्धि, प्रभाव, तेज, श्रेष्ठ उन्नति और व्यवसाय हो, उसे जीविका-निर्वाह का भय कैसे हो सकता है?

पश्य दोषान् पाण्डवैर्विग्रहे त्वं यत्र व्यथेयुरपि देवाः सशक्राः।
पुत्रैर्वैरं नित्यमुद्विग्नवासो यशःप्रणाशो द्विषतां च हर्षः ॥ ४२ ॥

शब्दार्थ—त्वम् = तुम, पाण्डवैः = पाण्डवों के साथ, विग्रहे = युद्ध में, दोषान् = दोषों को, पश्य = देखो, यत्र = जहाँ पर, सशक्राः = इन्द्र सहित, देवाः अपि = देवता भी, व्यथेयुः = पीड़ित हो, पुत्रैर्वैरम् = पुत्रों के साथ शत्रुता, नित्यम् = नित्य, उद्विग्नवासः = उद्वेग के साथ रहने वाला, यशःप्रणाशः = यश का नाश करने वाला, द्विषतः = शत्रुओं को, हर्षः = प्रसन्नता प्राप्त हो रहा है ।

हिन्दी—हे धृतराष्ट्र ! पाण्डवों के साथ युद्ध करने से दोषों को देखो, जहाँ पर इन्द्र सहित देवता भी पीड़ा को प्राप्त होंगे, पुत्रों के साथ शत्रुता, उद्वेग के साथ नित्य निवास, यशनाश तथा शत्रुओं को हर्ष होगा.। अतः ऐसा कार्य नहीं करना चाहिए ।

भीष्मस्य कोपस्तव चैवेन्द्रकल्प द्रोणस्य राज्ञश्च युधिष्ठिरस्य ।
उत्सादयेल्लोकमिमं प्रवृद्धः श्वेतो ग्रहस्तिर्यगिवापतन् खे ॥ ४३ ॥

शब्दार्थ—इन्द्रकल्प = हे इन्द्र के तुल्य ! भीष्मस्य = भीष्मपितामह का, तव च = और तुम्हारा, द्रोणस्य = द्रोणाचार्य का, राज्ञः युधिष्ठिरस्य = राजा युधिष्ठिर का, कोपः = क्रोध, प्रवृद्धः = बढ़ा हुआ, इमं लोकम् = इस लोक को, उत्सादयेत् = नष्ट कर दे, इव = यथा, श्वेतः ग्रहः = श्वेत ग्रह धूमकेतु, खे = आकाश में, तिर्यग् आपतन् = तिरछी गति से गिरता हुआ संसार का नाश कर देता है ।

हिन्दी—हे इन्द्रतुल्य धृतराष्ट्र ! भीष्म, द्रोण, राजा युधिष्ठिर और तुम्हारा बढ़ा हुआ कोप इस संसार को नष्ट कर देगा; जैसे तिरछी गति से आकाश में चलता हुआ धूमकेतु संसार को नष्ट कर देता है ।

तव पुत्रशतं चैव कर्णः पञ्च च पाण्डवाः ।
पृथिवीमनुशासेयुरखिलां सागराम्बराम् ॥ ४४ ॥

शब्दार्थ—तव = तुम्हारे, पुत्रशतम् = सौ पुत्र, च = और, च एव = और ही, कर्णः = कर्ण, पञ्च च पाण्डवाः = पाँचों पाण्डव, सागराम्बराम् = समुद्र और आकाश सहित, अखिलाम् = समस्त, पृथिवीम् = पृथिवी को, अनुशासेयुः = शासन करें ।

हिन्दी—हे धृतराष्ट्र ! सौ तुम्हारे पुत्र, कर्ण और पाँच पाण्डव मिलकर आकाश सहित सम्पूर्ण पृथिवी का शासन करें ।

धार्तराष्ट्रा वनं राजन् व्याघ्राः पाण्डुसुता मताः ।
मां वनं छिन्धि सव्याघ्रं मा व्याघ्रा नीनशन् वनात् ॥ ४५ ॥
न स्याद् वनमृते व्याघ्रान् व्याघ्रा न स्युर्ऋते वनम् ।
वनं हि रक्ष्यते व्याघ्रैर्व्याघ्रान् रक्षति काननम् ॥ ४६ ॥

शब्दार्थ—राजन् = हे राजन् धृतराष्ट्र ! धार्तराष्ट्राः = धृतराष्ट्र के पुत्र कौरव, वनम् = वन के समान हैं, पाण्डुसुताः = पाण्डु के पुत्र युधिष्ठिरादि, व्याघ्राः मताः = व्याघ्र के समान माने गये हैं, मा वनं छिन्धि = वन को मत काटो, सव्याघ्रम् = व्याघ्र सहित, व्याघ्राः = बाघ, मा नीनशन् = नष्ट मत हो, वनात् = वन से, व्याघ्रान् = बाघों को, वनं ऋते = वन बिना, मा स्यात् = मत हो, व्याघ्राः = बाघ, ऋते वनम् =

वन के बिना, न स्युः = न हों, वनं हि = वन को ही, व्याघ्रैः = बाघों के द्वारा, रक्ष्यते = रक्षा होती है, व्याघ्रान्=बाघों की, काननम् = वन, रक्षति=रक्षा करता है।

हिन्दी—हे राजन् धृतराष्ट्र ! तुम्हारे पुत्र दुर्योधनादि वन के समान हैं और पाण्डव व्याघ्र के समान हैं, अतः बाघ सहित वन को नष्ट मत करो और न वन से बाघ को; क्योंकि बाघों के बिना वन नहीं रहता और वन के बिना बाघ। वन की रक्षा बाघों से होती है और बाघों की रक्षा वन से। अतः कौरव-पाण्डव रूपी वन एवं बाघ मिलकर रहें तथा एक-दूसरे की रक्षा करें, इसी में दोनों का कल्याण है।

न तथेच्छन्ति कल्याणान् परेषां वेदितुं गुणान् ।
यथैषां ज्ञातुमिच्छन्ति नैर्गुण्यं पापचेतसः ॥ ४७ ॥

शब्दार्थ—पापचेतसः = पापी, तथा = उस प्रकार, परेषां कल्याणान् = दूसरे के अच्छे गुणों को, न इच्छन्ति = इच्छा नहीं करते हैं, यथा = जिस प्रकार, एषाम् = इनके, नैर्गुण्यम् = दोषों को, ज्ञातुमिच्छन्ति = जानने की इच्छा करते हैं।

हिन्दी—दुर्जन लोग दूसरों के गुणों को जानने की इच्छा नहीं करते हैं, परन्तु उनके दोषों को जानने की इच्छा करते हैं।

विशेष—किसी ने कहा है—'क्रमेलकं केलिवनं प्रविश्यान्विष्यते कण्टकजालमेव'। अर्थात् ऊँट विहार-वन में प्रवेश कर बबूल के काँटों को ही खोजता है।

अर्थसिद्धिं परामिच्छन् धर्ममेवादितश्चरेत् ।
न हि धर्मादपैत्यर्थः स्वर्गलोकादिवामृतम् ॥ ४८ ॥

शब्दार्थ—अर्थसिद्धिम् = धन की सिद्ध के लिए, परामिच्छन् = अधिक चाहता हुआ भी, धर्ममेव = धर्म को ही, आदितः चरेत् = पहले आचरण करे, धर्मात् = धर्म से, अर्थः = धन, न हि अपैति = निश्चय ही दूर नहीं जाता है, इव = यथा, अमृतम् = अमृत, स्वर्गलोकात् = स्वर्गलोक से अलग नहीं होता है।

हिन्दी—अर्थ चाहता हुआ भी धर्म को ही प्रारम्भ से ही आचरण करना चाहिए, क्योंकि धर्म से अर्थ कभी भी अलग नहीं होता है। जैसे स्वर्गलोक से अमृत अलग नहीं होता है।

विशेष—अमृतपान करके देवता अमर हो गये। पुराणों एवं इतिहासों में वर्णित समुद्रमन्थन के द्वारा अमृत निकला। उसे पीने के लिए देवता और राक्षस एक साथ लड़ने लगे। विष्णु ने मोहिनी रूप धारण करके अमृत को देवताओं में बाँट दिया। इसके बाद भयङ्कर देवासुर संग्राम हुआ। इस प्रकार अमृत देवताओं के पास रहा और स्वर्गलोक से अमृत अलग नहीं हुआ।

यस्यात्मा विरतः पापात् कल्याणे च निवेशितः ।
तेन सर्वमिदं बुद्धं प्रकृतिर्विकृतिश्च या ॥ ४९ ॥

शब्दार्थ—यस्यात्मा = जिसकी आत्मा, पापात् = पाप से, विरतः = पृथक् है, कल्याणे = शुभकर्म में, च निवेशितः = और निवेशित है, तेन = उसने, सर्वमिदम् =

सब कुछ इसको, प्रकृतिः विकृतिः=जड़ संसार से लेकर परब्रह्म तक, या=जो, बुद्धम्=जाना है ।

हिन्दी--जिस पुरुष की आत्मा पाप से अलग है तथा धर्मकार्यों में लगा हुआ है उसने प्रकृति से लेकर परब्रह्म तक सब कुछ जान लिया है ।

यो धर्ममर्थं कामं च यथाकालं निषेवते ।
धर्मार्थकामसंयोगं सोऽमुत्रेह च विन्दति ॥ ५० ॥

शब्दार्थ—यः=जो, धर्ममर्थम्=धर्म और अर्थ को, च=और, यथाकालम्=यथासमय, निषेवते=सेवन करता है, सः=वह, धर्मार्थकामसंयोगम्=धर्म, अर्थ और काम के संयोग को, अमुत्रेह=इस लोक और परलोक में, च=और, विन्दति=प्राप्त करता है ।

हिन्दी—जो मनुष्य धर्म, अर्थ और काम का यथासमय सेवन करता है, वह इस लोक और परलोक में धर्म, अर्थ एवं काम को प्राप्त करता है ।

सन्नियच्छति यो वेगमुत्थितं क्रोधहर्षयोः ।
स श्रियो भाजनं राजन् यश्चापत्सु न मुह्यति ॥ ५१ ॥

शब्दार्थ—राजन्=हे राजन् धृतराष्ट्र ! यः=जो, क्रोधहर्षयोः=क्रोध और हर्ष के, उत्थितम्=उठे हुए, वेगम्=वेग को, संनियच्छति=रोकता है, सः=वह, श्रियः=सम्पत्ति का, भाजनम्=पात्र होता है, च=और, आपत्सु=विपत्तियों में, न मुह्यति=मोह को प्राप्त नहीं होता है ।

हिन्दी—हे राजन् ! जो मनुष्य क्रोध और हर्ष के वेग को ज्ञानपूर्वक शान्त कर लेता है, वह लक्ष्मी का पात्र बनता है तथा विपत्ति में मोह को प्राप्त नहीं होता है ।

बलं पञ्चविधं नित्यं पुरुषाणां निबोध मे ।
यत्तु बाहुबलं नाम कनिष्ठं बलमुच्यते ॥ ५२ ॥

शब्दार्थ—बलम्=बल, पञ्चविधम्=पांच प्रकार का, नित्यम्=सर्वदा, पुरुषाणाम्=पुरुषों का है, मे निबोध=मुझसे समझो, यत्तु=जो तो, बाहुबलं नाम=शारीरिक बल नाम का है, कनिष्ठं बलमुच्यते=सबसे लघु बल कहा जाता है ।

हिन्दी—हे राजन् ! पुरुषों का पांच प्रकार बल मुझसे समझो, जो शारीरिक बल है, वह सबसे निम्न स्तर का माना जाता है ।

अमात्यलाभो भद्रं ते द्वितीयं बलमुच्यते ।
तृतीयं धनलाभं तु बलमाहुर्मनीषिणः ॥ ५३ ॥

शब्दार्थ—भद्रम्=कल्याणकारक, अमात्यलाभः=मन्त्री मिलना, ते=तुम्हारा, द्वितीयम्=दूसरा, बलमुच्यते=बल कहा जाता है, तृतीयम्=तीसरा, धनलाभम्=धनप्राप्ति, तु=तो, मनीषिणः=मनीषियों ने, बलमाहुः=बल कहा है ।

हिन्दी—कल्याणकारक मन्त्री की प्राप्ति दूसरा बल कहा गया है । धनप्राप्ति होना मनीषियों ने तीसरा बल कहा है ।

यत्त्वस्य सहजं राजन् पितृपैतामहं बलम्।
अभिजातबलं नाम तच्चतुर्थं बलं स्मृतम् ॥ ५४ ॥

शब्दार्थ—राजन् = हे राजन्! यत्तु = जो तो, अस्य = इसका, सहजम् = स्वाभाविक, पितृपैतामहं बलम् = पिता-पितामह रूप बल है, अभिजातबलम् = अभिजात कुल का बल, नाम = नाम, तत् + बलम् = वह बल, चतुर्थं स्मृतम् = चौथा कहा गया है।

हिन्दी—हे राजन्! जो इस पुरुष का पिता, पितामह सम्बन्धी स्वाभाविक बल है, वह अभिजात बल कहलाता है; वह चौथा बल है।

येन त्वेतानि सर्वाणि सङ्गृहीतानि भारत।
यद् बलानां बलं श्रेष्ठं तत् प्रज्ञाबलमुच्यते ॥ ५५ ॥

शब्दार्थ—भारत = हे भरतकुलोत्पन्न धृतराष्ट्र! येन तु = जिसने तो, एतानि = सर्वाणि = ये सब, संगृहीतानि = संगृहीत किये हैं, यत् = जो, बलानां = बलों में, श्रेष्ठं बलम् = श्रेष्ठ बल है, तत् = वह, प्रज्ञाबलम् उच्यते = बुद्धिबल कहा जाता है।

हिन्दी—हे भरतकुल में उत्पन्न धृतराष्ट्र! जिस बल ने ये सब बल संगृहीत किये हैं, जो बलों का बल है, उसे बुद्धिबल कहा जाता है।

विशेष—'बुद्धिर्यस्य बलं तस्य निर्बुद्धेस्तु कुतो बलम्।
पश्य सिंहमदोन्मतः शशकेन निपातितः' ॥

अर्थात् जिसके पास बुद्धिबल है उसी के पास बल है, जिसके पास बुद्धि नहीं है उसे बल कहाँ? इस विषय में एक सुन्दर-सी कथा पञ्चतन्त्र में मिलती है। कथा इस प्रकार संक्षेप में है—

एक वन में एक गर्वीला सिंह रहता था। वह उस वन के जीवों को मारकर खा जाता था। एक दिन सभी वन्य जन्तुओं ने मिलकर एक-एक पशु प्रतिदिन भोज्य के रूप में जाना स्वीकार किया। इसी क्रम में एक दिन एक खरहे की बारी आयी। उसने मन में विचार किया कि मरना है ही, क्यों न विलम्ब से पहुँच कर बुद्धि का सहारा लिया जाय। विलम्ब से पहुँचने के बाद उसने सिंह से कहा कि महाराज! मार्ग में एक दूसरे सिंह ने मुझे रास्ते में रोक लिया था, लेकिन मैं बहुत विनती करके आपके पास आया हूँ। इस पर क्रोध से अन्धा होकर सिंह ने उस सिंह को दिखाने के लिए कहा। इस पर खरहे ने एक गहरे कुएँ के पास ले जाकर कहा कि आपके भय से वह इस कुएँ में छिप गया है। सिंह ने कुएँ में अपनी परछाईं देखकर क्रोध से छलांग लगा दी और उसमें डूब कर मर गया। बलोन्मत्त सिंह को बुद्धि के बल से एक छोटे-से खरहे ने मरवा दिया।

महते योऽपकाराय नरस्य प्रभवेन्नरः।
तेन वैरं समासज्य दूरस्थोऽस्मीति नाश्वसेत् ॥ ५६ ॥

शब्दार्थ—यः = जो, महते = बड़े के लिए, अपकाराय = अपकार के लिए, नरस्य

=पुरुष के, नरः=नर, प्रवहेत्=समर्थ हो, तेन वैरम्=उसके साथ वैर को, समासज्य=उत्पन्न करके, दूरस्थोऽस्मि=मैं दूर हूँ, इति=इस प्रकार, न आश्वसेत्=आश्वास्त न हो।

हिन्दी—जो मनुष्य किसी मनुष्य के बड़े उपकार के लिए समर्थ हो, उससे शत्रुता प्राप्त करके 'मैं दूर हूँ' इस प्रकार आश्वस्त न हो। शत्रुता करने के बाद उदासीन होने से हानि होती है।

विशेष—'विधाय वैरं सामर्ष्ये नरोऽरौ य उदासते।
प्रक्षिप्योदर्चिषं कक्षे शेरते तेऽभिमासतम्'॥ (शिशु २।४२)

अर्थात् जो मनुष्य शत्रु से शत्रुता करके तटस्थ हो जाता है वह सुखी घासों में आग लगाकर हवा के अभिमुख सोता है अर्थात् वह आग उसे शीघ्र ही जला देती है, वैसे ही शत्रुता करके तटस्थ रहनेवाला नष्ट हो जाता है।

स्त्रीषु राजसु सर्पेषु स्वाध्यायप्रभुशत्रुषु।
भोगेष्वायुषि विश्वासं कः प्राज्ञः कर्तुमर्हति॥ ५७॥

शब्दार्थ—स्त्रीषु=स्त्रियों में, राजसु=राजाओं में, सर्पेषु=सर्पों में, स्वाध्यायप्रभुशत्रुषु=स्वाध्याय, राजा और शत्रुओं में, भोगेषु=भोगों में, आयुषि=आयु में, कः प्राज्ञः=कौन बुद्धिमान्, विश्वासम्=विश्वास को, कर्तुमर्हति=कर सकता है?

हिन्दी—स्त्रियों, राजाओं, सर्पों, स्वाध्याय, स्वामी, शत्रुओं, भोगों और आयु के विषय में कौन बुद्धिमान् विश्वास कर सकता है?

विशेष—स्त्रियाँ और राजा स्वभाव से चंचल होते हैं। सर्प का स्वभाव ही डँसने वाला होता है। अनभ्यास से विद्या विष के समान हो जाती है। भोग से कभी शान्ति नहीं होती, अपितु बढ़ती है। आयु का कभी ठिकाना नहीं है, कब मर जाय। अतः विचारवान् इनके विषय में दृढ़चित्त नहीं होते हैं।

प्रज्ञाशरेणाभिहतस्य जन्तोश्चिकित्सकाः सन्ति न चौषधानि।
न होममन्त्रा न च मङ्गलानि नाथर्वणा नाप्यगदाः सुसिद्धाः॥ ५८॥

शब्दार्थ—प्रज्ञाशरेणाभिहतस्य=बुद्धिरूपी बाणों से मारने के बाद, तस्य जन्तोः=उस मनुष्य का, चिकित्सकः=चिकित्सा करने वाले डाक्टर, औषधानि=औषधियाँ, न च सन्ति=और नहीं है, न होममन्त्राः=होम के मन्त्र नहीं हैं, न च मङ्गलानि=और न उनके मङ्गल ही हैं, नाथर्वणाः=अथर्ववेद के मन्त्र भी नहीं हैं, न च=और न, सुसिद्धाः अच्छी प्रकार से बनी हुई, नापि अगदाः=दवाई भी नहीं है।

हिन्दी—बुद्धिरूपी बाण से मारे गये मनुष्य का न कोई चिकित्सक है और न कोई औषधि; न होम के मन्त्र काम आते हैं, न स्वस्तिवाचक श्लोक; न अथर्ववेद के मन्त्र काम आते हैं और न ठीक से बनी हुई दवाई काम आती है।

विशेष—बुद्धि की महत्ता का महात्मा विदुर ने १।४८, ५।५५, ५८ श्लोकों में वर्णन किया है। बुद्धि के प्रभाव का निदर्शन करते हुए चाणक्य ने मुद्राराक्षस में कहा है कि—

'एका केवलमेव साधनविधौ सेनाशतेभ्योऽधिका ।
नन्दोन्मूलनदृष्टवीर्यमहिमा बुद्धिस्तु मागान्मम' ॥

अर्थात् केवल एक सैकड़ों सेनाओं से अधिक नन्द को उन्मूलन करनेवाली मेरी बुद्धि न जाय और जिसको जाना है वह चला जाये ।

सर्पाश्चाग्निश्च सिंहश्च कुलपुत्रश्च भारत ।
नावज्ञेया मनुष्येण सर्वे ह्येतेऽतितेजसः ॥ ५९ ॥

शब्दार्थ—भारत=हे भरतवंशीय धृतराष्ट्र ! सर्पाः=सर्प, च अग्निः=और अग्नि, सिंहश्च=और सिंह, कुलपुत्रश्च=और कुलपुत्र, मनुष्येण=मनुष्य के द्वारा, नावज्ञेयाः=उपेक्षा नहीं करनी चाहिए, सर्वे एते हि=ये सब ही, अतितेजसः=अत्यन्त तेजस्वी होते हैं ।

हिन्दी—हे भरतकुल के धृतराष्ट्र ! मनुष्य सर्प, अग्नि, सिंह तथा कुलपुत्र का कभी तिरस्कार न करें, क्योंकि ये सब अत्यन्त तेजस्वी होते हैं ।

विशेष—सर्प तिरस्कार का बदला लेता है, सिंह भी वही करता है। अग्नि की चिनगारी ही सभी को जलाकर राख कर देती है। कुलपुत्र कभी भी उपेक्षा का पात्र नहीं होता है। एक ही विभीषण के अपमान के कारण सम्पूर्ण लङ्का नष्ट हो गयी। एक ही जयचन्द्र के विरोधी पक्ष में मिल जाने के कारण भारत देश गुलामी की बेड़ी में जकड़ने लगा। इसलिए कुलपुत्र की कभी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए।

अग्निस्तेजो महल्लोके गूढस्तिष्ठति दारुषु ।
न चोपयुङ्क्ते तद्दारु यावन्नोद्दीप्यते परैः ॥ ६० ॥
स एव खलु दारुभ्यो यदा निर्मथ्य दीप्यते ।
तद्दारु च वनं चान्यन्निर्दहत्याशु तेजसा ॥ ६१ ॥

शब्दार्थ—अग्नितेजः=अग्निरूप तेज, महल्लोके=लोक में श्रेष्ठ है, दारुषु=लकड़ियों में, गूढस्तिष्ठति=गुप्त रूप से छिपा है, तद्दारु=उस लकड़ी को, न च उपयुङ्क्ते=और उपयोग में नहीं लेता है। यावत्=जब तक, परो=दूसरे से, न दीप्यते=नहीं जलाता है, स एव खलु=निश्चय ही वही, दारुभ्यः=लकड़ियों से, यदा=जब, निर्मथ्य=रगड़ कर, दीप्यते=प्रज्वलित किया जाता है, तद्दारु=उस लकड़ी को, वनम्=वन को, अन्यच्च=और अन्य को, तेजसा=तेज से, आशु=शीघ्र ही, निर्दहति=निष्ठुरता से जला देता है।

हिन्दी—संसार में अग्नि श्रेष्ठ तेज है। वह लकड़ी में छिपा रहता है, परन्तु जब तक दूसरे लोग उसे नहीं जलाते हैं तब तक वह नहीं जलता है। वही अग्नि जब लकड़ियों को रगड़कर जला दिया जाता है तो वही आग सभी वनों तथा अन्य सभी को जलाकर राख कर देती है।

एवमेव कुले जाता पावकोपमतेजसः ।
क्षमावन्तो निराकाराः काष्ठेऽग्निरिव शेरते ॥ ६२ ॥

शब्दार्थ—एवमेव = इसी प्रकार, पावकोपमतेजसः = अग्नि के सदृश तेजवाले, कुले जाताः = कुल में उत्पन्न हैं, क्षमावन्तः = क्षमावान्, निराकाराः = आकार रहित, गुप्त रूप में छिपे हुए, काष्ठेऽग्निरिव = लकड़ी में आग के समान, शेरते = वर्तमान रहते हैं।

हिन्दी—इसी प्रकार कुलपुत्र आग के समान तेजस्वी होते हैं। क्षमावान् निराकार रूप में लकड़ी में अग्नि के समान गुप्त रहते हैं।

लताधर्मा त्वं सपुत्रः शालाः पाण्डुसुता मताः।
न लता वर्धते जातु महाद्रुममनाश्रिता ॥ ६३ ॥

शब्दार्थ—लताधर्माः = लता के समान, त्वं सपुत्रः = पुत्र सहित तुम हो, शालाः पाण्डुसुताः मताः = शालवृक्ष के समान पाण्डुपुत्र हैं, महाद्रुममनाश्रिताः = बड़े वृक्ष के सहारे के बिना, लता = लता, जातु = कभी भी, न वर्धते = नहीं बढ़ती है।

हिन्दी—हे राजन्! तुम और तुम्हारे पुत्र लता के समान हैं और पाण्डु के पुत्र युधिष्ठिरादि शाल वृक्ष के समान हैं। लता बिना वृक्ष के सहारे कभी नहीं बढ़ती है।

विशेष—विदुर ने धृतराष्ट्र से स्पष्ट किया कि तुम्हारे पुत्र भीष्म, कृप और कर्ण के सहारे बड़े पराक्रमी होते हुए भी लता के समान हैं, लेकिन पितृविहीन पाण्डव शाल वृक्ष के समान हैं। इसलिए तुम और तुम्हारे पुत्र पाण्डवों के सहारे के बिना आगे नहीं बढ़ सकते हो।

वनं राजंस्तव पुत्रोऽम्बिकेय सिंहान् वने पाण्डवांस्तात विद्धि।
सिंहैर्विहीनं हि वनं विनश्येत् सिंहाः विनश्येयुर्ऋते वनेन ॥ ६४ ॥

इति महाभारते उद्योगपर्वणि प्रजागरपर्वणि विदुरहितवाक्ये सप्तत्रिंशोऽध्यायः।

इति विदुरनीतौ पञ्चमोऽध्यायः।

शब्दार्थ—राजन् = हे राजन् धृतराष्ट्र! अम्बिकेय = अम्बिका के पुत्र! तव पुत्रः = तुम्हारा पुत्र, वनम् = वन के सदृश है, तात = हे भाई! पाण्डवान् = पाण्डवों को, सिंहान् विद्धि = सिंह समझो, सिंहैर्विहीनम् = सिंह के बिना, वनम् = वन, विनश्येत् = नष्ट हो जाय, ऋते वनम् = वन के बिना, सिंहाः विनेश्येयुः = सिंह नष्ट हो जायें।

हिन्दी—हे अम्बिका के पुत्र धृतराष्ट्र! तुम्हारे पुत्र वन के सदृश हैं और पाण्डव सिंह के सदृश। सिंहों के बिना वन नष्ट हो जाते हैं और वन सिंह के बिना। जैसे वन और सिंह एक-दूसरे के रक्षक हैं वैसे ही पाण्डव और कौरव एक-दूसरे के रक्षक है, अतः एक दूसरे की रक्षा करें।

विशेष—रक्षा करने से दोनों का कल्याण होगा नहीं तो विनाश तो निश्चित ही है।

इस प्रकार महाभारत के उद्योगपर्व में प्रजागरपर्व नाम के अवान्तर विभाग में विदुरहितवाक्य में सैंतीसवा अध्याय समाप्त हुआ।

इस प्रकार विदुरनीति में पञ्चम अध्याय की हिन्दी समाप्त।

षष्ठोऽध्यायः

विदुर उवाच—

ऊर्ध्वं प्राणा ह्युत्क्रामन्ति यूनः स्थविर आयति।
प्रत्युत्थानाभिवादाभ्यां पुनस्तान् प्रतिपद्यते ॥ १ ॥

शब्दार्थ—ऊर्ध्वम्=ऊपर को, यूनः प्राणाः=युवकों के प्राण, हि उत्क्रामन्ति=निश्चय ही ऊपर उठते हैं, स्थविरे=वृद्ध या श्रेष्ठ के, आयति=आने पर, प्रत्युत्थानाभिवादाभ्याम्=खड़े होने और अभिवादन करने से, पुनस्तान्=फिर उनको, प्रतिपद्यते=प्राप्त होता है।

हिन्दी—विदुर ने कहा—वृद्ध या श्रेष्ठ लोगों के आने से युवकों के प्राण ऊपर को उठते हैं, परन्तु खड़े होने और अभिवादन करने से पुनः अपने स्थान को प्राप्त हो जाता है।

विशेष—मनुष्य का जीवन ही प्राण है, अतः श्रेष्ठ जनों के दर्शन से उसमें आवेग उठता है। लेकिन प्रत्युत्थान एवं अभिवादन से वह स्वाभाविक हो जाता है। इसके अतिरिक्त भी अनेक फल बतलाये गये हैं—

'अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः।
चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुर्विद्या यशो बलम्' ॥

अर्थात् नित्य वृद्धों की सेवा करने तथा अभिवादन करने से आयु, विद्या, यश और बल इन चारों की वृद्धि होती है।

वास्तव में इस लोक में व्यावहारिक दृष्टि से इन चारों के अतिरिक्त क्या बचता है, जिसके लिए प्रयास किया जाय? अतः इसे प्राप्त करने लिए इनका सेवन अवश्य करना चाहिए।

पीठं दत्त्वा साधवेऽभ्यागताय आनीयापः परिनिर्णिज्य पादौ।
सुखं पृष्ट्वा प्रतिवेद्यात्मसंस्थां ततो दद्यादन्नमवेक्ष्य धीरः ॥ २ ॥

शब्दार्थ—पीठं दत्त्वा=आसन देकर, साधवे=सज्जन मनुष्य को, अभ्यागताय=आये हुए को, आपः आनीयः=जल लाकर, पादौ परिनिर्णिज्य=पाँव को धोकर, सुखं पृष्ट्वा=कुशलक्षेम पूछकर, आत्मसंस्थाम्=आत्म-समाचार को बताकर, प्रतिवेद्य=निवेदित करके, ततः=इसके बाद, धीरः=धीर मनुष्य, अवेक्ष्य=देखकर, अन्नं दद्यात्=भोजन देना चाहिए।

हिन्दी—धीर मनुष्य को चाहिए कि घर आये हुए सज्जन पुरुष को आसन देकर बैठावे, पाँव धोने के लिए जल दे, कुशल पूछकर अपना समाचार बतावे; इसके बाद भोजन करावे।

यस्योदकं मधुपर्कं च गां च न मन्त्रवित् प्रतिगृह्णाति गेहे ।
लोभाद् भयादथ कार्पण्यतो वा तस्यानर्थं जीवितमाहुरार्याः ॥ ३ ॥

शब्दार्थ—यस्य गेहे = जिसके घर में, मन्त्रवित् = मन्त्रों को जानने वाला विद्वान्, उदकम् = जल को, मधुपर्कम् = मधुपर्क को, गां च = और गाय को, लोभाद् = लोभ से, भयात् = भय से, कार्पण्यतः = कृपणता से, वा = अथवा, न प्रतिगृह्णाति = ग्रहण नहीं करता है, अथ = इसके बाद, आर्याः = सज्जन लोग, तस्य = उसका, जीवितम् = जीना, अनर्थम् = निरर्थक, आहुः = कहते हैं ।

हिन्दी—जिस कृपण मनुष्य के यहाँ लोभ, भय अथवा कृपणता से जल, मधुपर्क तथा गाय आदि को विद्वान् पुरुष को नहीं दिया जाता है; उसका जीना व्यर्थ है—ऐसा श्रेष्ठ लोग कहते हैं अर्थात् घर में आये हुए मनुष्य का सत्कार करना चाहिए ।

विशेष—'अतिथिदेवो भव' अर्थात् घर में आये हुए अतिथि की सेवा करें । यह राजाज्ञा के समान वेद की आज्ञा है । इसलिए 'आतिथ्यं गृहमेधिनाम्' अर्थात् गृहस्थों को अतिथि-सेवा करनी चाहिए—ऐसा कहा गया है । इसके लिए प्राचीन शास्त्रों में मधुपर्क (दूध, दही, घी, मधु और शक्कर) का उल्लेख है । इसी से सज्जनों का सत्कार करना चाहिए ।

चिकित्सकः शल्यकर्ताऽवकीर्णी स्तेनः क्रूरो मद्यपो भ्रूणहा च ।
सेनाजीवी श्रुतिविक्रायकश्च भृशं प्रियोऽप्यतिथिर्नोदकार्हः ॥ ४ ॥

शब्दार्थ—चिकित्सकः = पैसे लेकर दवा देने वाला, शल्यकर्ता = घाव करने वाला, अवकीर्णी = दुराचारी, स्तेनः = चोर, क्रूरः = क्रूर, मद्यपः = शराब पीने वाला, भ्रूणहा = गर्भ गिराने वाला, सेनाजीवी = सैनिक, श्रुतिविक्रायकः = श्रुति को बेचने वाला, भृशं प्रियोऽपि = अत्यधिक प्रिय सम्बन्धी रहने के बाद भी, न उदकार्हः = जल देने योग्य नहीं होता है ।

हिन्दी—द्रव्य लेकर दवाई देने वाला वैद्य, पीड़ा पहुँचाने वाला, ब्रह्मचर्यरहित, चोर, क्रूर, शराबी, गर्भपाती, सैनिक, वेदज्ञान को बेचने वाला, अत्यन्त प्रिय रहने पर भी घर आने पर सत्कार के पात्र नहीं होते हैं ।

विशेष—अपने अनुभवों के आधार पर किसी के जीवन की रक्षा करना उचित है, लेकिन केवल पैसे लेकर दवाई देना उचित नहीं माना गया है । इसलिए किसी ने कहा है—

'वैद्यराज नमस्तुभ्यं यमराजसहोदरः ।
यमस्तु हरते प्राणान् वैद्यः प्राणधनानि च' ॥

अर्थात् हे वैद्यराज ! तुमको नमस्कार करता हूँ, तुम यमराज के सहोदर या सदृश हो । यम तो केवल प्राण हरण करता है, परन्तु वैद्य (डॉक्टर) तो प्राण और धन दोनों का हरण कर लेता है ।

सेना में जो मातृभूमि और देशधर्म की अस्मिता की रक्षा करने के लिए प्रवेश

करते हैं, वे तो वन्दनीय हैं, परन्तु जो केवल पैसे के लिए प्रवेश लेता है वह गर्हित है। उसके विषय में निन्दा की गयी है।

वेदवाणी जानना और उसके अनुसार आचरण करना श्रेष्ठ है, लेकिन केवल पैसे के लिए वेद का अध्ययन-अध्यापन करना उचित नहीं माना है।

अविक्रय्यं लवणं पक्वमन्नं दधि क्षीरं मधु तैलं घृतं च।
तिला मांसं फलमूलानि शाकं रक्तं वासः सर्वगन्धा गुडाश्च ॥ ५ ॥

शब्दार्थ—लवणम् = नमक, पक्वमन्नम् = पका हुआ अन्न, दधि = दही, क्षीरम् = दूध, मधुम् = मधु, शहद, तैलम् = तेल, घृतम् = घृत, तिलाः = तिल, मांसम् = मांस, फलमूलानि = फलमूल, शाकम् = शाक, रक्तम् = खून, वासः = वस्त्र, सर्वगन्धाः = सब प्रकार के सुगन्ध, गुडाः = गुड़, अविक्रयम् = बेचने के योग्य नहीं हैं।

हिन्दी—नमक, पका हुआ अन्न, दही, दूध, शहद, तैल, घृत, तिल, मांस, फल, मूल, शाक, खून, वस्त्र, सब प्रकार के सुगन्ध और गुड़ बेचने के योग्य नहीं होते हैं। अर्थात् इन्हें नहीं बेचना चाहिए।

विशेष—कभी समय था, जब व्यक्ति अपने में ही रहता था। वर्तमान समय में सम्पूर्ण विश्व सिमटकर एक हो गया है। इसलिए एक-दूसरे के हित के लिए बेचना भी अनुचित नहीं माना जाता है, परन्तु आज भी रक्त बेचना अच्छा नहीं माना गया है, क्योंकि एक-दूसरे के रोग भी खून के माध्यम से चले जाते हैं। इसलिए वर्तमान समय में इस व्यापार को अच्छा नहीं माना जा रहा है।

आरोषणो यः समलोष्टाश्मकाञ्चनः प्रहीणशोको गतसन्धिविग्रहः।
निन्दाप्रशंसोपरतः प्रियाप्रिये त्यजन्नुदासीनवदेष भिक्षुकः ॥ ६ ॥

शब्दार्थ—यः = जो, आरोषणः = क्रोध न करने वाला, लोष्टाश्मकाञ्चनः = मिट्टी, पत्थर और सुवर्ण में समान दृष्टि रखने वाला, प्रहीणशोकः = जिसका शोक नष्ट हो गया है, गतसन्धिविग्रहः = स्नेह-वैर से रहित, निन्दाप्रशंसोपरतः = निन्दा-प्रशंसा दोनों से रहित, प्रियाप्रिये = प्रिय और अप्रिय को, त्यजन् = छोड़ता हुआ, एष भिक्षुकः = यह भिक्षुक, उदासीनवत् = उदासीन के समान है।

हिन्दी—क्रोध नहीं करने वाला, मिट्टी, पत्थर और सोने को समान देखने वाला, शोक रहित, वैरभाव एवं स्नेहभाव से रहित, निन्दा-प्रशंसा में समभाव रखने वाला तथा प्रिय-अप्रिय को छोड़ता हुआ यह भिक्षुक उदासीन के समान रहता है।

विशेष—समभावप्रधान तटस्थभाव से रहने वाले मुनि लोग राग-द्वेषविमुक्त होते हैं। उन्हें किसी वस्तु की आवश्यकता नहीं होती तथा वे किसी से अपेक्षा नहीं रखते, अतः सबसे सुखी हैं।

नीवारमूलेङ्गुदशाकवृत्तिः सुसंयतात्माग्निकार्येषु चोद्यः।
वने वसन्नतिथिष्वप्रमत्तो धुरन्धरः पुण्यकृदेष तापसः ॥ ७ ॥

शब्दार्थ—नीवारमूलेङ्गुदशाकवृत्तिः = नीवार, फल, मूल और शाकों से अपना

जीवन बिताने वाला, सुसंयतात्मा = जितेन्द्रिय, अग्निकार्येषु = यज्ञादि कार्यों में, चोद्यः = सावधान, वने वसन् = वन में निवास करते हुए, अतिथिषु=अभ्यागतों में, अप्रमत्तः प्रमाद रहित, धुरन्धरः = श्रेष्ठ, पुण्यकृत् = पुण्य करने वाला, एष तापसः = यह तपस्वी है।

हिन्दी—नीवार, फल, मूल एवं शाकों से अपना जीवन-निर्वाह करने वाला, जितेन्द्रिय, यज्ञकार्यों को करने वाला, वन में निवास करते हुए तथा अतिथि-सेवा करने वाला यह तपस्वी श्रेष्ठ कार्य करता है।

अपकृत्य बुद्धिमतो दूरस्थोऽस्मीति नाश्वसेत्।
दीर्घौ बुद्धिमतो बाहू याभ्यां हिंसति हिंसितः॥ ८॥

शब्दार्थ—अपकृत्य = अपकार करके, बुद्धिमतः=बुद्धिमान् पुरुष का, दूरस्थोऽस्मि = मैं दूर स्थित हूँ, इति न आश्वसेत् = ऐसा विश्वास न करे। बुद्धिमतः = बुद्धिमान् मनुष्य की, बाहू = भुजाएँ, दीर्घौ = लम्बी होती है, याभ्याम् = जिनके द्वारा, हिंसितः = अपकार करने के बाद, हिंसति = नष्ट कर देता है।

हिन्दी—बुद्धिमान् मनुष्य का अपकार करके 'मैं दूर स्थित हूँ' इस प्रकार से विश्वास न करे, क्योंकि बुद्धिमान् मनुष्य की लम्बी भुजाएँ होती हैं, जिनसे अपकार का बदला ले लेता है।

न विश्वसेदविश्वस्ते विश्वस्ते नातिविश्वसेत्।
विश्वासाद् भयमुत्पन्नं मूलान्यपि निकृन्तति॥ ९॥

शब्दार्थ—अविश्वस्ते = अविश्वस्त मनुष्य के ऊपर, न विश्वसेत् = विश्वास न करे, विश्वस्ते = विश्वस्त के ऊपर, न + अतिविश्वसेत्=अत्यधिक विश्वास न करे। विश्वासाद = विश्वास से, भयम् उत्पन्नम् = भय उत्पन्न होता है, मूल्यानि अपि = मूलों को भी, निकृन्तति = काट डालता है।

हिन्दी—अविश्वस्त के ऊपर विश्वास न करे और विश्वासी पर अत्यधिक विश्वास न करे। विश्वास से भय उत्पन्न होता है, जो जड़ों को भी काट देता है।

विशेष—विश्वासी मनुष्य भी कदाचित् अविश्वासी बन जाता है। अतः व्यवहार में अत्यन्त विश्वास करने के लिए नीतिकार ने मना किया है। साथ ही इस श्लोक के तृतीय एवं चतुर्थ चरण का पाठान्तर इस प्रकार भी मिलता है—

'कदाचित् कुपितं मित्रं सर्वं गुह्यं प्रकाशयेत्'।

अर्थात् कदाचित् किसी कारणवशात् विश्वासी मित्र भी कुपित हो जाय तो सभी गोपनीय बातों को प्रकाशित कर देगा। इसलिए अत्यन्त विश्वास के लिए निषेध किया गया है।

अनीर्षुर्गुप्तदारश्च संविभागी प्रियंवदः।
श्लक्ष्णो मधुरवाक् स्त्रीणां न चासां वशगो भवेत्॥ १०॥

शब्दार्थ—अनीर्षुः = ईर्ष्या नहीं करने वाला, गुप्तदारः = स्त्रियों की रक्षा करने

वाला, संविभागी च=और बाँटकर खाने वाला, प्रियंवदः=प्रिय बोलने वाला, श्लक्ष्णः=सरल स्वभाव वाला, मधुरवाक्=प्रिय बोलने वाला, स्त्रीणाम्=स्त्रियों के प्रति, आसाम्=इनके, न च वशगः=और न इनके वश में आने वाला, भवेत्=हो।

हिन्दी—मनुष्य ईर्ष्या-द्वेष करने वाला न हो, स्त्रियों की रक्षा करने वाला हो, उपभोग की सामग्री को बाँटकर खाने वाला, प्रिय बोलने वाला, सरल स्वभाव वाला, स्त्रियों का समादर करने वाला तथा उनके वश में न होने वाला होना चाहिए।

पूजनीया महाभागाः पुण्याश्च गृहदीप्तयः।
स्त्रियः श्रियो गृहस्योक्तास्तस्माद् रक्ष्या विशेषतः॥ ११॥

शब्दार्थ—पूजनीयाः=पूजा के योग्य, महाभागाः=महानुभाव, पुण्याः=पुण्य-रूप, स्त्रियः=स्त्रियाँ, गृहदीप्तयः=घर को प्रकाशित करने वाली होती हैं, श्रियः=शोभा स्वरूप, गृहस्य+उक्ताः=घर के लिए कही गयी हैं, तस्मात्=इसलिए, विशेषतः रक्ष्याः=विशेष रूप से रक्षा करने योग्य हैं।

हिन्दी—घर में स्त्रियाँ पूजनीया, महालक्ष्मीस्वरूपा, पुण्या, घर को प्रकाशित करने वाली होती है। स्त्रियाँ घर की लक्ष्मी होती हैं, इसलिए विशेष रूप से रक्षणीय हैं।

विशेष—घर स्त्रियों के लिए है, उसके बिना घर वन के समान है। इसलिए कहा गया है—

'न गृहं गृहमित्याहुः गृहिणी गृहमुच्यते।
तद्विना गृहं सत्यं यथारण्यं तथा गृहम्'॥

अर्थात् घर रहने से घर नहीं होता, गृहिणी के रहने से ही घर माना जाता है। इसके बिना तो सत्य ही घर में और वन में कोई अन्तर नहीं है।

पितुरन्तःपुरं दद्यात् मातुर्दद्यान्महानसम्।
गोषु चात्मसमं दद्यात् स्वयमेव कृषिं व्रजेत्॥
भृत्यैर्वाणिज्यचारं च पुत्रैः सेवेत च द्विजान्॥ १२॥

शब्दार्थ—पितुः=पिता को, अन्तःपुरम्=गृहरक्षा का भार, दद्यात्=देना चाहिए, महानसम्=रसोईघर का भार, मातुः दद्यात्=माता को देना चाहिए, गोषु=गौओं की रक्षा आदि का भार, आत्मसमं दद्यात्=अपने समान लोगों को देना चाहिए, स्वयमेव कृषिं व्रजेत्=स्वयं कृषि का कार्य देखे, भृत्यैः=नौकरों के द्वारा, वाणिज्यचारं=व्यापार कराना चाहिए, पुत्रैः=पुत्रों के द्वारा, द्विजान्=ब्राह्मणों को, सेवेत=सेवा करे।

हिन्दी—पिता को गृहरक्षा का भार देना चाहिए, माता को रसोईघर का भार देना चाहिए, अपना हित करने वाले को गोरक्षा का भार तथा कृषिकार्य को स्वयं करना चाहिए; नौकरों को व्यापार और पुत्रों को ब्राह्मणों की सेवा करने में लगाना चाहिए।

अद्भ्योऽग्निर्ब्रह्मतः क्षत्रमश्मनो लोहमुत्थितम् ।
तेषां सर्वत्रगं तेजः स्वासु योनिषु शाम्यति ।। १३ ।।

शब्दार्थ—अद्भ्यः = जलों से, अग्निः = अग्नि, ब्रह्मतः = ब्राह्मण से, क्षत्रम् = क्षत्रिय, अश्मनः = पाषाणों से, लोहम् = लोहा आदि धातुएँ, उत्थितम् = उत्पन्न हुई है, तेषाम् = उन सभी का, सर्वत्रगम् = सबमें वर्तमान, तेजः = तेज, स्वासु योनिषु = अपनी योनियों में, शाम्यति = शान्त होता है ।

हिन्दी—जल से अग्नि, ब्रह्म से क्षत्रिय, पाषाण से लोहा आदि धातु उत्पन्न होने वाली, उन सभी का सर्वत्र जाने वाला तेज अपनी योनियों में शान्त हो जाता है ।

नित्यं सन्तः कुले जाताः पावकोपमतेजसः ।
क्षमावन्तो निराकाराः काष्ठेऽग्निरिव शेरते ।। १४ ।।

शब्दार्थ—सन्तः कुले जाताः = सज्जनों के कुल में उत्पन्न, नित्यम् = नित्य, पावकोपमतेजसः = अग्नि के समान तेज वाले, क्षमावन्तः = क्षमाशील, निराकाराः = आकार रहित, काष्ठे अग्निः इव = लकड़ी में आग के समान, शेरते = वर्तमान रहते हैं ।

हिन्दी—श्रेष्ठ कुल में उत्पन्न, आग के समान तेजस्वी, नित्य क्षमावान् तथा संयत चेष्टा वाले सज्जन पुरुष लकड़ी में आग के समान छिपे रहते हैं ।

यस्य मन्त्रं न जानन्ति बाह्याश्चाभ्यन्तराश्च ये ।
स राजा सर्वतश्चक्षुश्चिरमैश्वर्यमश्नुते ।। १५ ।।

शब्दार्थ—यस्य मन्त्रम् = जिसके मन्त्र को, न जानन्ति = नहीं जानते हैं, बाह्याः बाहर के, अभ्यन्तराः च = और भीतर के, ये = जो, सः राजा = वह राजा, सर्वतश्चक्षुः = चारों ओर दृष्टि डालने वाला, चिरम् ऐश्वर्यम् = बहुत काल तक ऐश्वर्य को, अश्नुते = उपभोग करता है ।

हिन्दी—जिसके विचार को दूर रहने वाले और समीप रहने वाले शत्रु-मित्र नहीं जानते हैं और जो सब जगह देखता है, वही राजा बहुत काल तक राज्यलक्ष्मी का उपभोग करता है ।

करिष्यन्न प्रभाषेत कृतान्येव तु दर्शयेत् ।
धर्मकामार्थकार्याणि तथा मन्त्रो न भिद्यते ।। १६ ।।

शब्दार्थ—करिष्यत् = करने वाले कार्य को, न प्रभाषेत = प्रकट नहीं करे, कृतानि एव = किये हुए कार्यों को ही, दर्शयेत् = दिखावे, धर्मकामार्थकार्याणि = धर्म, काम और धन सम्बन्धी कार्यों को, तथा मन्त्रः = इसी प्रकार मन्त्र, न भिद्यते = प्रकट नहीं होता है ।

हिन्दी—भविष्य में करने योग्य कार्यों को प्रकट न करे और किये हुए कार्यों को ही दिखावे । धर्म, काम और अर्थ सम्बन्धी कार्यों को तथा मन्त्र को प्रकट नहीं करता है ।

गिरिपृष्ठमुपारुह्य प्रासादं वा रहोगतः।
अरण्ये निःशलाके वा तत्र मन्त्रो विधीयते ॥ १७ ॥

शब्दार्थ--गिरिपृष्ठम् = पर्वत की चोटी पर, उपारुह्य = बैठकर, प्रासादम् = महल को, वा = अथवा, रहोगतः = एकान्त स्थान में जाकर, अरण्ये = वन में, निःशलाके = घास रहित स्थान में, वा = अथवा, तत्र = वहाँ, मन्त्रः = विचार, विधीयते = करना चाहिए। परस्पर विषय के ऊपर विचार करें।

हिन्दी—पर्वत की चोटी पर बैठकर, महल में अथवा एकान्त स्थान में जाकर तथा घास रहित स्थान में जाकर मन्त्रणा (विचार) करना चाहिए।

विशेष--राजा का मन्त्रभेदन से प्रजाओं के ऊपर अनेक प्रकार के कष्ट आ सकते हैं, प्रजा में मात्स्यन्याय आ सकता है। अतः मन्त्र-विचार के ऊपर तथा उसे गोपनीय रखने के लिए अनेक उपाय विदुर ने बतलाया है।

नासुहृत् परमं मन्त्रं भारतार्हति वेदितुम्।
अपण्डितो वापि सुहृत् पण्डितो वाप्यनात्मवान् ॥
नापरीक्ष्य महीपालः कुर्य्यात् सचिवमात्मनः ॥ १८ ॥

शब्दार्थ—भारत = हे भरतकुलोत्पन्न धृतराष्ट्र ! न + असुहृत् = जो मित्र नहीं है, परमं मन्त्रं = महत्त्वपूर्ण मन्त्र को, वेदितुम् = जानने के लिए, न + अर्हति = योग्य नहीं होता है। वा = अथवा, अपण्डितोऽपि = मूर्ख भी, सुहृत् = मित्र, मन्त्र का अधिकारी नहीं होता है, पण्डितोऽपि = पण्डित भी, अनात्मवान् = चंचल प्रवृत्ति का, न = मन्त्र का अधिकारी नहीं है। अतः = इसलिए, महीपालः = राजा, अपरीक्ष्यः = परीक्षा के बिना, आत्मनः = अपना, सचिवम् = मन्त्री को, न कुर्य्यात् = न करे।

हिन्दी--हे भरतकुलोत्पन्न धृतराष्ट्र ! जो मित्र नहीं है वह मन्त्र को जानने का अधिकारी नहीं होता। इसी प्रकार जो मित्र है, परन्तु मूर्ख है; पण्डित है लेकिन चंचलस्वभाव होने के कारण भी मन्त्र के अधिकारी नहीं हैं। इसलिए राजा को चाहिए कि परीक्षा किये बिना मन्त्री नहीं बनाये।

अमात्ये ह्यर्थलिप्सा च मन्त्ररक्षणमेव च।
कृतानि सर्वकार्याणि यस्य पारिषदा विदुः ॥ १९ ॥
धर्मे चार्थे च कामे च स राजा राजसत्तमः।
गूढमन्त्रस्य नृपतेस्तस्य सिद्धिरसंशयम् ॥ २० ॥

शब्दार्थ--अमात्ये = मन्त्री के अधीन, हि अर्थलिप्सा = निश्चय ही नये अर्थं = राज्य आदि की प्राप्त करने की इच्छा, च = और, मन्त्ररक्षणमेव च = और मन्त्रणाओं की रक्षा करने की शक्ति, सर्वकार्याणि = सभी कार्यों को, कृतानि = किये हुए, यस्य = जिसका, पारिषदाः = सभा के लोग, विदुः = जानते हैं, धर्मे = धर्म के विषय में, च न अर्थे = और धन के विषय में, कामे = काम के विषय में, सः राजा = वह राजा,

राजसत्तमः = राजाओं में श्रेष्ठ होता है, गूढमन्त्रस्य = गुप्तमन्त्र का, नृपतेः = राजा की, तस्य = उसकी, सिद्धिः = सफलता, असंशयम् = सन्देह रहित होती है।

हिन्दी—नये अर्थ एवं राज्य की इच्छा तथा मन्त्ररक्षण का कर्तव्य मन्त्री का होता है। जिस गुप्त मन्त्र वाले राजा के धर्म, अर्थ और काम विषय के सारे कार्यों को कर लेने के बाद ही सभा के लोग जानते हैं, उस राजा को सफलता निश्चित ही मिलती है।

अप्रशस्तानि कार्याणि यो मोहादनुतिष्ठति।
स तेषां विपरिभ्रंशाद् भ्रंश्यते जीवितादपि ॥ २१ ॥

शब्दार्थ—यः = जो, अप्रशस्तानि = निन्दित, कार्याणि = कार्यों को, मोहात् = मोह से, अनुतिष्ठति = अनुष्ठान करता है, सः = वह, तेषाम् = उनके, विपरिभ्रंशात् = दूषित होने के कारण, जीवितात् + अपि = जीवन से भी, भ्रंश्यते = नष्ट हो जाता है।

हिन्दी—जो पुरुष निन्दित कर्मों को मोहवश करता है, वह उन कर्मों के दूषित होने से जीवन से भी नष्ट हो जाता है।

कर्मणां तु प्रशस्तानामनुष्ठानं सुखावहम्।
तेषामेवाननुष्ठानं पश्चात्तापकरं मतम् ॥ २२ ॥

शब्दार्थ—प्रशस्तानां कर्मणाम् = उत्तम कर्मों का, अनुष्ठानम् = आचरण करना, सुखावहम् = सुख प्राप्त कराने वाला होता है, तेषामेव = उन कर्मों का ही, अननुष्ठानम् = आचरण न करना, पश्चात् = बाद में, तापकरं मतम् = दुःख का कारण माना गया है।

हिन्दी—उत्तम कर्मों का आचरण करना ही सुखकारक माना गया है तथा उसका आचरण न करना दुःख का कारण बनता है।

अनधीत्य यथा वेदान् न विप्रः श्राद्धमर्हति।
एवमश्रुतषाड्गुण्यो न मन्त्रं श्रोतुमर्हति ॥ २३ ॥

शब्दार्थ—यथा = जैसे, वेदान् = वेदों को, अनधीत्य = बिना पढ़े, विप्रः = ब्राह्मण, न श्राद्धमर्हति = श्रद्धा के पात्र नहीं होता है, एवम् = उसी प्रकार, अश्रुत-षाड्गुण्यः = बिना राजनीति के छः गुणों को सुने (सन्धि, विग्रह, यान, आसन, द्वैधी-भाव तथा आश्रय—के समूह को), मन्त्रम् = मन्त्र को, न श्रोतुमर्हति = सुनने का अधिकारी नहीं होता है।

हिन्दी—जैसे वेद को बिना पढ़े ब्राह्मण श्रद्धा का पात्र नहीं होता है, वैसे ही राजनीति के छः गुणों को जाने बिना मन्त्र का अधिकारी नहीं होता है।

विशेष—श्राद्ध का अर्थ श्रद्धा से पितरों के निमित्त दी गयी वस्तुओं से लिया जाता है। परन्तु प्राचीन काल में इसका सम्बन्ध श्रद्धाप्रयुक्त कर्मों से लिया गया है तथा इनके सम्मानार्थ मधुपर्क देने का विधान है। इसके छः अधिकारी हैं—स्नातक,

आचार्य, पुरोहित, राजा, जामाता, श्रेष्ठ तथा प्रियमित्र। इसी प्रकार राजा के छः अङ्ग होते हैं—सन्धि, विग्रह, यान, आसन, द्वैधीभाव और समाश्रय। इनके आधार पर राज्यकार्य चलता है।

स्थानवृद्धिक्षययज्ञस्य षाड्गुण्यविदितात्मनः।
अनवज्ञातशीलस्य स्वाधीना पृथिवी नृप॥ २४॥

शब्दार्थ—नृप = हे राजन्! स्थानवृद्धिक्षययज्ञस्य=स्थान, वृद्धि और क्षयरूप यज्ञ-प्रयोग से सम्बन्धित को, षाड्गुण्यविदितात्मनः = राजसम्बन्धित सन्ध्यादि छः गुणों से युक्त को, अनवज्ञातशीलस्य = शीलस्वभाव को नहीं जानने वाले को, स्वाधीना=अच्छी प्रकार से आधीन, पृथिवी = भूमि होती है।

हिन्दी—हे राजन्! जिसका स्थान (यथास्थित अवस्था), वृद्धि एवं नाश रूप यज्ञ चलता रहता है, जो छः सन्धि आदि गुणों को यथावत् जानता है तथा जिसका मनोगत भाव दूसरा समझ नहीं पाता है—ऐसे व्यक्ति के अन्दर ही पृथिवी रहती है।

अमोघक्रोधहर्षस्य स्वयं कृत्यान्ववेक्षिणः।
आत्मप्रत्ययकोशस्य वसुदैव वसुन्धरा॥ २५॥

शब्दार्थ—अमोघक्रोधहर्षस्य = जिसका क्रोध और प्रसन्नता निष्फल नहीं होती है, स्वयं कृत्वा = अपने-आप करके, अन्ववेक्षिणः = पुनः विचार करके, आत्मप्रत्ययकोशस्य = आत्मज्ञान ही कोश है जिसका, वसुदैव = धन देने वाली ही, वसुन्धरा = धन-ऐश्वर्य को, धारण करने वाली होती है।

हिन्दी—जिस व्यक्ति का क्रोध और हर्ष निष्फल नहीं होता तथा किये गये कार्यों पर पुनः विचार करने वाला होता है एवं अपने बल पर भरोसा रखता है—उसको पृथिवी तथा राज्य धन-एश्वर्य को देने वाले होते हैं।

नाममात्रेण तुष्येत छत्रेण च महीपतिः।
भृत्येभ्यो विसृजेदर्थान्नैकः सर्वहरो भवेत्॥ २६॥

शब्दार्थ—नाममात्रेण = नाममात्र से, छत्रेण = राजछत्र रूप चिह्न से, महीपतिः = राजा, तुष्येत् = सन्तुष्ट होना चाहिए, भृत्येभ्यः = नौकरों के द्वारा, अर्थान् = धनों को, विसृजेत् = त्याग करना चाहिए, एकः = अकेला, सर्वहरः = सब कुछ हरण करने वाला, न भवेत् = न हो।

हिन्दी—राजा राजचिह्न छत्र से ही सन्तुष्ट रहे तथा नौकरों में धनों को बाँट कर ऐश्वर्य का भोग करे, अकेला सर्वस्व भोग न करे। अन्यथा नौकर लोग ही उसका विरोध कर देते हैं तथा राजा का विनाश कर सकते हैं।

ब्राह्मणं ब्राह्मणो वेद भर्ता वेद स्त्रियं तथा।
अमात्यं नृपतिर्वेद राजा राजानमेव च॥ २७॥

शब्दार्थ—ब्राह्मणः = ब्राह्मण, ब्राह्मणम् = ब्राह्मण को, वेद = जानता है, तथा और, भर्ता = पति, स्त्रियम् = स्त्री को, वेद = जानता है, अमात्यम् = मन्त्री को,

नृपतिः = राजा, वेद = जानता है, राजानम् = राजा को, राजा = राजा, एव च = और ही जानता है।

हिन्दी—ब्राह्मण को ब्राह्मण जानता है, पति को पत्नी जानती है, राजा मन्त्री को जानता है और राजा को राजा ही जानता है। इसका अभिप्राय यह भी है कि जिसका जिसके साथ साक्षात् सम्बन्ध होता है वही उसको जानता है।

न शत्रुर्वशमापन्नो मोक्तव्यो वध्यतां गतः।
न्यग्भूत्वा पर्युपासीत वध्यं हन्याद् बले सति।
अहताद्धि भयं तस्माज्जायते नचिरादिव ॥ २८ ॥

शब्दार्थ—वशमापन्नः शत्रुः = वश में आये हुए शत्रु को, वध्यतां गतः = मारने योग्य, न मोक्तव्यः = नहीं छोड़ना चाहिए, न्यग्भूत्वा = नीचे झुककर, पर्युपासीत = उपासन करना चाहिए, सति बले = बल होने पर, वध्यम् = मारने योग्य को, हन्यात् = मार डालना चाहिए, अहतात् = नहीं मारने से, हि = निश्चय ही, नचिरात् = शीघ्र, तस्मात् = उससे, भयं जायते = भय उत्पन्न होता है।

हिन्दी—वश में आये हुए मारने योग्य शत्रु को कभी नहीं छोड़ना चाहिए, झुककर सेवन करना चाहिए तथा समय आने पर उसका समूल नष्ट कर दें। मारने योग्य शत्रु को यदि न मारा जाय तो उससे शीघ्र ही भय उत्पन्न होता है।

दैवतेषु प्रयत्नेन राजसु ब्राह्मणेषु च।
नियन्तव्यः सदा क्रोधो वृद्धबालातुरेषु च ॥ २९ ॥

शब्दार्थ—दैवतेषु = देवताओं के ऊपर, राजसु = राजाओं के ऊपर, ब्राह्मणेषु = ब्राह्मणों पर, प्रयत्नेन = प्रयत्नपूर्वक, वृद्धबालातुरेषु च = वृद्ध, बालक और रोगी के ऊपर, सदा क्रोधः = सदा क्रोध को, नियन्तव्यः = रोकना चाहिए। इस पर किसी कारणवशात् क्रोध आ भी जाय तो प्रयत्नपूर्वक रोकना चाहिए।

हिन्दी—राजा को चाहिए कि देवताओं, ब्राह्मणों, राजाओं, बूढ़ों, बच्चों और रोगियों के उपर क्रोध को प्रयत्नपूर्वक रोके।

निरर्थं कलहं प्राज्ञो वर्जयेन्मूढसेवितम्।
कीर्तिं च लभते लोके न चानर्थेन युज्यते ॥ ३० ॥

शब्दार्थ—निरर्थम् = विना प्रयोजन, कलहम् = झगड़े को, मूढसेवितम् = मूर्खों से सेवित को, प्राज्ञः = बुद्धिमान्, वर्जयेत् = छोड़ दे, लोके = संसार में, कीर्तिम् = यश को, लभते = प्राप्त करता है, च = और, अनर्थेन = दुःख से, न युज्यते = युक्त नहीं होता है।

हिन्दी—बिना प्रयोजन झगड़े को बुद्धिमान् छोड़ दे। इससे संसार में यश और दुःख से युक्त नहीं होता है।

प्रसादो निष्फलो यस्य क्रोधश्चापि निरर्थकः।
न तं भर्तारमिच्छन्ति षण्ढं पतिमिव स्त्रियः ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ—यस्य=जिसका, प्रसादः=प्रसन्नता, निष्फलः=फल रहित हो, च=और, क्रोधोऽपि=क्रोध भी, निरर्थकः=फलरहित है, तं भर्तारम्=उस स्वामी को, न इच्छन्ति=नहीं चाहते हैं, स्त्रियः=स्त्रियाँ, षण्ढं पतिमिव=नपुंसक पति के समान।

हिन्दी—जिसकी प्रसन्नता और क्रोध दोनों निरर्थक है, उस स्वामी को प्रजाजन नहीं चाहते हैं; जैसे स्त्रियाँ नपुंसक पति को नहीं चाहती हैं।

न बुद्धिर्धनलाभाय न जाड्यमसमृद्धये।
लोकपर्यायवृत्तान्तं प्राज्ञो जानाति नेतरः॥ ३२॥

शब्दार्थ—बुद्धिः=बुद्धि, धनलाभाय न=धनप्राप्ति के कारण नहीं है, न जाड्यम्=न मूर्खता के लिए, असमृद्धये=दरिद्रता के लिए, लोकपर्यायवृत्तान्तम्=इहलोक और परलोक की व्यवस्था के लिए, प्राज्ञः=बुद्धिमान्, जानाति=जानता है, न इतरः=दूसरा नहीं जानता है।

हिन्दी—बुद्धि धनलाभ, मूर्खता और दरिद्रता के लिए नहीं है। यह तो इहलोक और परलोक की व्यवस्था को जानने वाला बुद्धिमान् पुरुष ही जानता है, दूसरा नहीं।

विशेष—इसका अभिप्राय यह है कि दुःख-सुख से मूर्ख और बुद्धिमानों की पहचान नहीं होती है। सुख-दुःख पूर्वजन्म के संस्कार से होता है। इस बात को बुद्धिमान् व्यक्ति ही जानता है, मूर्ख नहीं।

विद्याशीलवयोवृद्धान् बुद्धिवृद्धांश्च भारत।
धनाभिजातवृद्धांश्च नित्यं मूढोऽवमन्यते॥ ३३॥

शब्दार्थ—भारत=हे भरतवंशोत्पन्न धृतराष्ट्र! विद्याशीलवयोवृद्धान्=विद्या, शील और आयु से श्रेष्ठ पुरुष को, बुद्धिवृद्धांश्च=और बुद्धि में श्रेष्ठ पुरुषों को, धनाभिजातवृद्धान्=धन और कुल से श्रेष्ठ पुरुषों को, मूढः=मूर्ख, नित्यमवमन्यते=नित्य अपमानित करता है।

हिन्दी—हे भारत! मूर्ख पुरुष सदा ही विद्या, शील, आयु, बुद्धिमानों में श्रेष्ठ और कुलीन पुरुषों को सदा ही अपमानित करता है।

अनार्यवृत्तमप्राज्ञमसूयकमधार्मिकम्।
अनर्थाः क्षिप्तमायान्ति वाग्दुष्टं क्रोधनं तथा॥ ३४॥

शब्दार्थ—अनार्यवृत्तम्=दुराचारी को, अप्राज्ञम्=मूर्ख को, असूयकम्=निन्दा करने वाले को, अधार्मिकम्=विधर्मी को, तथा=और, वाग्दुष्टम्=दुष्ट वाणी बोलने वाले को, क्रोधिनम्=क्रोध करने वाले को, अनर्थाः=दुःख, दारिद्र्य आदि, क्षिप्तमायान्ति=शीघ्र आ जाते हैं।

हिन्दी—दुराचारी, मूर्ख, दूसरे की निन्दा करनेवाले, दुष्ट वाणी बोलने वाले और क्रोधी के पास दुःख-दारिद्र्य शीघ्र आ जाते हैं।

विशेष—इसके द्वारा विदुर ने स्पष्ट निर्देश दिया कि धार्मिक पाण्डवों को दुर्योधन

सदा ही अपमानित करता है और अधार्मिक शकुनी आदि के अनुसार व्यवहार करता है। इसलिए इसका विनाश हो जायेगा।

अविसंवादनं दानं समयस्याव्यतिक्रमः।
आवर्तयन्ति भूतानि सम्यक्प्रणिहिता च वाक् ॥ ३५ ॥

शब्दार्थ--अविसंवादनम् = धोखा नहीं देना, दानम् = दान देना, समयस्य = समय का, अनतिक्रमः = उल्लङ्घन न करना, भूतानि सम्यक् प्रणिहिता = शत्रु मनुष्यों के लिए अच्छी प्रकार बोली गयी, वाक् च = और वाणी, आवर्तयन्ति = अपने पक्ष में कर लेते हैं।

हिन्दी--किसी को धोखा न देना, दान देना, समय पर कार्य करना तथा शत्रु के लिए अच्छी प्रकार से बोली गयी वाणी के द्वारा विपक्ष को भी अपना बना लेते हैं।

अविसंवादको दक्षः कृतज्ञो मतिमानृजुः।
अपि सङ्क्षीणकोशोऽपि लभते परिवारणम् ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ--अविसंवादकः = झूठ नहीं बोलनेवाला, दक्षः = चतुर, कृतज्ञः = उपकार को मानने वाला, मतिमान् = बुद्धिमान्, ऋजुः = सरल पुरुष, अपि = भी, सङ्क्षीण-कोशोऽपि = धन से रहित भी, परिवारणम् = पारिवारिक लोगों को, लभते = प्राप्त करता है।

हिन्दी--झूठ न बोलने वाला, निपुण, कृतज्ञ, बुद्धिमान् तथा सरल स्वभाव का पुरुष धनरहित रहने पर भी पारिवारिक लोगों को प्राप्त कर लेता है।

धृतिः शमो दमः शौचं कारुण्यं वागनिष्ठुरा।
मित्राणां चानभिद्रोहः सप्तैताः समिधः श्रियः ॥ ३७ ॥

शब्दार्थ—धृतिः = धैर्य, शमः = शान्ति, दमः = इन्द्रियों को वश में रखना, शौचम् = व्यावहारिक पवित्रता, कारुण्यम् = करुणामयी, अनिष्ठुरा वाक् = कोमल वाणी, मित्राणाम् = मित्रों का, अनभिद्रोहः = द्रोह न करना, एताः सप्त = ये सात बातें, श्रियः = समृद्धि को, समिधः = बढ़ाने वाली होती हैं।

हिन्दी—धैर्य, शान्ति, इन्द्रिय-जय, व्यवहार में शुद्धता, करुणा, कोमल वाणी तथा मित्रों से द्रोह नहीं रखना—ये सात बातें लक्ष्मी को बढ़ानेवाली होती हैं।

विशेष—ध्वनिकार आनन्दवर्धन ने समिधा को अर्थान्तरसंक्रमितवाच्य के उदाहरण के रूप में दिया है, जिसका अभिप्राय बढ़ाने वाला लिया है। जैसे यज्ञ में समिधा = लकड़ी डालने से यज्ञीय अग्नि और बढ़ती है, उसी प्रकार इन बातों के आचरण से धन-सम्पत्ति बढ़ती है।

असंविभागी दुष्टात्मा कृतघ्नो निरपत्रपः।
तादृङ्नराधिपो लोके वर्जनीयो नराधिप ॥ ३८ ॥

शब्दार्थ—नराधिप = हे राजन्! असंविभागी = बाँटकर नहीं खाने वाला, दुष्टात्मा = दुष्टस्वभाव वाला, कृतघ्नः = उपकार को नहीं मानने वाला, निरपत्रपः

=लज्जारहित, तादृक् नराधिपः=ऐसा राजा, लोके वर्जनीयः=संसार में छोड़ने योग्य होता है।

हिन्दी—हे राजन् ! जो अकेला खाने वाला, दुष्ट हृदय वाला, उपकार को नहीं मानने वाला तथा लज्जा रहित हो; ऐसे राजा को संसार में छोड़ देना चाहिए।

न च रात्रौ सुखं शेते ससर्प इव वेश्मनि।
यः कोपयति निर्दोषं सदोषोऽभ्यन्तरं जनम् ॥ ३९ ॥

शब्दार्थ—वेश्मनि=घर में, ससर्प इव=सर्प से युक्त के समान, रात्रौ=रात में, सुखम्=सुखपूर्वक, न च शेते=नहीं सोता है, यः=जो, निर्दोषम्=दोषरहित, अभ्यन्तरं जनम्=अन्तरङ्ग जन को, सदोषः=स्वयं दोषयुक्त होकर, कोपयति=क्रोधित करता है।

हिन्दी—स्वयं दोषयुक्त होकर निर्दोष आन्तरिक जनों को क्रोधित करता है, वह सर्प से युक्त घर में सोने के समान है। अर्थात् ससर्प घर में सोना मृत्यु का कारण है, उसी प्रकार स्वजनों को क्रोधित रखना मृत्यु का कारण है।

येषु दुष्टेषु दोषः स्याद् योगक्षेमस्य भारत।
सदा प्रसादनं तेषां देवतानामिवाचरेत् ॥ ४० ॥

शब्दार्थ—भारत=हे भरतवंशोत्पन्न धृतराष्ट्र ! येषु=जिनमें, दुष्टेषु=दूषित होने पर, योगक्षेमस्य=योगक्षेम का (अप्राप्य वस्तु की प्राप्ति योग और प्राप्य वस्तु का रक्षण क्षेम कहलाता है), दुष्टः=दोष, स्यात्=हो, तेषाम्=उनका, सदा प्रसादनम्=हमेशा प्रसन्न करना, देवतानाम्=देवताओं के, इव आचरेत्=समान आचरण करे।

हिन्दी—हे भारत ! जिन मनुष्यों के योगक्षेम दोषयुक्त हों उसे सदा प्रसन्न करने का प्रयास करे। जैसे देवता अपने भक्तों के दोषों को नहीं देखते हुए उसका रक्षण करते हैं। अर्थात् जिसका भरण अर्थाभाव के कारण नहीं हो पा रहा है, उसका भरण करे।

येऽर्थाः स्त्रीषु समायुक्ताः प्रमत्तपतितेषु च।
ये चानार्ये समासक्ताः सर्वे ते संशयं गताः ॥ ४१ ॥

शब्दार्थ—येऽर्थाः=जो सम्पत्ति, स्त्रीषु=स्त्रियों में, प्रमत्तपतितेषु=पागलों के पास है, समासक्ताः=स्थित हैं, ये च=और जो, अनार्ये=दुष्टों में, समासक्ताः=निहित हैं, सर्वे=वे सब, संशयं गताः=सन्देह को प्राप्त हैं।

हिन्दी—जो सम्पत्ति स्त्रियों और पागलों के पास चली गयी है तथा जो सम्पत्ति दुष्टों के पास स्थित हैं, वे सब सन्देह युक्त हैं।

यत्र स्त्री यत्र कितवो बालो यत्रानुशासिता।
मज्जन्ति तेऽवशा राजन् नद्यामश्मप्लवा इव ॥ ४२ ॥

शब्दार्थ—राजन्=हे राजन् ! यत्र=जिस देश में, स्त्री=स्त्री, यत्र=जिस

देश में, कितवः = जुआरी, बालः = बालक या मूर्ख, यत्रानुशासिताः = जहाँ शासन करने वाले होते हैं, ते = वे सब, अवशाः = न चाहते हुए, नद्याम् = नदी में, अश्मप्लवाः इव = पत्थरों की नौकाओं के समान, मज्जन्ति = डूब जाते हैं।

हिन्दी—जिस देश में स्त्री, जुआरी और बालक या मूर्ख शासन करने वाले होते हैं, वे सब पत्थरों की नौकाओं से पार करने के समान नदी में डूब जाते हैं। अर्थात् जिस प्रकार पत्थर की नौका से नदी पार नहीं किया जा सकता, उसी प्रकार स्त्री, जुआरी और बालक या मूर्ख से देश पर शासन नहीं किया जा सकता है।

प्रयोजनेषु ये सक्ता न विशेषेषु भारत।
तानहं पण्डितान् मन्ये विशेषा हि प्रसङ्गिनः ॥ ४३ ॥

शब्दार्थ—भारत = हे भारत! प्रयोजनेषु = प्रयोजनों में, ये सक्ताः = जो लगे हुए हैं, न विशेषेषु = विशिष्ट व्यक्तिओं में नहीं, तानहम् = उनको मैं, पण्डितान् = बुद्धिमान्, मन्ये = मानता हूँ, हि = निश्चय ही, विशेषाः = विशिष्ट व्यक्ति, प्रसङ्गिनः = संघर्षकारी होते हैं।

हिन्दी—हे धृतराष्ट्र! जो मनुष्य अपने प्रयोजनों की सिद्धि में लगे हुए हैं, विशिष्ट व्यक्तिओं में आसक्त नहीं हैं; उन्हें मैं पण्डित मानता हूँ। जो विशेष में लगे हुए हैं, उन्हें मैं मूर्ख मानता हूँ; उनका जीवन केवल संघर्ष करना ही है।

यं प्रशंसन्ति कितवा यं प्रशंसन्ति चारणाः।
यं प्रशंसन्ति बन्धक्यो न स जीवति मानवः ॥ ४४ ॥

शब्दार्थ—यं = जिसकी, कितवः = जुआरी, प्रशंसन्ति = प्रशंसा करते हैं, यं = जिसकी, चारणाः = चाटुकार, प्रशंसन्ति = प्रशंसा करते हैं, यं = जिसकी, बन्धक्यः = वेश्याएँ, प्रशंसन्ति = प्रशंसा करती है, स मानवः = वह मनुष्य, न जीवति = नहीं जीता है।

हिन्दी—जिस मनुष्य की जुआरी, चाटुकार और वेश्याएँ प्रशंसा करती है, वह मनुष्य जीवत नहीं रहता है। अर्थात् शीघ्र ही उसका नाश हो जाता है।

हित्वा तान् परमेष्वासान् पाण्डवानमितौजसः।
आहितं भारतैश्वर्यं त्वया दुर्योधने महत् ॥ ४५ ॥
तं द्रक्ष्यसि परिभ्रष्टं तस्मात् त्वमचिरादिव।
ऐश्वर्यमदसम्मूढं बलिं लोकत्रयादिव ॥ ४६ ॥

इति महाभारते उद्योगपर्वणि प्रजागरपर्वणि विदुरहितवाक्ये अष्टात्रिंशोऽध्यायः।

इति विदुरनीतौ षष्ठोऽध्यायः समाप्तः।

शब्दार्थ—भारत = हे भरतकुलोत्पन्न धृतराष्ट्र! अमितौजसः = महापराक्रमशालियों को, परमेष्वासान् = महाधनुर्धारियों को, पाण्डवान् = पाण्डवों को, तान् हित्वा = उनको छोड़कर, त्वया = तुमने, महत् ऐश्वर्यम् = महान् राज्य को, दुर्योधने =

दुर्योधन के अधीन रखा है। तस्मात्=इसलिए, परिभ्रष्टम्=नष्ट हुए, त्वम्=तुम, अचिरात्=शीघ्र ही, तम्=उसको, ऐश्वर्यमदसम्मूढम्=ऐश्वर्य के मद से मत्त को, बलिम् इव=राजा बलि के समान, लोकत्रयात्=तीनों लोकों से, द्रक्ष्यसि=देखोगे।

हिन्दी—हे भरतकुलोत्पन्न राजन् धृतराष्ट्र! तुमने महाधनुर्धारी एवं महापराक्रमी पाण्डवों का त्याग करके जिस दुर्योधन के अधीन राज्यरूपी महान् ऐश्वर्य को रखा है, उसे तुम शीघ्र ही राज्य से परिभ्रष्ट देखोगे। जैसे ऐश्वर्य से मदोन्मत्त बलि तीनों लोकों से अलग हो गया है।

विशेष—पुराणों में राजा बलि की कथा प्रसिद्ध है। बलि विरोचन का पुत्र और महाभागवत प्रह्लाद का पौत्र था। प्रह्लाद पर भगवान् नरसिंह ने महती कृपा की थी। इसी के प्रभाव से बलि महापराक्रमी त्रैलोक्यविजयी दानवों का राजा हुआ। इससे अदिति की सन्तान बहुत दुःखी हुईं। अन्त में अदिति के पुत्र रूप में भगवान् वामन स्वरूप धारण कर बलि की यज्ञभूमि में जाकर बलि को प्रतिज्ञा की डोर में बाँध कर तीन पग पृथ्वी के दान में ही त्रैलोक्य का राज्य ले लिया तथा बलि को पाताललोक में वास दिया। यह कथा भागवतादि पुराणों में बहुत व्यापक रूप में वर्णित है, परन्तु यहाँ पर दिग्दर्शन मात्र है।

वेद के विष्णुसूक्त में 'इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम्' इत्यादि में इसी की ओर निर्देश किया गया है।

इस प्रकार विदुरनीति की षष्ठ अध्याय की हिन्दी समाप्त।

सप्तमोऽध्यायः

धृतराष्ट्र उवाच—

अनीश्वरोऽयं पुरुषो भवाभवे सूत्रप्रोता दारुमयीव योषा।
धात्रा तु दिष्टस्य वशे कृतोऽयं तस्माद् वद त्वं श्रवणे धृतोऽहम् ॥ १ ॥

शब्दार्थ—अनीश्वरः=असमर्थ, अयं पुरुषः=यह पुरुष, भवाभवे=जीवन और मृत्यु के बीच में ऐश्वर्य की उत्पत्ति और विनाश में, सूत्रप्रोता=सूत में लगायी गयी, दारुमयी=लकड़ी की, योषा इव=स्त्री के समान, धात्रा=दैव से, दिष्टस्य वशे=आदेश के वश में, अयं कृतः=यह किया, तस्मात्=इसलिए, अहम्=मैं, श्रवणे धृतः=सुनने के लिए तैयार हूँ।

हिन्दी—धृतराष्ट्र ने कहा—हे विदुर ! पुरुष ऐश्वर्य की प्राप्ति और नाश में परतन्त्र है। ब्रह्मा ने धागे से बँधी हुई कठपुतली की तरह इसे प्रारब्ध के अधीन कर रखा है। इसे तुम कहो, मैं सुनने के लिए तैयार हूँ।

विशेष—कर्मवाद-सिद्धान्त के अनुसार प्रारब्ध, क्रियमाण और संचित कर्म के विपाक के परिणामस्वरूप जीव भवाटवी में सुख-दुःख का भोग चक्रारपंक्ति के समान करता रहता है। अतः इसका समापन मुक्ति प्राप्त करने के बाद ही सम्भव है। साथ ही छठे अध्याय के बत्तीसवें श्लोक में भी इसी प्रकार की बातें बतलायी गयी हैं। परन्तु धृतराष्ट्र ने इसके विपरीत सिद्धान्त तथा अपने विपरीत पक्ष के समर्थन में युक्ति मान लिया और कहा कि जो कुछ मैं कर रहा हूँ, भाग्याधीन होकर पूर्वकृत कर्म का भोग कर रहा हूँ। अतः इसमें मेरा कोई दोष नहीं है।

विदुर उवाच—

अप्राप्तकालं वचनं बृहस्पतिरपि ब्रुवन्।
लभते बुद्ध्यवज्ञानमवमानं च भारत ॥ २ ॥

शब्दार्थ—भारत=हे भरतवंशोत्पन्न धृतराष्ट्र ! अप्राप्तकालम्=असमय में, बृहस्पतिरपि=देवगुरु भी, वचनं ब्रुवन्=वचन बोलता हुआ, बुद्ध्यवज्ञानम्=बुद्धिहीनता को, अपमानञ्च=और अपमान को, लभते=प्राप्त करता है।

हिन्दी—हे भारत ! असमय में देवगुरु बृहस्पति भी बोलता हुआ बुद्धिहीनता और अपमान को प्राप्त करता है।

प्रियो भवति दानेन प्रियवादेन चापरः।
मन्त्रमूलबलेनान्यो यः प्रियः प्रिय एव सः ॥ ३ ॥

शब्दार्थ—दानेन=देने से, प्रियं भवति=प्रिय होता है, अपरः=दूसरा, प्रियवादेन=प्रिय बोलने से, प्रिय होता है, मन्त्रमूलबलेन=विचार के आदान-प्रदान से

प्रिय होता है, अन्यः = दूसरा, यः प्रियः = जो प्रिय है, सः प्रियः एव=वह प्रिय ही है।

हिन्दी—हे राजन् ! कोई देने से प्रिय होता है, कोई प्रिय वचन बोलने से और विचार के आदान-प्रदान से प्रिय होता है; इसके अतिरिक्त जो प्रिय है वह तो प्रिय ही है।

विशेष—दुर्योधन आदि उक्त गुण के न होने के कारण तुम्हें प्रिय लगते हैं। वास्तव में मोहाभिभूत होने के कारण तुम्हें स्पष्ट दिखाई नहीं दे रहा है।

द्वेष्यो न साधुर्भवति न मेधावी न पण्डितः।
प्रिये शुभानि कार्याणि द्वेष्ये पापानि चैव ह ॥ ४ ॥

शब्दार्थ—द्वेष्यः = जिससे द्वेष हो वह, न साधुः भवति = साधु नहीं होता है, न मेधावी = बुद्धिमान् नहीं है, न पण्डितः = वह ज्ञानी नहीं होता है, प्रिये = प्रिय में, शुभानि कार्याणि = शुभ कार्य होते हैं, द्वेष्ये = द्वेष्य में, पापानि = पापकर्म, च एव ह = निश्चय ही होते हैं।

हिन्दी—मनुष्य जिससे द्वेष करता है वह न श्रेष्ठ, न विद्वान् और न बुद्धिमान् ही प्रतीत होता है। प्रिय व्यक्ति के पापकर्म भी शुभ ही लगते हैं और द्वेषी के सभी कर्म पापमय ही प्रतीत होते हैं।

उक्तं मया जातमात्रेऽपि राजन् दुर्योधनं त्यज पुत्रं त्वमेकम्।
तस्य त्यागात् पुत्रशतस्य वृद्धिरत्यागात् पुत्रशतस्य नाशः ॥ ५ ॥

शब्दार्थ—राजन् = हे राजन् युधिष्ठिर ! मया = मैंने, जातमात्रे अपि = उत्पन्न होते ही, उक्तम् = कहा था, दुर्योधनम् = दुर्योधन को, पुत्रम् = पुत्र को, त्वमेकम् = तुम एक को, त्यज = छोड़ दे, तस्य = उसके, त्यागात् = त्याग से, पुत्रशतस्य = सो पुत्रों की, वृद्धिः = वृद्धि होगी, अस्य = इसके, अत्यागात् = न छोड़ने से, पुत्रशतस्य नाशः = सौ पुत्रों का नाश होगा।

हिन्दी—राजन् ! मैंने दुर्योधन के जन्म लेने पर कहा था कि इस पुत्र को त्याग दो। इसके त्याग से सौ पुत्रों की वृद्धि तथा न त्यागने से सौ पुत्रों का नाश होगा।

विशेष—महात्मा विदुर ने दुर्योधन के जन्म लेने के समय कहा था कि इस पुत्र को त्याग दो, अन्यथा यह सम्पूर्ण वंश का नाश कर देगा। परन्तु पुत्रमोह के कारण धृतराष्ट्र उस समय ऐसा नहीं कर सका। सम्प्रति विनाश के कगार पर आये वंश को बचाने के लिए स्मरण दिला रहे हैं।

न वृद्धिर्बहु मन्तव्या या वृद्धिः क्षयमावहेत्।
क्षयोऽपि बहु मन्तव्यो यः क्षयो वृद्धिमावहेत् ॥ ६ ॥

शब्दार्थ—वृद्धिः = वृद्धि को, बहु न मन्तव्या = बहुत नहीं मानना चाहिए, या वृद्धिः = जो वृद्धि, क्षयमावहेत् = नाश प्राप्त करावे, क्षयोऽपि = क्षय को भी, बहु मन्तव्यः = अच्छा मानना चाहिए, यः क्षय = जो क्षय, वृद्धिमावहेत् = वृद्धि को प्राप्त करावे।

हिन्दी—जो वृद्धि बाद में नाश का कारण बनती है, उसे अच्छा नहीं मानना चाहिए। उस विनाश को अच्छा मानना चाहिए, जिस नाश से वृद्धि प्राप्त हो।

न स क्षयो महाराज यः क्षयो वृद्धिमावहेत्।
क्षयः स त्विह मन्तव्यो यं लब्ध्वा बहु नाशयेत् ॥ ७ ॥

शब्दार्थ—महाराज = हे महाराज धृतराष्ट्र ! सः = वह, न क्षयः = हानि नहीं है, यः क्षयः = जो नाश, वृद्धिमावहेत् = वृद्धि देता है, सः तु इह = उसको इस लोक में, क्षयः मन्तव्यः = हानि मानना चाहिए, यं लब्ध्वा = जिसको प्राप्त कर, बहु नाशयेत = बहुत नष्ट हो जाय।

हिन्दी—हे महाराज ! इस संसार में वह हानि नहीं है जो वृद्धि को प्राप्त कराती है। नाश तो वह है जिसे प्राप्त कर बहुत नष्ट हो जाय।

समृद्धा गुणतः केचिद् भवन्ति धनतोऽपरे।
धनवृद्धान् गुणैर्हीनान् धृतराष्ट्र विवर्जय ॥ ८ ॥

शब्दार्थ—धृतराष्ट्र = हे अम्बिकेय ! केचित् = कोई, गुणतः = गुणों से, समृद्धाः = समृद्ध होते हैं, अपरे = अन्य, धनतः = धन से बड़े होते हैं, गुणैर्हीनान् = गुणों से हीन, धनवृद्धान् = धनवृद्धों को, विवर्जय = छोड़ दे।

हिन्दी—हे धृतराष्ट्र ! कोई गुणों से बड़े होते हैं और दूसरे धन से। गुणों एवं धनों से हीन वृद्धों को छोड़ देना चाहिए।

विशेष—विदुर ने यहाँ पर स्पष्ट रूप से कहा है कि दुर्योधनादि ऐश्वर्य युक्त होने पर भी गुणों से हीन हैं। इसलिए उन्हें छोड़ देना चाहिए। यदि जन्म के समय नहीं सही, अब भी छोड़ देने में कोई दोष नहीं है।

धृतराष्ट्र उवाच—

सर्वं त्वमायतोयुक्तं भाषसे प्राज्ञसम्मतम्।
न चोत्सहे सुतं त्यक्तुं यतो धर्मस्ततो जयः ॥ ९ ॥

शब्दार्थ—सर्वं त्वम् = सब तुम, आयतोयुक्तम् = भविष्य के लिए हितकारी, प्राज्ञसम्मतम् = बुद्धिमानों को मानने योग्य, भाषसे = कहते हो, सुतम् = पुत्र को, त्यक्तुम् = छोड़ने को, न उत्सहे = समर्थ नहीं हो रहा हूँ, यतः धर्मः = जहाँ धर्म है, ततो जयः = वहाँ जय है।

हिन्दी—धृतराष्ट्र ने कहा—तुमने निश्चय ही बुद्धिमानों के सम्मत और भविष्य के लिए हितकारी वचन कहा है, परन्तु मैं अपने पुत्र को छोड़ने में समर्थ नहीं हो पा रहा हूँ, क्योंकि जहाँ धर्म है वहाँ जय होती है।

विदुर उवाच—

अतीवगुणसम्पन्नो न जातु विनयान्वितः।
सुसूक्ष्ममपि भूतानामुपमर्दमुपेक्षते ॥ १० ॥

शब्दार्थ—अतीवगुणसम्पन्न: = अत्यन्त गुणों से युक्त, विनयान्वित: = विनययुक्त, न जातु = निश्चय ही नहीं है, भूतानाम् = भूतों का, सुसूक्ष्मम् अपि = अत्यन्त सूक्ष्म भी, उपमर्दम् = नाश की, उपेक्ष्यते = उपेक्षा करता है।

हिन्दी—जो अधिक गुणों से सम्पन्न और विनय से युक्त है, वह प्राणियों के थोड़े भी नाश की उपेक्षा नहीं करता है। अर्थात् थोड़ी ही उपेक्षा से सम्पूर्ण का विनाश हो जाता है।

परापवादनिरता: परदु:खोदयेषु च।
परस्परविरोधे च यतन्ते सततोत्थिता: ॥ ११ ॥
सदोषं दर्शनं येषां संवासे सुमहद् भयम्।
अर्थादाने महान् दोष: प्रदाने च महद् भयम् ॥ १२ ॥
ये वै भेदनशीलास्तु सकामा निस्त्रपा: शठा:।
ये पापा इति विख्याता: संवासे परिगर्हिता:।
युक्ताश्चान्यैर्महादोषैर्ये नरास्तान् विवर्जयेत् ॥ १३ ॥

शब्दार्थ—परापवादनिरता: = दूसरों की निन्दा में लगे हुए, परदु:खोदयेषु = दूसरों के लिए दु:खों को उत्पन्न करने में, च परस्परविरोधे=और परस्पर विरोध में, सततोत्थिता: = सदा सावधान होकर, यतन्ते = प्रयत्न करते हैं, येषाम् = जिनका, सदोषं दर्शनम् = दोषयुक्त देखना ही काम है, संवासे = समीप में, सुमहद्भयम् = बहुत अधिक भय रहता है, अर्थादाने = धन देने में, महान् दोष: = बड़ा दोष है, च = और, प्रदाने=देने में, महद्भयम्=बड़ा भय है, ये वै=जो निश्चय ही, भेदनशीला:=फूट डालने वाले, सकामा: = बुरी कामना करने वाले, निस्त्रपा: = निर्लज्ज, शठा: = धूर्त्त हैं, ये पापा: = जो पापी, इति विख्याता: = इस प्रकार विख्यात हैं, संवासे = पास रहने पर, परिगर्हिता: = निन्दित हैं, च = और, अन्यै: = अन्य, महादोषै: = महान् दोषों से, ये नरा: = जो मनुष्य, युक्ता: = युक्त हैं, तान् = उनको, विवर्जयेत् = छोड़ देना चाहिए।

हिन्दी—दूसरों की निन्दा में तत्पर, दूसरों के दु:खों को उत्पन्न करने में लगे हुए, परस्पर विरोध में सदा प्रयत्नशील और जिनका दर्शन ही दोषयुक्त है, जिनके समीप में रहने में महान् भय है, जिनसे धन लेने में बड़ा दोष और देने में बड़ा भय है, जो परस्पर फूट डालने वाले, निकृष्ट कामना करने वाले, निर्लज्ज, धूर्त्त और जो पापी के रूप में प्रसिद्ध हैं, जो समीप रहने योग्य नहीं हैं तथा जो अन्य महादोषों से युक्त हैं—ऐसे पुरुषों को छोड़ देना चाहिए।

निवर्तमाने सौहार्दे प्रीतिर्नीचे प्रणश्यति।
या चैव फलनिर्वृत्ति: सौहृदे चैव यत् सुखम् ॥ १४ ॥
यतते चापवादाय यत्नमारभते क्षये।
अल्पेऽप्यपकृते मोहान्न शान्तिमधिगच्छति ॥ १५ ॥

तादृशैः सङ्गतं नीचैर्नृशंसैरकृतात्मभिः ।
निशम्य निपुणं बुद्धया विद्वान् दूराद् विवर्जयेत् ।। १६ ।।

शब्दार्थ—सौहार्दे निवर्त्तमाने = मित्रता निवृत्त हो जाने पर, प्रीतिः = प्रेम, नीचे = नीच पुरुष में, प्रणश्यति = नष्ट हो जाती है, या = जो, च + एव = और ही, फलनिवृत्तिः = फल की प्राप्ति, सौहृदे = मित्रता में, च + एव = और ही, यत् सुखम् = जो सुख, अपवादाय = निन्दा के लिए, यतते = यत्न करता है, क्षये = नाश के लिए, यत्नमारभते = प्रयास करता है, अल्पेऽपि = थोड़ा भी, अपकृते = अपकार होने पर, मोहात् = मोह से, न शान्तिम् + अधिगच्छति = शान्ति को प्राप्त नहीं करता है, तादृशैः = इस प्रकार के, नीचैः = नीचों के साथ, नृशंसैः = क्रूर, अकृतात्मभिः = दुष्टों के साथ, निशम्य = सुनकर, निपुणम् = अच्छी प्रकार से, बुद्धया = बुद्धि से, विद्वान् = विद्वान्, दूरात् = दूर से, विवर्जयेत् = छोड़ देना चाहिए ।

हिन्दी—मित्रता के कारण के समाप्त हो जाने पर नीच पुरुष में भी प्रीति और जो फल की प्राप्ति है वह नष्ट हो जाती है; मित्रता में जो सुख है वह भी नष्ट हो जाता है । और जो निन्दा के एवं नाश के लिए यत्न करता है, जो थोड़े से अपकार के हो जाने पर शान्त नहीं होता है, ऐसे नीच कठोर दुष्ट जनों को अच्छी तरह से जानकर उसके साथ संगति दूर से ही विद्वानों को छोड़ देनी चाहिए ।

यो ज्ञातिमनुगृह्णाति दरिद्रं दीनमातुरम् ।
स पुत्रपशुभिर्वृद्धिं श्रेयश्चानन्त्यमश्नुते ।। १७ ।।

शब्दार्थ—यः = जो मनुष्य, ज्ञातिम् = सम्बन्धियों को, दरिद्रम् = दरिद्र को, दीनमातुरम् = दीन-दुःखियों को, अनुगृह्णाति = कृपा करता है, सः = वह, पुत्रपशुभिः = पुत्र और पशुओं से, वृद्धिम् = विकास को प्राप्त कर, आनन्त्यम् = अन्तरहित, श्रेयश्च = और कल्याण को, अश्नुते = प्राप्त करता है ।

हिन्दी—जो मनुष्य सम्बन्धियों, दरिद्रे तथा दीन-दुःखियों के ऊपर कृपा करता है, वह पुत्र और पशुओं से विकास प्राप्त कर अनन्त सुख को प्राप्त करता है ।

ज्ञातयो वर्धनीयास्तैर्य इच्छन्त्यात्मनः शुभम् ।
कुलवृद्धिं च राजेन्द्र तस्मात् साधु समाचर ।। १८ ।।
श्रेयसा योक्ष्यते राजन् कुर्वाणो ज्ञातिसत्क्रियाम् ।
विगुणा ह्यपि संरक्ष्या ज्ञातयो भरतर्षभ ।
किं पुनर्गुणवन्तस्ते त्वत्प्रसादाभिकाङ्क्षिणः ।। १९ ।।

शब्दार्थ—यः = जो, आत्मनः = अपना, शुभम् = शुभ, इच्छन्ति = चाहते हैं, तैः = उनके द्वारा, ज्ञातयः = सम्बन्धियों को, कुलवृद्धिम् = कुलवृद्धि को, वर्धनीयाः = बढ़ाना चाहिए, राजेन्द्र = हे धृतराष्ट्र ! तस्मात् = इसलिए, साधु = अच्छा, समाचर = आचरण करो, राजन् = हे धृतराष्ट्र ! श्रेयसा = कल्याण से, कुर्वाणः = करते हुए, ज्ञातिसत्क्रियाम् = सम्बन्धियों के सत्कार को, योक्ष्यते = युक्त होओगे, भरतर्षभ = हे

भरतवंशोत्पन्न, विगुणाः=गुण रहित भी, ज्ञातयः=सम्बन्धी लोग, संरक्ष्याः=रक्षा के योग्य होते हैं, किं पुनः=क्या फिर, गुणवन्तः=गुणवान्, ते=वे, त्वत्प्रसादाभि-काङ्क्षिणः=तुम्हारी कृपा चाहते हैं।

हिन्दी—जो मनुष्य अपना कल्याण चाहते हैं, उन्हें अपने कुटुम्बियों का संरक्षण करना चाहिए, इससे कुल की वृद्धि होगी। अतः हे राजन्! अच्छा आचरण करो। अपना कल्याण चाहते हो तो सम्बन्धियों का सत्कार करना चाहिए। गुणरहित सम्बन्धी भी संरक्षणीय हैं, फिर गुणवानों के विषय में क्या कहना, जो तुम्हारी कृपा की आकांक्षा करते हैं?

प्रसादं कुरु वीराणां पाण्डवानां विशाम्पते।
दीयतां ग्रामकाः केचित् तेषां वृत्त्यर्थमीश्वर॥ २०॥

शब्दार्थ—ईश्वर=हे धृतराष्ट्र! विशाम्पते=हे राजन्, वीराणाम्=वीरों, पाण्डवानाम्=पाण्डवों पर, प्रसादं कुरु=कृपा करो, केचित् ग्रामकाः=कुछ ग्राम, तेषां वृत्त्यर्थम्=उनके जीविका-निर्वाह के लिए, दीयताम्=दो।

हिन्दी—हे राजन्! वीर पाण्डवों पर कृपा करो, प्रसन्न हो जाओ, उनको जीविका-निर्वाह के लिए कुछ ग्राम दे दो।

एवं लोके यशः प्राप्तं भविष्यति नराधिप।
वृद्धेन हि त्वया कार्यं पुत्राणां तात शासनम्॥ २१॥

शब्दार्थ—नराधिप=हे राजन्! एवं लोके=इस प्रकार लोक में, यशः प्राप्तं भविष्यति=यश प्राप्त होगा। हि=निश्चय ही, तात=हे ज्येष्ठ भाई, वृद्धेन=वृद्ध, त्वया=तुम्हारे द्वारा, पुत्राणाम्=पुत्रों पर, शासनं कार्यम्=शासन करना चाहिए।

हिन्दी—हे राजन्! तुम्हें इस प्रकार लोक में यश प्राप्त होगा। तुम्हें वृद्ध होने के नाते पुत्रों पर शासन करना चाहिए। अर्थात् अच्छे मार्ग पर चलना चाहिए।

मया चापि हितं वाच्यं विद्धि मां त्वद्धितैषिणम्।
ज्ञातिभिर्विग्रहस्तात न कर्तव्यः शुभार्थिना।
सुखानि सह भोज्यानि ज्ञातिभिर्भरतर्षभ॥ २२॥

शब्दार्थ—मया चापि=और मुझे भी, हितं वाच्यम्=हितवचन कहना चाहिए, माम्=मुझे, त्वद्धितैषिणम्=तुम्हारे हितचिन्तक को, विद्धि=समझो, तात=हे भाई! ज्ञातिभिः=सगे-सम्बन्धियों के साथ, विग्रहः=लड़ाई, न कर्तव्यः=नहीं करना चाहिए, शुभार्थिना=कल्याण चाहने वाले, ज्ञातिभिः=सम्बन्धियों के साथ, सह सुखानि=साथ मिलकर सुख को, भोज्यानि=भोगने चाहिए।

हिन्दी—हे ज्येष्ठ भाई! मुझे भी हितकारक वचन कहना चाहिए, मुझे आप अपना हितैषी समझें। कल्याण चाहने वाले सम्बन्धियों के साथ लड़ाई नहीं करना चाहिए। हे राजन्! सुखों को सगे-सम्बन्धियों में बाँटकर भोगना चाहिए।

सम्भोजनं सकथनं सम्प्रीतिश्च परस्परम् ।
ज्ञातिभिः सह कार्याणि न विरोधः कदाचन ।। २३ ।।

शब्दार्थ—सम्भोजनम् = मिलकर भोग करना, सकथनम् = मिलकर बात करना, परस्परम् = परस्पर, सम्प्रीतिश्च = और समान प्रीति करना, ज्ञातिभिः सह = सगे-सम्बन्धियों के साथ, कार्याणि = करने चाहिए, कदाचन = कभी भी, विरोधः न = विरोध नहीं करना चाहिए ।

हिन्दी—सगे-सम्बन्धियों के साथ सह-भोजन, सह-वार्तालाप और परस्पर प्रेम करने चाहिए, कभी भी विरोध नहीं करना चाहिए ।

ज्ञातयस्तारयन्तीह ज्ञातयो मज्जयन्ति च ।
सुवृत्तास्तारयन्तीह दुर्वृत्ता मज्जयन्ति च ।। २४ ।।

शब्दार्थ—इह = इस लोक में, ज्ञातयः = सम्बन्धी लोग, तारयन्ति = पार कर देते हैं, च = और, ज्ञातयः = सम्बन्धी लोग, मज्जयन्ति=डुबो देते हैं, इह = इस लोक में, सुवृत्ताः = अच्छे आचार वाले, तारयन्ति = पार कर देते हैं, च = और, दुर्वृत्ताः = दुष्ट आचरण वाले, मज्जयन्ति = डुबो देते हैं ।

हिन्दी—इस संसार में सगे-सम्बन्धी लोग पार कर देते हैं और सगे-सम्बन्धी लोग ही डुबो देते हैं। इस संसार में अच्छे आचरण वाले पार कर देते हैं और दुष्ट आचरण वाले डुबो देते हैं ।

सुवृत्तो भव राजेन्द्र पाण्डवान् प्रति मानद ।
अधर्षणीयः शत्रूणां तैर्वृतस्त्वं भविष्यसि ।। २५ ।।

शब्दार्थ—मानद राजेन्द्र = मान के योग्य धृतराष्ट्र ! पाण्डवान् प्रति = पांडवों के प्रति, सुवृत्तो भव = अच्छे व्यवहार वाले बनो, तैर्वृतः = उनके द्वारा स्वीकार करने पर, त्वम् = तुम, शत्रूणाम् = शत्रुओं के लिए, अधर्षणीयः = अपराजेय, भविष्यसि = हो जाओगे ।

हिन्दी—हे मानयोग्य धृतराष्ट्र ! तुम पाण्डवों के प्रति अच्छे व्यवहार करने वाले होवो । पाण्डवों के द्वारा स्वीकार करने पर तुम शत्रुओं के लिए अपराजेय हो जाओगे ।

श्रीमन्तं ज्ञातिमासाद्य यो ज्ञातिरवसीदति ।
दिग्धहस्तं मृग इव स एनस्तस्य विन्दति ।। २६ ।।

शब्दार्थ—श्रीमन्तम् = आपको, ज्ञातिमासाद्य = सम्बन्धी-जन को प्राप्त करके, यः = जो, ज्ञातिरवसीदति = सम्बन्धी दुःखी होता है, दिग्धहस्तम् = विषाक्त बाण हाथ में धारण किये हुए को, मृग इव = हिरण के समान, सः = वह, एनः = पाप, तस्य विन्दति = उसको प्राप्त होता है ।

हिन्दी—जैसे विषाक्त बाण हाथ में धारण करने वाले के द्वारा मृग मारा जाता है

और पाप व्याध को लगता है, उसी प्रकार आपको सम्बन्धी प्राप्त करने के बाद यदि जो सम्बन्धी दु:खी होता है, उसका पाप आपको लगेगा।

विशेष—इस श्लोक द्वारा महात्मा विदुर ने स्पष्ट रूप से कहा है कि वृद्धों को सभी सगे-सम्बन्धियों का ध्यान रखना चाहिए। ऐश्वर्य का उपभोग मिलकर करना चाहिए, यथाभाग सबको मिलना चाहिए। जो अकेले उपभोग करता है वह पापों का भोग करता है। इसलिए ऋग्वेद में कहा गया है—'केवलाघो भवति केवलादी'। गीता कहती है—

'भुञ्जन्ते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात्' ॥ (गीता)

अर्थात् जो केवल अपने लिए पकाते हैं वे पापों को खाते हैं।

पश्चादपि नरश्रेष्ठ तव तापो भविष्यति।
तान् वा हतान् सुतान् वापि श्रुत्वा तदनुचिन्तय ॥ २७ ॥

शब्दार्थ—नरश्रेष्ठ = मनुष्यों में श्रेष्ठ धृतराष्ट्र ! पश्चादपि = पीछे भी, तव तापः = तुम्हें सन्ताप, भविष्यति = होगा, तान् वा हतान् = उन पाण्डवों के मरने को, सुतान् = पुत्रों को, श्रुत्वा = सुनकर, तदनुचिन्तय = उसका विचार करो।

हिन्दी—हे नरश्रेष्ठ ! उन पाण्डवों को अथवा अपने पुत्रों को मरा हुआ सुनकर तुम्हें सन्ताप होगा, अतः उस पर विचार करो।

येन खट्वां समारूढः परितप्येत कर्मणा।
आदावेव न तद् कुर्यादध्रुवे जीविते सति ॥ २८ ॥

शब्दार्थ—येन कर्मणा = जिस कर्म से, खट्वां समारूढः = खाट पर बैठकर, परितप्येत = दुःखी हो, अध्रुवे जीविते सति = विनाशशील जीवन में होने पर, तद् = उसको, आदौ एव = पहले ही, न कुर्य्यात् = न करे।

हिन्दी—जिस कर्म को करके खाट पर बैठकर सन्ताप करे, उसे पहले ही नहीं करना चाहिए। अर्थात् जिस कर्म से लोकनिन्दा और स्वयं सन्ताप हो, उसे पहले ही नहीं करना चाहिए।

न कश्चिन्नापनयते पुमानन्यत्र भार्गवात्।
शेषसम्प्रतिपत्तिस्तु बुद्धिमत्स्वेव तिष्ठति ॥ २९ ॥

शब्दार्थ—कश्चित् पुमान् = कोई पुरुष, न अपनयते = अनीति नहीं करता है, अन्यत्र भार्गवात् = शुक्राचार्य को छोड़कर, बुद्धिमत्सु तु = बुद्धिमानों में तो, शेषसम्प्रतिपत्तिः = भविष्य में होनेवाले कार्य का विचार, एव तिष्ठति = ही करता है।

हिन्दी—संसार में नीतिशास्त्र के आचार्य शुक्राचार्य के अतिरिक्त कोई ऐसा पुरुष नहीं है, जो अनीति का आचरण करे। भविष्य में होनेवाले कार्यों के विषय में विचार विद्वानों को करना चाहिए।

विशेष—शुक्राचार्य दैत्यगुरु के रूप में इतिहास में प्रसिद्ध है, लेकिन उन्होंने देवताओं के विरुद्ध दानवों को सदा संरक्षण दिया तथा पक्ष लिया। पुराणों में कश्यप

की दो पत्नी थी—दिति और अदिति। दिति के पुत्र दैत्य या दानव कहलाये और अदिति के पुत्र आदित्य देवता कहलाये। दैत्यों ने सदा अत्याचार किया, अन्याय किया, लेकिन दैत्यगुरु होने के कारण शुक्राचार्य ने उन्हीं का साथ दिया। परन्तु उनके द्वारा रचित शुक्रनीति अत्यन्त महत्त्वपूर्ण नीतिशास्त्र का ग्रन्थ है। ये भृगु के पुत्र थे। इसलिए भार्गव कहलाये। भार्गव नीति के विषय में महाभारत में तथा अन्यत्र बहुत चर्चाएँ हैं।

दुर्योधनेन यद्येतत् पापं तेषु पुरा कृतम्।
त्वया तत् कुलवृद्धेम प्रत्यानेयं नरेश्वर॥ ३०॥

शब्दार्थ—नरेश्वर=हे राजन्! दुर्योधनेन=दुर्योधन के द्वारा, यदि एतत् पापम् =यदि यह पाप, तेषु=उनके प्रति, पुराकृतम्=पहले किया गया है तो, तत्=वह, त्वया कुलवृद्धेन=कुलवृद्ध तुम्हारे द्वारा, प्रत्यानेयम्=निवारण करना चाहिए।

हिन्दी—हे राजन्! यदि दुर्योधन के द्वारा पाण्डवों के प्रति पापकर्म किया है तो कुलवृद्ध तुम्हारे द्वारा इसका निवारण करना चाहिए। अर्थात् यदि दुर्योधन ने पाण्डवों का राज्य ले लिया है तो आपके द्वारा वापस दिलवाना चाहिए।

तांस्त्वं पदे प्रतिष्ठाप्य लोके विगतकल्मषः।
भविष्यसि नरश्रेष्ठ पूजनीयो मनीषिणाम्॥ ३१॥

शब्दार्थ—नरश्रेष्ठ=हे मनुष्यों में श्रेष्ठ! तान्=उन पाण्डवों को, पदे प्रतिष्ठाप्य =स्थान पर स्थिर करके, लोके=लोक में, विगतकल्मषः=पापरहित होकर, मनीषिणाम्=विद्वानों के, पूजनीयः=पूजा के योग्य, भविष्यसि=होओगे।

हिन्दी—हे नरश्रेष्ठ! तुम उन पाण्डवों को उनके राज्य पर स्थिर करके स्वयं पापरहित होकर लोक में विद्वानों के द्वारा पूजनीय होओगे।

सुव्याहृतानि धीराणां फलतः परिचिन्त्य यः।
अध्यवस्यति कार्येषु चिरं यशसि तिष्ठति॥ ३२॥

शब्दार्थ—यः=जो, धीराणाम्=विद्वानों के, सुव्याहृतानि=अच्छे प्रकार से कहे गये, फलतः=फल की दृष्टि से, परिचिन्त्य=विचार करके, कार्येषु=कार्यों में, अध्यवस्यति=निश्चय करता है, चिरम्=चिर काल तक, यशसि=यश में, तिष्ठति =रहता है।

हिन्दी—जो मनुष्य विद्वान् पुरुषों के द्वारा कहे गये अच्छे वचनों को फल की दृष्टि से विचार करके कार्यों को करता है, वह बहुत काल तक यश का भागी होता है।

असम्यगुपयुक्तं हि ज्ञानं सुकुशलैरपि।
उपलभ्यं चाविदितं विदितं चाननुष्ठितम्॥ ३३॥

शब्दार्थ—सुकुशलैरपि=अच्छे लोगों के द्वारा भी, उपयुक्तम्=उपदिष्ट, ज्ञानम् =ज्ञान, हि=निश्चय ही, असम्यक्=व्यर्थ है, उपलभ्यम्=जानने योग्य को,

अविदितम् = नहीं जानना, च = और, विदितम् = ज्ञात को, अननुष्ठितम् = व्यवहार में नहीं लाया गया।

हिन्दी—कुशल लोगों के द्वारा दिया गया ज्ञान व्यर्थ है, यदि उसके कर्तव्य का ज्ञान प्राप्त नहीं होता अथवा ज्ञान प्राप्त होने पर भी उसको व्यवहार में नहीं लाया जाता।

पापोदयफलं विद्वान् यो नारभति वर्धते ॥ ३४ ॥
यस्तु पूर्वकृत पापमविमृश्यानुवर्तते।
अगाधपङ्के दुर्मेधा विषमे विनिपात्यते ॥ ३५ ॥

शब्दार्थ—यः = जो, विद्वान् = विद्वान्, पापोदयफलम् = पापरूपी फल के हेतु, न आरभति = आरम्भ नहीं करता है, वर्धते = वह उन्नति प्राप्त करता है, यस्तु = और जो, पूर्वकृतं पापं = पूर्व में किये गये पापों को, अविमृश्य = न विचार कर, अनुवर्तते = अनुसरण करता है, अगाधपङ्के = अथाह कीचड़ में (बहुत बड़ी विपत्ति में), दुर्मेधा = दुष्ट बुद्धिवाला, विषये = कठिन परिस्थिति में, विनिपात्यते = गिर जाता है।

हिन्दी—जो विद्वान् पापरूप फल देनेवाले कर्मों को आरम्भ नहीं करता, वह वृद्धि को प्राप्त करता है और जो पूर्व में किये गये पापों का विचार न करके उसी का अनुसरण करता है, वह दुष्ट बुद्धिवाला मूर्ख अथाह कीचड़ से भरे हुए विषम कष्ट में गिरा दिया जाता है।

मन्त्रभेदस्य षट् प्राज्ञो द्वाराणीमानि लक्षयेत्।
अर्थसन्ततिकामश्च रक्षेदेतानि नित्यशः ॥ ३६ ॥
मदं स्वप्नमविज्ञानमाकारं चात्मसम्भवम्।
दुष्टामात्येषु विश्रम्भं दूताच्चाकुशलादपि ॥ ३७ ॥

शब्दार्थ—प्राज्ञः = बुद्धिमान्, मन्त्रभेदस्य = मन्त्रभेद के, षट् द्वाराणि = छः द्वारों को, इमानि = इनको, लक्षयेत् = जाने, अर्थसन्ततिकामश्च = धन और पुत्र की इच्छा रखनेवाला, एतानि = इनकी, नित्यशः = सदा, रक्षेत् = रक्षा करे, मदं स्वप्नम् अविज्ञानम् = मद, स्वप्न, शत्रु के गुप्तचरों का ज्ञान, च = और, आत्मसम्भवम् = अपने में होनेवाले, आकारम् = आकार को, दुष्टामात्येषु = दुष्ट मन्त्रियों पर, विश्रम्भम् = विश्वास को, दूतात् = दूत से, च = और, अकुशलादपि = मूर्ख से भी।

हिन्दी—बुद्धिमान् मनुष्य मन्त्रभेद के इन छः द्वारों को जाने और धन-सम्मान को सुरक्षित रखने की इच्छा से इन सभी की रक्षा करे। मद्यपान, निद्रा, आवश्यक बातों की जानकारी न रखना, अपने नेत्र, मुख आदि का विकार, दुष्ट आत्माओं पर विश्वास और मूर्ख दूत पर भी भरोसा रखना।

द्वाराण्येतानि यो ज्ञात्वा संवृणोति सदा नृप।
त्रिवर्गाचरणे युक्तः स शत्रूनधितिष्ठति ॥ ३८ ॥

शब्दार्थ—नृप=हे राजन् ! यः=जो, एतानि द्वाराणि=इन द्वारों को, ज्ञात्वा =जानकर, सदा संवृणोति=सदा छिपा देता है, त्रिवर्गाचरणे=धर्म, अर्थ एवं काम के आचरण में, युक्तः=संलग्न, सः शत्रून्=वह शत्रुओं को, अधितिष्ठति=वश में कर लेता है।

हिन्दी—हे राजन् ! इन छः द्वारों को जानकर जो मनुष्य सदा छिपा लेता है, धर्म, अर्थ काम के आचरण में संलग्न वह मनुष्य शत्रुओं को वश में कर लेता है।

न वै श्रुतमविज्ञाय वृद्धाननुपसेव्य वा।
धर्मार्थौ वेदितुं शक्यौ बृहस्पतिसमैरपि ॥ ३९ ॥

शब्दार्थ—श्रुतमविज्ञाय=शास्त्र को न जानकर, वा=अथवा, वृद्धाननुपसेव्य= ज्ञानवृद्धों की सेवा न करके, बृहस्पतिसमैरपि=बृहस्पति के समान के द्वारा, धर्मार्थौ= धर्म और अर्थ को, वेदितुम्=जानने के लिए, शक्यौ=समर्थ, न वै=निश्चित रूप से नहीं है।

हिन्दी—शास्त्र और ज्ञान वृद्धों से सुने व जाने बिना बृहस्पति के समान भी धर्मार्थ को जानने में निश्चित रूप से असमर्थ हैं। अर्थात् शास्त्रों को पढ़े बिना और वृद्धों से जाने बिना कोई मनुष्य धर्मार्थ का ज्ञान नहीं कर सकता है।

नष्टं समुद्रे पतितं नष्टं वाक्यमश्रृण्वति।
अनात्मनि श्रुतं नष्टं नष्टं हुतमनग्निकम् ॥ ४० ॥

शब्दार्थ—समुद्रे पतितम्=समुद्र में गिरी हुई, नष्टम्=नष्ट हो जाती है, अश्रृण्वति=न सुनने वाले के प्रति कहा गया, वाक्यं नष्टम्=वचन नष्ट हो जाता है, अनात्मनि=बुद्धिहीन में, श्रुतं मष्टम्=शास्त्र नष्ट हो जाता है, अनग्निकम्= आग के बिना, हुतं नष्टम्=हवन नष्ट हो जाता है।

हिन्दी—समुद्र में गिरी हुई वस्तु नष्ट हो जाती है, सावधानीपूर्वक न सुनने वाले के प्रति कहा गया वाक्य नष्ट हो जाता है, बुद्धिहीन पुरुषों में शास्त्र नष्ट हो जाता है और आग के बिना किया गया हवन नष्ट हो जाता है।

मत्या परीक्ष्य मेधावी बुद्धया सम्पाद्य चासकृत्।
श्रुत्वा दृष्ट्वाथ विज्ञाय प्राज्ञैर्मैत्रीं समाचरेत् ॥ ४१ ॥

शब्दार्थ—मेधावी=विद्वान्, मत्या=मनन के द्वारा, परीक्ष्य=परीक्षा करके, बुद्धया=बुद्धि के द्वारा, असकृत्=अनेक बार, च सम्पाद्य=और करके, अथ=इसके बाद, श्रुत्वा दृष्ट्वा विज्ञाय=सुनकर, देखकर और जानकर, प्राज्ञैः=विद्वानों के साथ, मैत्रीम्=मित्रता, समाचरेत्=करे।

हिन्दी—विद्वान् युक्तिपूर्वक बुद्धि से परीक्षण करके, अनेक बार बुद्धि से व्यवहार करके, सुनकर, देखकर और जानकर विद्वानों के साथ मैत्री का व्यवहार करे।

अकीर्तिं विनयो हन्ति हन्त्यनर्थं पराक्रमः।
हन्ति नित्यं क्षमा क्रोधमाचारो हन्त्यलक्षणम् ॥ ४२ ॥

शब्दार्थ——अकीर्तिम् = अपयश को, विनयः = नम्रता, हन्ति = नष्ट करती है, अनर्थम् = अनर्थ को, पराक्रमः = पराक्रम, हन्ति = नष्ट करता है, क्रोधम् = क्रोध को, नित्यं क्षमा = नित्य क्षमा, हन्ति = नष्ट करती है, अलक्षणम् = कुलक्षण को, आचारः = आचार, हन्ति=नष्ट करता है ।

हिन्दी—विनय अपयश को नष्ट कर देता है, पराक्रम अनर्थ को नष्ट करता है, क्षमा सदा क्रोध को दूर भगा देती है और सदाचार दुव्यर्वसनों को नष्ट कर देता है ।

परिच्छदेन क्षेत्रेण वेश्मना परिचर्यया ।
परीक्षेत कुलं राजन् भोजनाच्छादनेन च ॥ ४३ ॥

शब्दार्थ—राजन् = हे राजन्, परिच्छदेन = भोग-सामग्री से, क्षेत्रेण = जन्मस्थान से, वेश्मना = आवास से, परिचर्यया = सेवा से, भोजनाच्छादनेन = भोजन तथा वस्त्र से, कुलम् = वंश की, परीक्षेत = परीक्षा करे ।

हिन्दी——हे राजन् ! भोग्य-सामग्री, जन्मस्थान, आवास, सेवा और भोजन तथा वस्त्र से कुल की परीक्षा करे ।

उपस्थितस्य कामस्य प्रतिवादो न विद्यते ।
अपि निर्मुक्तदेहस्य कामसक्तस्य किं पुनः ॥ ४४ ॥

शब्दार्थ——अपि निर्मुक्तदेहस्य = शरीर के अहंकार से रहित मनुष्य का भी, उपस्थितस्य कामस्य = उपस्थित कामना का, प्रतिवादः = विरोध, न विद्यते = नहीं होता है, कामसक्तस्य = कामों में आसक्त का, किं पुनः = फिर क्या ?

हिन्दी——शरीर से अभिमान से रहित मनुष्य को भी स्वतः प्राप्त किसी अभीष्ट वस्तु का विरोध नहीं होता है, फिर कामासक्त मनुष्य का तो कहना ही क्या ?

प्राज्ञोपसेविनो वैद्यं धार्मिकं प्रियदर्शनम् ।
मित्रवन्तं सुवाक्यं च सुहृदं परिपालयेत् ॥ ४५ ॥

शब्दार्थ—प्राज्ञोपसेविनः=विद्वानों की सेवा करने वाले को, वैद्यम्=चिकित्सक को, धार्मिकम् = धार्मिक को, प्रियदर्शनम् = देखने मात्र से आनन्द देने वाले को, मित्रवन्तम् = मित्रों से युक्त को, सुवाक्यम् = मधुरभाषी को, च = और, सुहृदम् = मित्र को, परिपालयेत् = सर्वथा रक्षा करे ।

हिन्दी——विद्वानों के सेवक, विद्वान्, धार्मिक, दर्शन मात्र से प्रसन्न करने वाले, मित्रों से युक्त तथा मधुरभाषी मित्र की सर्वथा रक्षा करे ।

दुष्कुलीनः कुलीनो वा मर्यादां यो न लङ्घयेत् ।
धर्मापेक्षी मृदुर्ह्रीमान् स कुलीनशतात् वरः ॥ ४६ ॥

शब्दार्थ—यः = जो, दुष्कुलीनः = अधम कुल में उत्पन्न होने वाला, वा = अथवा, कुलीनः = उत्तम कुलोत्पन्न, मर्यादाम् = सीमा को, न लङ्घयेत् = पार न करे, सः =

वह, धर्मापेक्षी = धार्मिक, मृदुः = कोमल, ह्रीमान्=लज्जाशील, कुलीनशतात् = सैकड़ों कुलीनों से, वरः = श्रेष्ठ है।

हिन्दी — जो मनुष्य उत्तम कुल में जन्म लिया हो या अधम कुल में, सीमा को पार नहीं किया है, धार्मिक लज्जाशील वह सैकड़ों कुलीनों से श्रेष्ठ है।

ययोश्चित्तेन वा चित्तं निभृतं निभृतेन वा।
समेति प्रज्ञया प्रज्ञा तयोर्मैत्री न जीर्यति ॥ ४७ ॥

शब्दार्थ—ययोः = जिन दो मनुष्यों के, चित्तेन चित्तम् = मन के साथ मन मिलता हो, वा = अथवा, निभृतेन निभृतम् = गुप्त रहस्यों के साथ गुप्त रहस्य, प्रज्ञया प्रज्ञा = बुद्धि के साथ बुद्धि, समेति = मिल जाता है, तयोः = उन दोनों की, मैत्री = मित्रता, न जीर्यति = समाप्त नहीं होती है।

हिन्दी—जिन दो मनुष्यों के चित्त के साथ चित्त अथवा गुप्त रहस्यों के साथ गुप्त रहस्य अथवा बुद्धि के साथ बुद्धि मिल जाती है, उनकी मित्रता कभी समाप्त नहीं होती है।

दुर्बुद्धिमकृतप्रज्ञं छन्नं कूपं तृणैरिव।
विवर्जयति मेधावी तस्मिन् मैत्री प्रणश्यति ॥ ४८ ॥

शब्दार्थ—दुर्बुद्धिम् = विपरीत बुद्धि वाले, अकृतप्रज्ञम् = विवेकशून्य मनुष्य को, छन्नं कूपम् = ढके हुए कुएँ को, तृणैरिव=घासों के समान, मेधावी=विद्वान्, विवर्जयति = छोड़ देता है, तस्मिन् = उसके साथ, मैत्री = मित्रता, प्रणश्यति = नष्ट हो जाती है।

हिन्दी—बुद्धिमान् मनुष्य विपरीत बुद्धि वाले तथा विवेकशून्य मनुष्य का साथ घासों से ढके हुए कुएँ के समान छोड़ देता है। क्योंकि उसके साथ की हुई मित्रता नष्ट हो जाती है।

अवलिप्तेषु मूर्खेषु रौद्रसाहसिकेषु च।
अथैवापेतधर्मेषु न मैत्रीमाचरेत् बुधः ॥ ४९ ॥

शब्दार्थ—अवलिप्तेषु = अभिमानियों में (उनके साथ), मूर्खेषु = मूर्खों में (उनके साथ), रौद्रसाहसिकेषु = क्रोधी तथा साहसी या क्रूर कर्म करने वालों में, (उनके साथ), च=और, तथैव=वैसे ही, अपेतधर्मेषु=धर्मरहितों में (उनके साथ), बुधः = विद्वान्, मैत्रीम् = मित्रता को, न आचरेत् = आचरण न करे।

हिन्दी — विद्वान् को चाहिए कि वह अभिमानी, मूर्ख, क्रोधी, साहसी और अधार्मिकों के साथ मित्रता न करे।

कृतज्ञं धार्मिकं सत्यमक्षुद्रं दृढभक्तिकम्।
जितेन्द्रियं स्थितं स्थित्यां मित्रमत्यागि चेष्यते ॥ ५० ॥

शब्दार्थ—कृतज्ञम्=उपकार को मानने वाला, धार्मिकम्=धर्म में आस्था रखने वाला, सत्यम् = सत्य बोलने वाला, अक्षुद्रम् = उदार, दृढभक्तिकम् = स्थिर

भक्ति वाला, जितेन्द्रियम् = संयमी, स्थितं स्थित्याम् = मर्यादा में स्थिर, मित्रमत्यागि = मित्र को नहीं छोड़ने वाला, च इष्यते = और इष्ट होता है।

हिन्दी — उपकार को मानने वाला, धार्मिक, सत्यवादी, उदार, स्थिर भक्ति वाला, संयमी, मर्यादा में स्थित तथा मित्रता का त्याग नहीं करने वाला इष्ट होता है।

इन्द्रियाणामनुत्सर्गो मृत्युनापि विशिष्यते।
अत्यर्थं पुनरुत्सर्गः सादयेद् दैवतानपि ॥ ५१ ॥

शब्दार्थ — इन्द्रियाणाम् = इन्द्रियों की, अनुत्सर्गः = विषयों से निवृत्ति, मृत्युना अपि = मृत्यु से भी, विशिष्यते = बढ़कर कठिन है, पुनः = फिर, अत्यर्थम् = अत्यधिक, उत्सर्गः = विषयों में प्रवृत्ति, दैवतान् अपि = देवताओं को भी, सादयेत् = नष्ट कर सकती है।

हिन्दी — इन्द्रियों की विषयों से निवृत्ति मृत्यु से भी अधिक कठिन है, फिर विषयों में अधिक प्रवृत्ति तो देवताओं को भी नष्ट कर सकती है।

मार्दवं सर्वभूतानामनसूया क्षमा धृतिः।
आयुष्याणि बुधाः प्राहुर्मित्राणां चावमानना ॥ ५२ ॥

शब्दार्थ — मार्दवम् = कोमल व्यवहार, सर्वभूतानाम् = सब प्राणियों के प्रति, अनसूया = गुणों में दोष न देखना, क्षमा = सहनशीलता, धृतिः = धैर्य, च = और, मित्राणामवमानना = मित्रों का अपमान न करना, बुधाः = विद्वान् लोग, आयुष्याणि = आयु को बढ़ाने वाले, प्राहुः = कहते हैं।

हिन्दी — सभी प्राणिओं के प्रति कोमल व्यवहार, गुणों में दोष न देखना, सहनशीलता, धैर्य और मित्रों का अपमान न करना — ये गुण आयु को बढाने वाले हैं — ऐसा विद्वान् लोग कहते हैं।

अपनीतं सुनीतेन योऽर्थं प्रत्यानिनीषते।
मतिमास्थाय सुदृढां तदकापुरुषव्रतम् ॥ ५३ ॥

शब्दार्थ — यः = जो, अपनीतम् = अन्याय से नष्ट को, सुनीतेन = श्रेष्ठ नीति से, अर्थम् = धन को, प्रत्यानिनीषते = पुनः प्राप्त करने की इच्छा करता है, मतिमास्थाय = बुद्धि का सहारा लेकर, सुदृढाम् = स्थिर, तद = वह, अकापुरुषव्रतम् = वीरों का आचरण करता है।

हिन्दी — जो मनुष्य अन्याय से नष्ट हुए धन को स्थिर बुद्धि का सहारा लेकर श्रेष्ठ नीति से पुनः प्राप्त करने की इच्छा करता है, वह वीरों का आचरण करता है।

आयत्यां प्रतिकारज्ञस्तदात्वे दृढनिश्चयः।
अतीते कार्यशेषज्ञो नरोऽर्थैर्न प्रहीयते ॥ ५४ ॥

शब्दार्थ — आयत्याम् = आगामी काल में, प्रतिकारज्ञः = प्रतिकार को जानने वाला, तदात्वे = वर्तमान काल में, दृढनिश्चयः = दृढनिश्चय वाला, अतीते = भूतकाल में,

कार्यशेषज्ञः = अवशिष्ट कार्य को जानने वाला, नरः = मनुष्य, अर्थैः = धनों से, न प्रहीयते = हीन नहीं होता है ।

हिन्दी—आगामी काल में दुःखों के प्रतिकार को जानने वाला, वर्तमान काल में निश्चय वाला और भूतकाल में अवशिष्ट कार्य को जानने वाला मनुष्य धनों से रहित नहीं होता है ।

कर्मणा मनसा वाचा यदभीक्ष्णं निषेवते ।
तदेवापहरत्येनं तस्मात् कल्याणमाचरेत् ॥ ५५ ॥

शब्दार्थ—कर्मणा = कर्म से, मनसा = मन से, वाचा = वाणी से, यदभीक्ष्णम् = जो पुनः-पुनः, निषेवते = सेवन करता है, तदेव = वही, अपहरति = अपनी ओर खींच लेता है, तस्मादेनम् = इसलिए इसको, कल्याणमाचरेत् = शुभ कर्मों को करे ।

हिन्दी—मनुष्य मन, वाणी तथा कर्म से जिस विषय का पुनः-पुनः सेवन करता है, वही उसको अपनी ओर खींच लेता है । इसलिए मनुष्य शुभ कार्य ही करे ।

मङ्गलालम्भनं योगः श्रुतमुत्थानमार्जवम् ।
भूतिमेतानि कुर्वन्ति सतां चाभीक्ष्णदर्शनम् ॥ ५६ ॥

शब्दार्थ—मङ्गलालम्भनम्=मङ्गलकारी वस्तुओं का स्पर्श, योगः=चित्तवृत्तियों का निरोध, उत्थानमार्जवम् = उद्योग, सरलता, सताम् = सज्जनों का, अभीक्ष्णदर्शनञ्च = और बार-बार दर्शन, एतानि = ये, भूतिं कुर्वन्ति = कल्याण करते हैं ।

हिन्दी—मङ्गलकारी वस्तुओं का स्पर्श, चित्तवृत्तियों का निरोध, शास्त्रश्रवण, उद्योग, सरलता और सत्पुरुषों का पुनः-पुनः दर्शन—ये कल्याण करते हैं अर्थात् सुखकारी होते हैं ।

विशेष—रत्नों एवं सुवर्ण धारण करने से कल्याण होता है और आयु की वृद्धि होती है । इसलिए कहा गया है कि—'यो बिभर्ति दाक्षायणं हिरण्यं स देवेषु कृणुते दीर्घमायुः' । अतः प्राचीन काल से ही रत्न धारण करने की परम्परा सर्वत्र देखी जाती है । इसी ओर नीतिकार ने संकेत किया है ।

अनिर्वेदः श्रियो मूलं लाभस्य च शुभस्य च ।
महान् भवत्यनिर्विण्णः सुखं चानन्त्यमश्नुते ॥ ५७ ॥

शब्दार्थ—अनिर्वेदः = कर्म से निवृत्ति नहीं होना, सदा प्रसन्न रहना, श्रियो मूलम् = सम्पत्ति का मूल है, लाभस्य च सुखस्य = लाभ और सुख का, महान् = श्रेष्ठ लोग, अनिर्विण्णः = उद्योग करने वाला, भवति = होता है, च = और, आनन्त्यम् = अन्त रहित, सुखमश्नुते = सुख भोगता है ।

हिन्दी—कर्म से निवृत्ति नहीं होना एवं सदा प्रसन्न रहना सुख और लाभ का मूल है । महान् लोग कभी दुःखी नहीं होते और अनन्त सुख को भोगते हैं ।

नातः श्रीमत्तरं किञ्चिदन्यत् पथ्यतमं मतम् ।
प्रभविष्णोर्यथा तात क्षमा सर्वत्र सर्वदा ॥ ५८ ॥

शब्दार्थ--तात=हे भाई ! श्रीमत्तरम्=विभूति युक्त, किञ्चित्=कुछ, अन्यत् पथ्यतमम्=अन्य अति कल्याणकारी, मतम्=मत, नात:=इससे नहीं है, प्रभविष्णोः =समर्थ पुरुष का, सर्वत्र=सब स्थान पर, सर्वदा=सभी कालों में, क्षमा= क्षमा है।

हिन्दी—हे भाई ! इससे अधिक विभूतियुक्त तथा अत्यन्त कल्याणकारी अन्य कोई उपाय नहीं माना गया है, जैसा कि समर्थ मनुष्य के लिए सभी स्थानों और सभी कालों में क्षमा का आचरण करना।

क्षमेदशक्तः सर्वस्य शक्तिमान् धर्मकारणात्।
अर्थानर्थौ समौ यस्य तस्य नित्यं क्षमा हिता॥ ५९॥

शब्दार्थ—अशक्तः=शक्तिहीन, सर्वस्य=सबको, क्षमेत्=क्षमा करे, शक्तिमान् =शक्तिशाली, धर्मकारणात्=धर्म के कारण, क्षमेत्=क्षमाशील हो, अर्थानर्थौ= अर्थ और अनर्थ, यस्य=जिसके, समौ=समान हैं, तस्य=उसको, नित्यम्=नित्य, क्षमा हिता=क्षमा हितकारी है।

हिन्दी—शक्तिहीन मनुष्य सबको क्षमा करे, इसके अतिरिक्त और रास्ता ही नहीं। शक्तिशाली मनुष्य को धर्म का विचार कर क्षमा करना चाहिए। जिसके लिए अच्छा और बुरा दोनों बराबर है, उसके लिए क्षमा नित्य हितकारी होती है।

यत् सुखं सेवमानोऽपि धर्मार्थाभ्यां न हीयते।
कामं तदुपसेवेत न मूढव्रतमाचरेत्॥ ६०॥

शब्दार्थ—यत् सुखम्=जिस सुख को, सेवमानः=सेवन करता हुआ, अपि= भी, धर्मार्थाभ्याम्=धर्म तथा अर्थ से, न हीयते=वियुक्त नहीं होता है, तत्कामम्= उसको इच्छानुसार, उपसेवेत=उपभोग करे, मूढव्रतम्=मूर्खों का व्यवहार, न आचरेत्=आचरण न करे।

हिन्दी—जिस सुख को भोगता हुआ भी मनुष्य धर्म-अर्थ से अलग नहीं होता है, उसका इच्छानुसार उपभोग करे, परन्तु विषयों में अत्यन्त आसक्ति न हो।

दुःखार्त्तेषु प्रमत्तेषु नास्तिकेष्वलसेषु च।
न श्रीर्वसत्यदान्तेषु ये चोत्साहविवर्जिताः॥ ६१॥

शब्दार्थ—दुःखार्त्तेषु=दुःख से पीडितों में, प्रमत्तेषु=प्रमादियों में, नास्तिकेषु= ईश्वर की सत्ता नहीं मानने वालों में, अलसेषु=आलसियों में, अदान्तेषु=असंयमियों में, श्रीः=सम्पत्ति, न वसति=नहीं रहती है, च=और, ये=जो, उत्साहवर्जिताः =उत्साहहीन हैं।

हिन्दी—दुःख से पीडित, प्रमादी, नास्तिक, आलसी, असंयमी, उत्साहहीन जनों में लक्ष्मी नहीं रहती है। अर्थात् इन अवगुणों के रहते हुए लक्ष्मी वहाँ नहीं रह सकती है। वहाँ से छोड़कर वह दूसरी जगह चली जाती है।

आर्जवेन नरं युक्तमार्जवाद् सव्यपत्रपम् ।
अशक्तं मन्यमानास्ते धर्षयन्ति कुबुद्धयः ॥ ६२ ॥

शब्दार्थ—कुबुद्धयः=दुष्ट बुद्धिवाले, आर्जवेन युक्तम्=सरलता से युक्त को, नरम्=मनुष्य को, आर्जवात् सव्यपत्रपम्=सरलता के कारण लज्जाशील को, आशक्तम् मन्यमानाः=दुर्वल मानते हुए, तु=तो, धषर्यन्ति=तिरस्कार करते हैं।

हिन्दी—दुष्ट वुद्धिवाले मनुष्य सरलता से युक्त तथा सरलता के कारण ही लज्जाशील मनुष्य को दुर्वल समझ कर तिरस्कार करते हैं।

अत्यार्यमतिदातारमतिशूरमतिव्रतम् ।
प्रज्ञाभिमानिनं चैव श्रीर्भयान्नोपसर्पति ॥ ६३ ॥

शब्दार्थ—अत्यार्यम्=अतिश्रेष्ठ को, अतिदातारम्=अतिदानशील को, अतिशूरम्=अतिवीर को, अतिव्रतम्=दृढ़व्रती को, चैव=और ही, प्रज्ञाभिमानिनम्=बुद्धि का अभिमान रखनेवाले के पास, श्रीः=लक्ष्मी, भयात्=भय से, न उपसर्पति=समीप नहीं जाती है।

हिन्दी—अतिश्रेष्ठ, अत्यन्त दानशील, अत्यधिक वीर, अत्यधिक व्रतों का पालन करने वाले और बुद्धि का अभिमान करने वाले के पास लक्ष्मी भय के कारण नहीं जाती है।

न चातिगुणवत्स्वेषा नात्यन्तं निर्गुणेषु च ।
नैषा गुणान् कामयते नैर्गुण्यान्नानुरज्यते ।
उन्मत्ता गौरिवान्धा श्रीः क्वचिदेवावतिष्ठते ॥ ६४ ॥

शब्दार्थ—श्रीः=लक्ष्मी, न च अतिगुणवत्सु=न अधिक गुणवानों में, एषा न=यह लक्ष्मी नहीं रहती है, न च अत्यन्तं निर्गुणम्=और न अत्यन्त निर्गुण में रहती है, न च एषा=और न लक्ष्मी, गुणान् कामयते=गुणों की कामना करती है, न नैर्गुण्यात्=न निर्गुणों के साथ रहती है, अनुरज्यते=अनुरक्त होती है, उन्मत्ता गौरिव=उन्मत्त गौ के समान, अन्धा श्रीः=अन्धी लक्ष्मी, क्वचिदेव=कहीं पर ही, अवतिष्ठते=ठहरती है।

हिन्दी—लक्ष्मी न तो अत्यन्त गुणवानों के पास रहती है और न सर्वथा गुणरहित मनुष्यों के पास, न तो गुणों को चाहती है और न गुणहीनों से अनुराग करती है; उन्मत्त गौ के समान यह अन्धी लक्ष्मी कहीं-कहीं ही रहती है।

अग्निहोत्रफला वेदाः शीलवृत्तफलं श्रुतम् ।
रतिपुत्रफला नारी दत्तभुक्तफलं धनम् ॥ ६५ ॥

शब्दार्थ—वेदाः=वेद, अग्निहोत्रफलाः=हवन, बलि, वैश्वदेव इत्यादि फल है, श्रुतम्=शास्त्र, शीलवृत्तफलं=सदाचार और शील स्वभाव फल है, नारी=स्त्री, रतिपुत्रफला=सुख और सन्तान फलवाली है, धनम्=धन, दत्तभुक्तफलम्=देना और उपभोग करना फल है।

हिन्दी—वेद का प्रयोजन हवन, बलि-वैश्वदेव इत्यादि है। शास्त्र के शील, सदाचार फल है। नारी सुख और पुत्र फलवाली है। धन का उपभोग और दान फल है।

अधर्मोपार्जितैरर्थैर्यः करोत्यौर्ध्वदेहिकम्।
न स तस्य फलं प्रेत्य भुङ्क्तेऽर्थस्य दुरागमात्॥ ६६॥

शब्दार्थ—यः = जो मनुष्य, अधर्मोपार्जितैः = अधर्म के द्वारा कमाये गये, अर्थैः = धनों से, और्ध्वदेहिकम् = श्राद्ध कर्म को, करोति = करता है, सः तस्य = वह उसका, फलं प्रेत्य = मृत्यु के पश्चात् फल का, न भुङ्क्ते = भोग नहीं करता है, अर्थस्य = धन के, दुरागमात् = अनुचित मार्ग से आने के कारण।

हिन्दी—जो मनुष्य अधर्म के द्वारा उपार्जित धनों से श्राद्ध कर्म करता है वह उसका फल प्राप्त करके धन दूषित मार्ग से आने के कारण नहीं भोगता है।

कान्तारे वनदुर्गेषु कृच्छ्रास्वापत्सु सम्भ्रमे।
उद्यतेषु च शस्त्रेषु नास्ति सत्त्ववतां भयम्॥ ६७॥

शब्दार्थ—कान्तारे = वन में, वनदुर्गेषु = वन के दुर्गम स्थानों में, कृच्छ्रासु = कठिन, आपत्सु = विपत्ति के समय में, सम्भ्रमे = हलचल में, शस्त्रेषु उद्यतेषु = शस्त्रों के उठ जाने पर, सत्त्ववताम् = मनोबल युक्त मनुष्य को, भयं नास्ति = भय नहीं है।

हिन्दी—वन में, वन के दुर्गम स्थानों में, कठिन विपत्ति के समय तथा युद्धादि की हलचल के समय मरने-मारने के लिए शस्त्र उठ जाने पर मनोबल युक्त मनुष्य को भय नहीं होता है।

उत्थानं संयमो द्राक्ष्यमप्रमादो धृतिः स्मृतिः।
समीक्ष्य च समारम्भो विद्धि मूलं भवस्य तु॥ ६८॥

शब्दार्थ—उत्थानम् = उद्योग, संयमः = संयम, दास्यम् = निपुणता, अप्रमादः = सावधानी, धृतिः = धैर्य, स्मृतिः = स्मरणशक्ति, समीक्ष्य = विचार कर, भवस्य मूलम् = उन्नति का मूल, विद्धि = जानो, च = और, समारम्भः = कार्यारम्भ करो।

हिन्दी—उद्योग, संयम, निपुणता, सावधानी, धैर्य, स्मरणशक्ति और विचार कर कार्यों को प्रारम्भ करना—इनको सम्पन्नता और उन्नति का मूल समझो।

तपोबलं तापसानां ब्रह्म ब्रह्मविदां बलम्।
हिंसा बलमसाधूनां क्षमा गुणवतां बलम्॥ ६९॥

शब्दार्थ—तापसानाम् = तपस्वियों का, तपोबलम् = तपस्या बल है, ब्रह्मविदाम् = ब्रह्म जाननेवालों के, ब्रह्म बलम् = ब्रह्म बल है, असाधूनाम् = दुर्जनों का, हिंसा बलम् हिंसा बल है, गुणवताम् = गुणवानों का, क्षमाबलम् = क्षमा बल है।

हिन्दी—तपस्वियों का बल तपस्या है, ब्रह्म जाननेवालों का ब्रह्म, दुर्जनों का हिंसा और गुणवानों का बल क्षमा है।

अष्टौ तान्यव्रतघ्नानि आपो मूलं फलं पयः।
हविर्ब्राह्मणकाम्या च गुरोर्वचनमौषधम्॥ ७०॥

शब्दार्थ—आपः = जल, मूलम् = मूल, फलम् = फल, पयः = दूध, हविः = घी, ब्राह्मणकाम्या = ब्राह्मण की कामना, गुरोर्वचनम् = गुरु का वचन, औषधिः = दवाई, अष्टौ = आठ, तानि = वे, अव्रतघ्नानि = व्रत को भङ्ग नहीं करने वाले होते हैं।

हिन्दी—जल, मूल, फल, दूध, घी, ब्राह्मण की कामना, गुरु का वचन और औषधि—ये आठ व्रत को भंग करने वाले नहीं होते हैं।

न तत् परस्य सन्दध्यात् प्रतिकूलं यदात्मनः।
सङ्ग्रहेणैष धर्मः स्यात् कामादन्यः प्रवर्तते ॥ ७१ ॥

शब्दार्थ—यदात्मनः=जो आत्मा के लिए, प्रतिकूलम् = विरुद्ध है, तत् = वह, परस्य = दूसरे के लिए, न सन्दध्यात्=नहीं करे, संग्रहेण = संक्षेप से, एष धर्मः स्यात्= यह धर्म होता है, कामादन्यः प्रवर्तते = कामना से अधर्म प्रवर्त्तित होता है।

हिन्दी—जो आत्मा के लिए प्रतिकूल हो उसे दूसरे के लिए न करे, संक्षेप में यही धर्म है। कामनाओं से अधर्म होता है।

अक्रोधेन जयेत् क्रोधमसाधुं साधुना जयेत्।
जयेत् कदर्यं दानेन जयेत् सत्येन चानृतम् ॥ ७२ ॥

शब्दार्थ—क्रोधम् = क्रोध को, अक्रोधेन = स्नेह से, जयेत् = जीतना चाहिए, साधुना = सज्जनों के द्वारा, असाधुम् = दुर्जन को, जयेत् = जीतना चाहिए, कदर्यम् = कृपण को, दानेन = दान के द्वारा, जयेत् = जीते, अनृतम् = झूठ को, सत्येन = सत्य के द्वारा, जयेत् = जीतना चाहिए।

हिन्दी—क्रोध को प्रेम से, दुर्जन को सज्जनता से, कृपण को दान से और झूठ को सत्य के द्वारा जीतना चाहिए।

स्त्रीधूर्त्तकेऽलसे भीरौ चण्डे पुरुषमानिनि।
चौरे कृतघ्ने विश्वासो न कार्यो न च नास्तिके ॥ ७३ ॥

शब्दार्थ—स्त्रीधूर्त्तके = स्त्री और धूर्त्त पर, अलसे = आलसी पर, भीरौ = डरपोक पर, चण्डे = क्रोधी पर, पुरुषमानिनि = पुरुषत्व पर अभिमान करने वाले पर, चौरे = चोर पर, कृतघ्ने = उपकार नहीं मानने वाले पर, च = और, नास्तिके = वेद की निन्दा करने वाले पर, विश्वासः न कार्यः = विश्वास नहीं करना चाहिए।

हिन्दी—स्त्री, धूर्त्त, आलसी, डरपोक, क्रोधी, पुरुषत्व के अभिमानी, चोर, उपकार को न मानने वाले और नास्तिक पर विश्वास नहीं करना चाहिए।

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः।
चत्वारि सम्प्रवर्धन्ते आयुर्विद्या यशो बलम् ॥ ७४ ॥

शब्दार्थ—अभिवादनशीलस्य = गुरुजनों को सत्कार करने वाले के, नित्यम् = सदा, वृद्धोपसेविनः = श्रेष्ठ जनों की सेवा करने वाले के, आयुर्विद्या यशो बलम् = आयु, विद्या, यश और बल, चत्वारि = चार, सम्प्रवर्धन्ते = बढ़ते हैं।

हिन्दी—गुरुजनों का आदर करने वाले, श्रेष्ठों की सेवा करने वाले मनुष्य के आयु, विद्या, यश और बल—ये चारों की वृद्धि होती है।

अतिक्लेशेन येऽर्थाः स्युर्धर्मस्यातिक्रमेण वा।
अरेर्वा प्रणिपातेन मा स्म तेषु मनः कृथाः ॥ ७५ ॥

शब्दार्थ—येऽर्थाः = जो धन, अतिक्लेशेन = अत्यन्त कष्ट से, धर्मस्यातिक्रमेण = धर्म का उल्लंघन करने से, वा = अथवा, अरेः = शत्रु के प्रणिपात से मिले, तेषु = उनमें, मनः = मन को, मा स्म कृथाः = मत लगाओ।

हिन्दी—जो धन अत्यन्त कष्ट से, धर्म के उल्लंघन से तथा शत्रुओं के सामने झुकने से प्राप्त हो, उसमें मन को कभी भी नहीं लगाओ। अर्थात् आचार मत करो।

अविद्यः पुरुषः शोच्यः शोच्यं मैथुनमप्रजम्।
निराहाराः प्रजाः शोच्याः शोच्यं राष्ट्रमराजकम् ॥ ७६ ॥

शब्दार्थ—अविद्यः पुरुषः = विद्याहीन पुरुष, शोच्यः = शोचनीय है, अप्रजम् = सन्तान के बिना, मैथुनम् = सम्भोग, शोच्यम् = शोचनीय है, निराहाराः प्रजाः = भोजन के बिना प्रजा, शोच्याः = शोचनीय हैं, अराजकम् = राजा के बिना, राष्ट्रम् = राष्ट्र, शोच्यम् = शोचनीय है।

हिन्दी—विद्या से विहीन मनुष्य शोचनीय है, सन्तान के बिना मैथुन शोचनीय है भोजन के बिना प्रजा शोचनीय है और राजा के बिना राष्ट्र शोचनीय है।

अध्वा जरा देहवतां पर्वतानां जलं जरा।
असम्भोगो जरा स्त्रीणां वाक्शल्यं मनसो जरा ॥ ७७ ॥

शब्दार्थ—देहवताम् = मनुष्यों के लिए, अध्वा = मार्ग, जरा = वृद्ध करने वाला होता है, पर्वतानाम् = पर्वतों को, जलम् = जल, जरा = नष्ट करने वाला होता है, स्त्रीणाम् = स्त्रियों का, असम्भोगः = मैथुन नहीं करना, जरा = क्षीण करनेवाला, मनसः = मन को, वाक्शल्यम् = वचन रूपी बाण, जरा = कष्ट देनेवाला होता है।

हिन्दी—अधिक चलना मनुष्यों की आयु को कम करता है, जल पर्वतों को कम कर देता है, इच्छा रहते मैथुन न करना स्त्रियों की आयु कम करती है और कटु वचन मन को कष्ट देता है।

अनाम्नायमला वेदा ब्राह्मणस्याव्रतं मलम्।
मलं पृथिव्या बाह्लीकाः पुरुषस्यानृतं मलम्।
कौतूहलमलाः साध्वी विप्रवासमलाः स्त्रियः ॥ ७८ ॥

शब्दार्थ—वेदाः = वेद, अनाम्नायमलाः = अध्ययन न करना ही मल है, ब्राह्मणस्य = ब्राह्मण का, अव्रतम् मलम् = व्रत नहीं करना ही मल है, बाह्लीकाः = बाह्लीक देश, पृथिव्याः मलम् = पृथिवी का मल है, पुरुषस्य = मनुष्य का, अनृतम् = झूठ बोलना, मलम् = मल है, साध्वी = पतिव्रता स्त्री, कौतूहलमलाः =

हास-परिहास करना मल है, स्त्रियः=स्त्रियों के लिए, विप्रवासमलाः=परदेश में रहना ही मल है।

हिन्दी—वेदों का अभ्यास न करना मल है, व्रतों का पालन न करना ब्राह्मणों का मल है, पृथिवी का मल बाह्लीक देश है, पुरुषों का झूठ बोलना मल है, पतिव्रता स्त्री के लिए हास-परिहास करना मल है और स्त्रियों का परदेश में रहना मल है।

सुवर्णस्य मलं रूप्यं रूप्यस्यापि मलं त्रपु।
ज्ञेयं त्रपुमलं सीसं सीसस्यापि मलं मलम् ॥ ७९ ॥

शब्दार्थ—सुवर्णस्य=सोने का; मलम्=मल, रूप्यम्=चाँदी है, रूप्यस्य अपि =चाँदी का भी, मलम्=मल, त्रपु=राँगा है, त्रपुमलम्=राँगा का मल, सीसम्= सीसा, सीसस्यापि=सीसे का भी, मल मलम्=मल ही मल है।

हिन्दी—सोने का मल चांदी है और चांदी का भी मल राँगा है। सीसा राँगा का मल है और सीसे का मल उसका मल है।

न स्वप्नेन जयेन्निद्रां न कामेन जयेत् स्त्रियः।
नेन्धनेन जयेदग्निं न पानेन सुरां जयेत् ॥ ८० ॥

शब्दार्थ—स्वप्नेन=सोने से, निद्राम्=नींद को, न जयेत्=वश में न करे, कामेन=कामोपभोग से, स्त्रियः=स्त्रियों को, न जयेत्=न जीते, इन्धनेन=लकड़ियों से, अग्निम्=आग को, न जयेत्=वश में न करे, पानेन=सुरापान से, सुराम्= सुरा को, न जयेत्=न जीते।

हिन्दी—सोने से निद्रा वश में नहीं हो सकती है, कामोपभोग से स्त्रियों को वश में नहीं किया जा सकता, आग को लकड़ी के द्वारा नहीं बुताया जा सकता और मदिरापान से उसके व्यसन को नहीं बचाया जा सकता। अर्थात् इसे अधीन करने के लिए संयम करना उचित है, प्रवृत्ति नहीं।

यस्य दानजितं मित्रं शत्रवो युधि निर्जिताः।
अन्नपानजिता दाराः सफलं तस्य जीवितम् ॥ ८१ ॥

शब्दार्थ—यस्य=जिसका, दानजितम्=दान के द्वारा वश में किया गया, मित्रम्=मित्र है, शत्रवः=शत्रु लोग, युधि=युद्ध में, निर्जिताः=विजय किये गये हैं, दाराः=स्त्रियाँ, अन्नपानजिताः=अन्नपान के द्वारा विजय की गयी हैं, तस्य=उसका, जीवितम्=जीवन, सफलम्=सफल है।

हिन्दी—जिसने दान के द्वारा मित्र को जीत लिया है, युद्ध के द्वारा शत्रु को जीत लिया है, अन्नपान के द्वारा स्त्री को वश में कर लिया है, उसका जीवन सफल है।

सहस्रिणोऽपि जीवन्ति जीवन्ति शतिनस्तथा।
धृतराष्ट्र विमुञ्चेच्छां न कथञ्चिन्न जीव्यते ॥ ८२ ॥

शब्दार्थ—सहस्त्रिणः=हजार रुपये वाले भी, जीवन्ति=जीते हैं, तथा=उसी प्रकार, शतिनः=सौ रुपये वाले, जीवन्ति=जीते हैं, धृतराष्ट्र=हे अम्बिकेय ! इच्छाम्=इच्छा को, न विमुञ्च=छोड़े बिना, कथञ्चित्=किसी प्रकार से, न जीव्यते=नहीं जीता है।

हिन्दी—हजार रुपये वाले भी जीते हैं और सौ रुपये वाले भी उसी प्रकार जीते हैं, लेकिन हे धृतराष्ट्र ! इच्छा को छोड़े बिना किसी प्रकार नहीं जी सकता है।

यत् पृथिव्यां व्रीहियवं हिरण्यं पशवः स्त्रियः।
नालमेकस्य तत् सर्वमिति पश्यन्न मुह्यति ॥ ८३ ॥

शब्दार्थ—पृथिव्याम्=पृथिवी के ऊपर, यत् व्रीहियवम्=जो धान-जौ, हिरण्यम्=सोना, पशवः=पशु, स्त्रियः=स्त्रियाँ हैं, तत् सर्वम्=वह सभी, एकस्य न अलम्=एक के लिए भी पर्याप्त नहीं है, इति पश्यन्=ऐसा देखता हुआ, न मुह्यति=मोह में नहीं पड़ता है।

हिन्दी—पृथ्वी पर जीतने धान, जौ, सोना, पशु, स्त्रियाँ हैं वह सभी एक के लिए भी पर्याप्त नहीं है, इस प्रकार देखता हुआ भी मोह को प्राप्त नहीं होता है।

राजन् भूयो ब्रवीमि त्वां पुत्रेषु सममाचर।
समता यदि ते राजन् स्वेषु पाण्डुसुतेषु च ॥ ८४ ॥

इति महाभारते उद्योगपर्वणि प्रजागरपर्वणि विदुरहितवाक्ये नवत्रिंशोऽध्यायः।

इति विदुरनीतौ सप्तमोऽध्यायः।

शब्दार्थ—राजन्=हे धृतराष्ट्र ! त्वम्=तुमको, भूयः=पुनः, ब्रवीमि=कहता हूँ, त्वाम्=तुम्हारे द्वारा, पुत्रेषु=पुत्रों के ऊपर, सममाचर=समत्व का व्यवहार करो, राजन्=हे धृतराष्ट्र ! यदि ते=यदि तुम्हारा, समता=समत्व भाव, स्वेषु=अपने पुत्र दुर्योधनादि के ऊपर, च=और, पाण्डसुतेषु=पाण्डवों के ऊपर।

हिन्दी—हे राजन् ! मैं आपसे पुनः कहता हूँ कि आप में पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरादि तथा अपने पुत्र दुर्योधनादि के ऊपर समता का भाव है तो उन पर समता का व्यवहार करो।

इस प्रकार विदुरनीति में सप्तम अध्याय की हिन्दी समाप्त।

अष्टमोऽध्यायः

विदुर उवाच—

योऽभ्यर्चितः सद्भिरसज्जमानः करोत्यर्थं शक्तिमहापयित्वा।
क्षिप्रं यशस्तं समुपैति सन्तमलं प्रसन्ना हि सुखाय सन्तः॥ १॥

शब्दार्थ—यः=जो, असज्जमानः=अनासक्त होकर, सद्भिः=सज्जनों के द्वारा, अभ्यर्चितः=प्रशंसा का पात्र बनता है, अत्यर्थम्=बहुत कार्य को, शक्तिम्=शक्ति को, अहापयित्वा=उल्लङ्घन न करके, क्षिप्रम्=शीघ्र, करोति=करता है, तम्=उसको, यशः=यश, समुपैति=प्राप्त होता है, हि=क्योंकि, प्रसन्नाः=प्रसन्न हुए, सन्तम्=सन्त को, अलम्=पर्याप्त, सुखाय=सुख के लिए, अलम्=समर्थ होते हैं।

हिन्दी—जो सज्जनों के द्वारा प्रशंसित होकर अनासक्त भाव से शक्ति का उलङ्घन न करके यथाशक्ति कार्य करता है, वह श्रेष्ठ मनुष्य शीघ्र यश को प्राप्त करता है। क्योंकि प्रसन्न हुए सज्जन निश्चय ही कल्याण करने में समर्थ होते हैं।

महान्तमप्यर्थमधर्मयुक्तं यः सन्त्यजत्यनपाकृष्ट एव।
सुखं सुदुःखान्यवमुच्य शेते जीर्णां त्वचं सर्प इवावमुच्य॥ २॥

शब्दार्थ—यः=जो, महान्तमपि=महान् को भी, अर्थम्=धन को, अधर्मयुक्तम्=अधर्मयुक्त को, अनापक्रुष्ट एव=बिना खींचे हुए ही, सन्त्यजति=छोड़ देता है, सुखम्=सुखपूर्वक, सुदुःखानि=महान् दुःखों को, अवमुच्य=छोड़कर, शेते=सोता है, जीर्णां त्वचम्=जीर्ण त्वचरूपी केचुल को, अवमुच्य=छोड़कर, सर्प इव=सर्प के समान सुख प्राप्त करता है।

हिन्दी—जो मनुष्य अधर्मयुक्त महान् धन को उसकी ओर आकृष्ट हुए बिना छोड़ देता है, वह कष्टों से छूटकर सुख प्राप्त करता है; जैसे सर्प केचुल को छोड़कर सुख प्राप्त करता है।

विशेष—सर्प अपने पुराने त्वचा-केचुल को छोड़ने से सुख प्राप्त करता है। क्योंकि केचुल के समय वह शीघ्रता से भागने और देखने में असमर्थ होता है।

अनृते च समुत्कर्षो राजगामि च पैशुनम्।
गुरोश्चालीकनिर्बन्धः समानि ब्रह्महत्यया॥ ३॥

शब्दार्थ—अनृते=झूठ व्यवहार में, समुत्कर्षः=वृद्धि हो, च=और, राजगामि=राज सम्बन्धी, पैशुनम्=पिशुनता निंदा हो, गुरोः=गुरु का, अलीकनिर्बन्धः=असत्य में बंधे हो, ब्रह्महत्यया=ब्रह्महत्या के, समानि=समान हैं।

हिन्दी—असत्य व्यवहार से उन्नति, राज्य के विषय में निन्दा और बड़ों से झूठा व्यवहार करना—ये ब्रह्महत्या के समान हैं।

असूयैकपदं मृत्युरतिवादः श्रियो वधः।
अशुश्रूषा त्वरा श्लाघा विद्यायाः शत्रवस्त्रयः ॥ ४ ॥

शब्दार्थ—असूया=पर-गुणों में दोष देखना, एकपदम् मृत्युः=एक स्थान पर मृत्यु है, अतिवादः=अति प्रशंसा, श्रियः वधः=धन के नाश का कारण है, अशुश्रूषा=सेवा न करना, त्वरा=शीघ्रता, श्लाघा=आत्मप्रशंसा, विद्यायाः=विद्या के, त्रयः शत्रवः=तीन शत्रु हैं।

हिन्दी—दूसरे के गुणों में दोष देखना अपनी मृत्यु के समान है। आत्मप्रशंसा धन की हानि करता है। सेवा न करना, शीघ्रता एवं आत्मप्रशंसा—ये तीन विद्या के शत्रु हैं। अर्थात् काम करनेवाले को विद्या प्राप्त नहीं होती है।

आलस्यं मदमोहौ च चापलं गोष्ठिरेव च।
स्तब्धता चाभिमानित्वं तथा त्यागित्वमेव च।
एते वै सप्त दोषाः स्युः सदा विद्यार्थिनां मताः ॥ ५ ॥

शब्दार्थ—आलस्यम्=आलस करना, मदमोहौ=मद्यपान और मोह रखना, चापलम्=चञ्चलता, गोष्ठिः=व्यर्थ बकवास, स्तब्धता=जड़ता, अभिमानित्वम्=अभिमान करना, तथा अत्यागित्वम्=और त्याग न करना अर्थात् लालची होना, एव च=और ही, एते वै सप्त दोषाः=ये सात दोष निश्चय ही, विद्यार्थिनाम्=विद्यार्थियों के, सदा मताः स्युः=सदा माने गये हैं।

हिन्दी—आलसी होना, मद्यपान और मोह करना, चञ्चलता रखना, सभा में व्यर्थ बातें करना, समय बिताना, उद्धतता दिखाना, जड़ता और लालची होना—ये सात दोष विद्यार्थियों के लिए माने गये हैं। अर्थात् इन सात दोषों के रहने से विद्यार्थी विद्या प्राप्त नहीं कर सकता है।

सुखार्थिनः कुतो विद्या नास्ति विद्यार्थिनः सुखम्।
सुखार्थी वा त्यजेत् विद्यां विद्यार्थी वा त्यजेत् सुखम् ॥ ६ ॥

शब्दार्थ—सुखार्थिनः=सुख चाहने वाले को, विद्या=विद्या, कुतः=कहाँ प्राप्त होती है, विद्यार्थिनः=विद्यार्थी को, नास्ति सुखम्=सुख कहाँ मिलता है, वा=अथवा, सुखार्थी=सुख चाहने वाले को, विद्यां त्यजेत्=विद्या को छोड़ देता है, वा=अथवा, विद्यार्थी=विद्यार्थी, सुखं त्यजेत्=सुख छोड़ देता है।

हिन्दी—सुख चाहने वाले को विद्या कहाँ मिलती है और विद्यार्थी को सुख कहाँ मिलता है? सुखार्थी विद्या को छोड़ देता है और विद्यार्थी सुख को छोड़ देता है।

नाग्निस्तृप्यति काष्ठानां नापगानां महोदधिः।
नान्तकः सर्वभूतानां न पुंसां वामलोचना ॥ ७ ॥

शब्दार्थ—काष्ठानाम् = लकड़ियों से, अग्निः=आग, न तृप्यति = शान्त नहीं होता है, महोदधिः = समुद्र, आपगानां न = नदियों से समुद्र तृप्त नहीं होता है, सर्वभूतानाम् = सभी प्राणियों से, अन्तकः न = यमराज तृप्त नहीं होता है, पुंसाम् = पुरुषों से, न वामलोचना = स्त्रियाँ तृप्त नहीं होती हैं।

हिन्दी—लकड़ियों से आग तृप्त नहीं होती, समुद्र नदियों के जल से तृप्त नहीं होता है, सभी प्राणियों के मारने से यमराज तृप्त नहीं होता है और स्त्रियाँ पुरुषों से तृप्त नहीं होती है।

विशेष—काम उपभोग करने से शान्त नहीं होता है अपितु बढ़ता ही है। स्त्रियाँ पुरुषों से तृप्त नहीं होती, वैसे ही कामी पुरुष को स्त्रियों से शान्ति नहीं मिलती है। इसलिए शास्त्रों ने पतिव्रत और एक पत्नीव्रत का उपदेश दिया है। इससे काम का वेग रुकता है और शान्ति मिलती है।

आशा धृतिं हन्ति समृद्धिमन्तकः क्रोधः श्रियं हन्ति यशः कदर्यता।
अपालनं हन्ति पशूंश्च राजन्नेकः क्रुद्धो ब्राह्मणो हन्ति राष्ट्रम्॥ ८॥

शब्दार्थ—राजन् = हे धृतराष्ट्र ! आशा = आशा, धृतिं हन्ति = धैर्य को नष्ट कर देती है, समृद्धिम् = ऐश्वर्य को, अन्तकः = यमराज नष्ट कर देता है, क्रोधः श्रियं हन्ति = क्रोध धन-सम्पत्ति को नष्ट करता है, कदर्यता = कायरता, यशः = यश को नष्ट कर देता है, च = और, अपालनम् = देखभाल नहीं करना, पशून् हन्ति = पशुओं को नष्ट कर देता है, एकः क्रुद्धः ब्राह्मणः = एक क्रुद्ध ब्राह्मण, राष्ट्रं हन्ति = सम्पूर्ण राष्ट्र को नष्ट कर देता है।

हिन्दी—हे धृतराष्ट्र ! आशा धैर्य को नष्ट करती है, यमराज ऐश्वर्य को, क्रोध धन को नष्ट करता है, कायरता यश को, पशुओं की देखभाल न करने से नष्ट हो जाते हैं तथा अकेला क्रुद्ध ब्राह्मण सम्पूर्ण राज्य को नष्ट कर देता है।

विशेष—अन्तिम चरण श्लोक का बहुत महत्त्वपूर्ण है। इतिहास साक्षी है कि एक ही परशुराम ने इक्कीस बार दुराचारी राजाओं का संहार कर दिया। अकेले क्रुद्ध चाणक्य ने नन्द वंश का नाश कर मौर्य वंश की स्थापना की और चन्द्रगुप्त मौर्य को राजा बनाया। ब्रह्मवर्चस्वसम्पन्न वसिष्ठ ने सम्पूर्ण सेनाओं तथा विश्वामित्र के सभी दिव्यास्त्रों का उपसंहार कर दिया। सभी कुरुवीरों के सामने भरद्वाज के पुत्र आचार्य द्रोण ने अपना महत्त्व स्थापित किया। ये सब अकेले का ही अपूर्व उदाहरण है। इसलिए ब्राह्मण राष्ट्र के उन्नायक और क्रुद्ध होने पर राष्ट्र-विध्वंसक भी हो सकते हैं।

अजाश्च कांस्यं रजतं च नित्यं मध्वाकर्षः शकुनिः श्रोत्रियश्च।
वृद्धो ज्ञातिरवसन्नः कुलीन एतानि ते सन्तु गृहे सदैव॥ ९॥

शब्दार्थ—अजाः = बकरियाँ, कांस्यं च = और काँसे के पात्र, नित्यं रजतं च = और सदा चाँदी, मधु = मधु, आकर्षः = विष जानने का साधन, शकुनिः = पक्षी, श्रोत्रियः = वेद का अध्ययन करने वाला ब्राह्मण, ज्ञातिः वृद्धः = कुलवृद्ध, अवसन्नः

कुलीनः = दुःखी कुलीन, एतानि ते गृहे = ये सब आपके घर में, सदैव सन्तु = सदा रहे ।

हिन्दी—हे राजन् ! आपके घर में बकरियाँ, काँसे के बर्तन, चाँदी के पात्र, शहद, विष जानने वाला पक्षी, वेदविद् ब्राह्मण, कुलवृद्ध तथा दुःखी कुलीन पुरुष सदा रहें ।

विशेष—ये सब किसी के घर में रहने चाहिए, इससे किसी का भी कल्याण होता है । वेदविद् ब्राह्मण अधर्म से हटाकर धर्म में प्रवृत्ति कराता है । कुलवृद्ध का अनुशासन स्वीकार होता है । कुलीन दुःखी लोग अपने आश्रयदाता का हितचिन्तन करते हैं । इसलिए इन सभी के रहने से किसी का भी कल्याण होता है ।

अजोक्षा चन्दनं वीणा आदर्शो मधुसर्पिषी ।
विषमौदुम्बरं शङ्खः स्वर्णनाभोऽथ रोचना ॥ १० ॥
गृहे स्थापयितव्यानि धन्यानि मनुरब्रवीत् ।
देव ब्राह्मणपूजार्थमतिथीनां च भारत ॥ ११ ॥

शब्दार्थ—भारत = हे भरतकुलोत्पन्न धृतराष्ट्र ! अजोक्षा = बकरियाँ एवं साँड, चन्दनम् = चन्दन, वीणा = वीणा, आदर्शः = दर्पण, सीसा, मधुसर्पिषी=मधु और घी, विषम् = विष, औदुम्बरम् = ताम्रपात्र, शंखः = शंख, स्वर्णनाभः = स्वर्णनाभ, अथ = और, रोचनः = गोरोचन, अतिथीनाम् = अतिथियों को, देवब्राह्मणपूजार्थम् = देवों तथा ब्राह्मणों की पूजा के लिए, धन्यानि = समृद्धमूलक धन, गृहे स्थापयितव्यानि = घर में रखने चाहिए, मनुः अब्रवीत् = मनु ने कहा है ।

हिन्दी—हे भरतकुलोत्पन्न धृतराष्ट्र ! मनु ने कहा है कि देव, ब्राह्मण और अतिथियों की पूजा के लिए अजा, साँड, चन्दन, वीणा, दर्पण, शहद, घी, विष, ताम्रपात्र, शंख, स्वर्णनाभ तथा गोरोचन आदि मङ्गलकारी वस्तु सदा घर में रहने चाहिए ।

विशेष—ये सब समृद्धिद्योतक तथा समय पर काम आने वाली वस्तुओं का संग्रह है । जिससे अनेक प्रकार की समस्याओं का समाधान होता है । अतः घर में ये संग्रहणीय माने गये हैं ।

इदं च त्वां सर्वपरं ब्रवीमि पुण्यं पदं तात महाविशिष्टम् ।
न जातु कामान्न भयान्न लोभाद् धर्मं जह्याज्जीवितस्यापि हेतोः ॥ १२ ॥

शब्दार्थ—तात = हे भाई, इदम् = यह, च त्वाम् = और तुमको, सर्वपरम् = सर्वश्रेष्ठ बात, ब्रवीमि = कहता हूँ, पुण्यप्रदम् = उत्तम स्थान प्राप्त कराने वाली, महाविशिष्टम् = बहुत विशिष्ट, न जातु कामात् = कभी भी कामना से नहीं, भयात् न = भय से नहीं, लोभात् न = लोभ से नहीं, जीवितस्यापि हेतोः = जीवन के कारण से भी, धर्मं = धर्म को, जह्यात् = छोड़े ।

हिन्दी—हे भाई ! यह तुम्हें उत्तम पद को प्राप्त कराने वाली विशिष्ट बात

कहता हूँ कि पुरुष काम; भय और लोभ से प्राणों की रक्षा के लिए धर्म का परित्याग न करे।

विशेष—'धर्मो रक्षति रक्षितः' अर्थात् धर्म की रक्षा होने पर धर्म हमारी रक्षा करता है। इसलिए धर्म को सर्वोपरि मानकर हरिश्चन्द्र, युधिष्ठिर इत्यादि राजाओं ने अपने प्राणों, जीवनों और धनों की बाजी लगाकर धर्म की रक्षा की थी।

नित्यो धर्मः सुखदुःखे त्वनित्ये जीवो नित्यो हेतुरस्य त्वनित्यः।
त्यक्त्वा नित्यं प्रतितिष्ठस्व नित्ये सन्तुष्य त्वं तोषपरो हि लाभः॥ १३॥

शब्दार्थ—धर्मः नित्यः=धर्म नित्य है, सुखदुःखे तु=सुख-दुःख तो, अनित्यः=अनित्य है, जीव नित्यः=जीव नित्य है, अस्य हेतुः=इसका हेतु, तु अनित्यः=तो अनित्य है, अनित्यं=अनित्य को, त्यक्त्वा=छोड़कर, नित्ये=नित्य में, प्रतितिष्ठस्व =स्थिर हो जाओ, त्वं सन्तुष्य=तुम सन्तुष्ट होकर, तोषपरः=सन्तुष्ट रहना, हि लाभः=ही लाभ है।

हिन्दी—हे राजन्! इस लोक में धर्म ही नित्य वस्तु है और सुख-दुःख अनित्य हैं। जीव नित्य है, परन्तु इसका हेतु अनित्य है। इसलिए अनित्य को छोड़कर नित्य वस्तु में लग जाओ, क्योंकि संतुष्ट होकर रहना सर्वश्रेष्ठ लाभ है।

विशेष—'सन्तोष एव सुखस्य परं निदानम्' अर्थात् सन्तोष ही सुख का परम निदान है। क्योंकि सन्तुष्ट होना सर्वश्रेष्ठ कारण माना गया है। इसलिए हिन्दी के किसी कवि ने कहा है—

गोधन गजधन वाजिधन और रतनधनखान।
जो आवे सन्तोष धन सब धन धूलि समान॥

महाबलान् पश्य महानुभावान् प्रशास्य भूमिं धनधान्यपूर्णाम्।
राज्यानि हित्वा विपुलांश्च भोगान् गतान्नरेन्द्रान् वशमन्तकस्य॥ १४॥

शब्दार्थ—महानुभावान्=उदारचेताओं को, महाबलान्=महाबलवानों को, पश्य =देखो, धनधान्यपूर्णाम्=धन-धान्य से पूर्ण, भूमिम् प्रशास्य=भूमि को राज्य कर, राज्यानि हित्वा=राज्यों को छोड़कर, विपुलान् भोगान्=और विपुल भोगों को, गतान् नरेन्द्रान्=गये हुए राजाओं को, अन्तकस्य वशम्=यमराज के वश में गये हुए देखो।

हिन्दी—हे राजन्! उन महाबलशाली उदारचेता राजाओं को देखो, जो धन-धान्य से परिपूर्ण इस पृथिवी का शासन करके राज्य और महान् भोगों को छोड़कर मृत्यु के वश में चले गये।

विशेष—पृथिवी को अनेक चक्रवर्ती सम्राट् भोगकर चले गये, किन्तु किसी के साथ यह पृथिवी नहीं गयी। लेकिन उनका यश पृथिवी पर अविचल रूप से चल रहा है। हे धृतराष्ट्र! यह पृथिवी तुम्हारे साथ भी नहीं जायेगी, इसलिए समता का व्यवहार करो और धर्म के अनुसार दायभाग युधिष्ठिर को दे दो। यही कल्याणकारक होगा।

मृतं पुत्रं दुःखपुष्टं मनुष्या उत्क्षिप्य राजन् स्वगृहान्निर्हरन्ति ।
तं मुक्तकेशाः करुणं रुदन्ति चितामध्ये काष्ठमिव क्षिपन्ति ॥ १५ ॥
अन्यो धनं प्रेतगतस्य भुङ्क्ते वयांसि चाग्निश्च शरीरधातून् ।
द्वाभ्यामयं सह गच्छत्यमुत्र पुण्येन पापेन च वेष्ट्यमानः ॥ १६ ॥

शब्दार्थ—राजन्=हे राजन् ! दुःखपुष्टम्=दुःख से बड़े किये गये, मृतपुत्रम् =मरे हुए पुत्र को, मनुष्याः=मनुष्य, उत्क्षिप्य=उठाकर, स्वगृहात्=अपने घर से, निर्हरन्ति=बाहर ले जाते हैं, तम् मुक्तकेशाः=उसके लिए केश को खोलकर, करुणं रुदन्ति=करुणापूर्वक रोते हैं, चितामध्ये काष्ठमिव क्षिपन्ति=चिता के बीच में लकड़ी के समान रख देते हैं, प्रेतगतस्य धनम्=मरे हुए के धन को, अन्यः भुङ्क्ते= दूसरा भोग करता है, वयांसि च=और पक्षियाँ (गीध, काक इत्यादि), अग्निश्च= और अग्नि, शरीरधातून्=शरीर के धातु मांस आदि को खाते हैं, द्वाभ्यां सह=दो के साथ, अयम्=यह, पुण्येन पापेन च वेष्टचमानः=और पुण्य-पाप से लिपटा हुआ, अमुत्र गच्छति=दूसरे लोक में जाता है ।

हिन्दी—हे राजन् ! मनुष्य बहुत दुःख उठाकर बड़े हुए मृत पुत्र को उठाकर अपने घर से बाहर ले जाते हैं । उसके विषय में स्त्रियाँ केश खोलकर करुणापूर्वक रोती है । उसे चिता के बीच में लकड़ी के समान रख देते हैं और उसके धन को दूसरा भोग करता है । उसके शरीर को गीध, कौआ आदि पक्षी खाते हैं । यह पुण्य-पाप से लिपटा हुआ दूसरे लोक को जाता है ।

विशेष—यह मृत्युलोक है, इस पर जो आया वह मरकर चला गया । केवल वह पाप-पुण्य ले जाता है और सुयश को इस संसार में छोड़ जाता है । ऐसी स्थिति में शाश्वत वस्तु के विषय में चिन्तन करना चाहिए, क्षणभंगुर के विषय में नहीं । इस शीर्यमाण शरीर के विषय में बताकर विदुर धृतराष्ट्र को यश में लगाना चाहते हैं ।

उत्सृज्य विनिवर्तन्ते ज्ञातयः सुहृदः सुताः ।
अपुष्पानफलान् वृक्षान् यथा तात पतत्रिणः ॥ १७ ॥

शब्दार्थ—तात=हे भाई ! ज्ञातयः सुहृदः सुताः=सम्बन्धीजन, मित्र और पुत्र, उत्सृज्य विनिवर्तन्ते=छोड़कर लौट जाते हैं, अपुष्पान् अफलान् वृक्षान्=फूलों-फलों से रहित वृक्षों को, यथा पतत्रिणः=जैसे पक्षियाँ छोड़ देते हैं ।

हिन्दी—हे भाई ! सम्बन्धी लोग, मित्र और पुत्र छोड़कर लौट जाते हैं; जैसे फूलों-फलों से रहित वृक्ष को पक्षियाँ छोड़ देते हैं ।

अग्नौ प्रास्तं तु पुरुषं कर्मान्वेति स्वयं कृतम् ।
तस्मात्तु पुरुषो यत्नात् धर्मं सञ्चिनुयाच्छनैः ॥ १८ ॥

शब्दार्थ—अग्नौ प्रास्तम्=अग्नि में रखे गये, पुरुषं तु=पुरुष को तो, स्वयं-कृतम्=स्वयं किया गया, कर्म+अन्वेति=धर्माधर्म रूप कर्म साथ जाता है, तस्मात्तु

=इसलिए तो, पुरुषः यत्नात्=पुरुष यत्नपूर्वक, शनैः=धीरे-धीरे, धर्मं सञ्चिनुयात् =धर्म का संचय करे।

हिन्दी—मरने के पश्चात् शरीर के आग में जल जाने के बाद स्वयं किया गया धर्माधर्म ही पुरुष के साथ जाता है। इसलिए धीरे-धीरे यत्नपूर्वक धर्म का संग्रह करना चाहिए।

विशेष—धर्म का संग्रह हठात्. नहीं करना चाहिए। इससे उसे कष्ट ही होता है। धीरे-धीरे करने से उसके स्वभाव में धर्म के प्रति दृढ़ता और आचरण परिपक्व हो जाता है। हठात् किया गया धर्माचरण दुःख के एक ही झटके में ही अलग हो जाता है। इसलिए कहा गया है—

धीरे धीरे रे मना धीरे सब कुछ होय।
माली सींचे सो घड़ा ऋतु आये फल होय॥

अस्माल्लोकादूर्ध्वममुष्य चाद्यो महत्तमस्तिष्ठति ह्यन्धकारम्।
तद्वै महामोहनमिन्द्रियाणां बुध्यस्व मा त्वां प्रलभेत राजन्॥ १९॥

शब्दार्थ—राजन्=हे धृतराष्ट्र! अस्मात् लोकात् ऊर्ध्वम्=इस लोक से ऊपर, अमुष्य अधश्च=और इससे नीचे, महत्तमः हि अन्धकारम्=अत्यन्त गहन अन्धकार है, तद् वै=वह निश्चय ही, महामोहनम् इन्द्रियाणाम्=इन्द्रियों को ज्ञानशून्य करने वाला, बुध्यस्व=जानो, मा त्वां प्रलभेत=तुम्हें प्राप्त न हो।

हिन्दी—हे राजन्! इस लोक से ऊपर-नीचे बहुत घना अन्धकार है। वह निश्चित ही इन्द्रियों को महामोह देने वाला है, तुम्हें वह प्राप्त न हो।

विशेष—यह पृथ्वीलोक है, इसके ऊपर भुवः, स्वः, महः, जन, तप आदि लोकों का वर्णन है। नीचे अतल, वितल, सुतल, तल, तलातल, रसातल एवं पाताल इत्यादि लोक हैं। ऊपर में कर्मों का सुखभोग और नीचे के लोकों में दुःखों का भोग होता है। केवल पृथ्वी पर ही धर्माधर्म-विचार और कर्म-संचय होता है, अन्यत्र नहीं। इसलिए सर्वश्रेष्ठ मनुष्यलोक ही है, जहाँ देवगण भी आने के लिए ललचाते हैं। उसमें भारतवर्ष का महत्त्व सर्वोपरि है। भागवत में कहा गया है—

'गायन्ति देवाः किल गीतकानि, धन्यास्तु ते भारतभूमिभागे।
स्वर्गापवर्गापरमार्गभूते, भवन्ति भूयः पुरुषः सुरत्वात्'॥

इदं वचः शक्ष्यसि चेद् यथावन्निशम्य सर्वं प्रतिपत्तुमेव।
यशः परं प्राप्स्यसि जीवलोके, भयं न चामुत्र न चेह तेऽस्ति॥ २०॥

शब्दार्थ—इदं वचः=यह वचन, यथावत् निशम्य=यथास्थिति जानकर, शक्ष्यसि चेत्=यदि समर्थ होगा, सर्वं प्रतिपत्तुम्=सभी को जानने के लिए, यशः एव परम् प्राप्स्यसि=श्रेष्ठ यश ही निश्चय प्राप्त होगा, जीवलोके भयं न=इस संसार में भय नहीं, च अमुत्र=और परलोक में, न च इह ते अस्ति=और इस लोक में तुम्हारे लिए नहीं है।

हिन्दी—हे राजद् ! यदि मेरे वचन को जानकर यथावत् जानने में सक्षम होगे, तो मनुष्यलोक में निश्चय ही यश प्राप्त होगा और परलोक में तुम्हें भय नहीं होगा।

आत्मा नदी भारत पुण्यतीर्था सत्योदका धृतिकूला दयोर्मिः।
तस्यां स्नातः पूयते पुण्यकर्मा पुण्यो ह्यात्मा नित्यमलोभ एव॥ २१॥

शब्दार्थ—भारत = हे धृतराष्ट्र ! पुण्यतीर्था = पवित्र घाटों वाली, सत्योदका = सत्य रूपी जल वाली, धृतिकूला = धैर्य रूपी किनारे वाली, दयोर्मिः = दया रूपी लहरों वाली, आत्मा नदी = आत्मा नाम की नदी है, तस्यां स्नातः = उसमें स्नान किया हुआ, पुण्यकर्मा = पुण्यकर्म वाला, पूयते = पवित्र होता है, पुण्यः हि = पुण्य निश्चय ही, आत्मा नित्यः = आत्मा नित्य है, अलोभ एव = लोभ रहित है।

हिन्दी—हे धृतराष्ट्र ! आत्मारूपी नदी का पुण्य तीर्थ है, सत्य जल है, धैर्य किनारा है तथा दया लहर है। उसमें स्नान करने के बाद पुण्यशील पुण्यकर्मा पवित्र हो जाता है। आत्मा नित्य और लोभ रहित ही है।

कामक्रोधग्राहवतीं पञ्चेन्द्रियजलां नदीम्।
नावं धृतिमयीं कृत्वा जन्मदुर्गाणि सन्तर॥ २२॥

शब्दार्थ—कामक्रोधग्राहवतीम् = काम और क्रोध रूपी मगर वाली, पञ्चेन्द्रियजलाम् = पाँच ज्ञानेन्द्रिय रूपी जल वाली, नदीम् = नदी को, धृतिमयीम् = धैर्यरूपी, नावं कृत्वा = नाव को बनाकर, जन्मदुर्गाणि=जन्मरूपी दुर्गों को, सन्तर = पार करो।

हिन्दी—हे राजन् ! काम-क्रोध रूपी मगर वाली, पाँच इन्द्रिय रूप जलवाली तथा संसार रूपी नदी को धैर्यरूपी नौका बनाकर जन्म रूपी दुर्गों को पार करो॥ २२॥

प्रज्ञावृद्धं धर्मवृद्धं स्वबन्धुं विद्यावृद्धं वयसा चापि वृद्धम्।
कार्याकार्ये पूजयित्वा प्रसाद्य यः सम्पृच्छेन्न स मुह्येत् कदाचित्॥ २३॥

शब्दार्थ—प्रज्ञावृद्धम् = बुद्धि से श्रेष्ठ को, धर्मवृद्धम् = धर्म से श्रेष्ठ को, विद्यावृद्धम् = विद्या में श्रेष्ठ को, स्वबन्धुम् = अपने बन्धु को, वयसा चापि वृद्धम् = और अवस्था से भी वृद्ध को, कार्याकार्ये = कार्य और अकार्य के विषय में, पूजयित्वा = पूजा करके, प्रसाद्य = प्रसन्न करके, यः सम्पृच्छेत् = जो पूछता है, सः = वह, कदाचित् = कभी भी, न मुह्येत् = मोह प्राप्त नहीं करता है।

हिन्दी—जो पुरुष कार्याकार्य के विषय में सन्देह होने पर बुद्धि, धर्म, विद्या और अवस्था में वृद्ध अपने बन्धु का सत्कार एवं प्रसन्न करके पूछता है, वह कभी भी मोह को प्राप्त नहीं होता है।

धृत्या शिश्नोदरं रक्षेत् पाणिपादं च चक्षुषा।
चक्षुः श्रोत्रे च मनसा मनो वाचं च कर्मणा॥ २४॥

शब्दार्थ—धृत्या = धैर्य से, शिश्नोदरं रक्षेत् = लिङ्ग और उदर की रक्षा करे, चक्षुषा = नेत्र के द्वारा, पाणिपादं रक्षेत् = हाथ-पैर की रक्षा करे, च = और, मनसा

=मन के द्वारा, चक्षुःश्रोत्रे=नेत्र और कान, कर्मणा=कर्म के द्वारा, मनः वाचञ्च =और मन-वाणी की रक्षा करे।

हिन्दी—धैर्य से लिङ्ग और उदर की रक्षा करे, नेत्र के द्वारा हाथ-पैरों की रक्षा करे, मन के द्वारा नेत्र और कान की रक्षा करे तथा कर्म के द्वारा मन एवं वाणी की रक्षा करे। अर्थात् उदरपूर्त्ति एवं कामवासनाओं का दमन धैर्य से करे। नेत्र के द्वारा सम्यक् जानकर हाथ-पैरों से व्यापार करे। निन्दित कर्मों को देखने और सुनने में आँख-कान को न लगावे। मन-वाणी से अनुचित कर्मों का कथन एवं चिन्तन न करे।

नित्योदकी नित्ययज्ञोपवीती नित्यस्वाध्यायी पतितान्नवर्जी।
सत्यं ब्रुवन् गुरवे कर्म कुर्वन् न ब्राह्मणश्च्यवते ब्रह्मलोकात्॥ २५॥

शब्दार्थ—नित्योदकी=नित्य स्नान करने वाला, नित्ययज्ञोपवीती=नित्य यज्ञोपवीत धारण करने वाला, नित्यस्वाध्यायी=नित्य स्वाध्याय करने वाला, पतितान्नवर्जी=पतित पुरुषों के अन्न का त्याग करने वाला, सत्यं ब्रुवन्=सत्य बोलता हुआ, गुरवे कर्म कुर्वन्=गुरु की सेवा करता हुआ, ब्राह्मणः=ब्राह्मण, ब्रह्मलोकात्=ब्रह्मलोक से, न च्यवते=नहीं गिरता है।

हिन्दी—नित्य स्नान, सन्ध्या-वन्दन करने वाला, नित्य यज्ञोपवीत धारण करने वाला, नित्य स्वाध्याय करने वाला, पतित पुरुषों के अन्न एवं संसर्ग से दूर रहने वाला, सत्य बोलने वाला तथा गुरु की सेवा करने वाला ब्राह्मण ब्रह्मलोक से गिरता नहीं है। अर्थात् उसका पतन नहीं होता है।

विशेष—ब्राह्मणों का कर्म बड़ा प्रसिद्ध है। वह सदा लोकोपकार ही सोचता था। इसलिए भागवतकार ने कहा है—

'ब्राह्मणस्य हि देहोऽयं क्षुद्रकामाय नेष्यते।
ज्ञानाय तपसे चैव प्रेत्यानन्तसुखाय च'॥

अर्थात् ब्राह्मण का शरीर क्षुद्र कार्यों के लिए नहीं होता। उनका उद्देश्य ज्ञान, तपस्या, अनन्तसुख एवं मोक्ष प्राप्त करने के लिए होता है। ब्राह्मण अपने कर्मों से पूजित है तथा उसका षट् कर्म प्रसिद्ध है। यज्ञोपवीत धारण करना ब्राह्मणों का चिह्न है। इसे जातिसूचक भी माना गया है तथा इसकी उत्पत्ति और बनाने की विशेष प्रक्रिया एवं सुगुप्त इतिहास है। जो शुभ्रता, शुचिता और मानसिक भावनाओं तथा वासनाओं का दमन करने का द्योतक है। इसलिए मनु ने कहा है कि ब्राह्मण कभी मरता नहीं है। वह तो अपना शरीर परिवर्तन करता है। लेकिन दोषो के आ जाने से उसका पतन हो जाता है। जैसा कि कहा है—

'अनभ्यासे न वेदानामाचारस्य च वर्जनात्।
आलस्यादन्नदोषाच्च मृत्युर्विप्राञ्जिघांसति'॥

अर्थात् वेद के अनभ्यास से, आचार के पालन के अभाव में; आलस्य और अन्न-दोष से ब्राह्मण को मृत्यु मारना चाहती है।

अधीत्य वेदान् परिसंस्तीर्य चाग्नीनिष्ट्वा यज्ञैः पालयित्वा प्रजाश्च ।
गोब्राह्मणार्थं शस्त्रपूतान्तरात्मा हतः सङ्ग्रामे क्षत्रियः स्वर्गमेति ॥२६॥

शब्दार्थ—वेदान् अधीत्य = वेदों को पढ़कर, अग्नीन् = अग्नियों को, परिसंस्तीर्य = चारों तरफ से आच्छादित करके, यज्ञैः इष्ट्वा = यज्ञों से यजन करके, च = और, प्रजाः पालयित्वा = प्रजाओं को पालन करके, गोब्राह्मणार्थम् = गो-ब्राह्मण के लिए, शस्त्रपूतान्तरात्मा = शस्त्रों के प्रहार से पवित्र होकर, सङ्ग्रामे हतः = युद्धभूमि में मारा गया, क्षत्रियः = क्षत्रिय, स्वर्गम् एति = स्वर्ग प्राप्त करता है।

हिन्दी—वेदों को पढ़कर, अग्नियों को चारों तरफ से कुशाओं से ढककर, यज्ञों से यजन कर, प्रजाओं का विधिवत् पालन कर तथा गो-ब्राह्मणों के लिए शस्त्रों के द्वारा पवित्रात्मा युद्धभूमि में मारा गया क्षत्रिय स्वर्ग को जाता है।

विशेष—क्षत्रिय का अपनी स्वाभाविक एवं संगृहीत शक्ति के द्वारा प्रजा-पालन एवं राष्ट्र की रक्षा के लिए संग्राम में प्राण त्याग करना श्रेयस्कर माना गया है। उसी प्रकार प्रकृति एवं वायुमण्डल की शुद्धि के लिए यज्ञ करना उचित ही है। गो एवं ब्राह्मण भारतीय संस्कृति के महत्त्वपूर्ण अंग हैं। एक से कषिकार्य तथा प्रजापालन और दूसरे से राष्ट्र के रक्षण में सहायता मिलती है। अतः इन दोनों की रक्षा का भार क्षत्रिय के ऊपर है ॥ २६ ॥

वैश्योऽधीत्य ब्राह्मणान् क्षत्रियांश्च धनैः काले संविभज्याश्रितांश्च ।
त्रेतापूतं धूममाघ्राय पुण्यं प्रेत्य स्वर्गे दिव्यसुखानि भुङ्क्ते ॥ २७ ॥

शब्दार्थ—वैश्यः = वैश्य, अधीत्य = पढ़कर, ब्राह्मणान् क्षत्रियान् च = ब्राह्मणों और क्षत्रियों को, धनैः = धन के द्वारा, आश्रितान् = भृत्यों को, काले संविभज्य = समय पर संयुक्त करके, त्रेतापूतम् = तीन अग्नियों से पवित्र को, धूममाघ्राय पुण्यम् = पवित्र धुएँ को सूँघकर, प्रेत्य स्वर्गे = मरकर स्वर्ग में, दिव्यसुखानि = उत्तम सुखों को, भुङ्क्ते = भोग करता है।

हिन्दी—वैश्य वेदों को पढ़कर, समय आने पर ब्राह्मण, क्षत्रिय और आश्रितों में धनों को बाँटकर, तीन अग्नियों से उठे हुए धूएँ को सूँघकर तथा मरकर स्वर्ग में दिव्यसुखों को भोगता है।

विशेष—पाँच प्रकार की अग्नियाँ होती हैं, जिनके नाम आहवनीय, गार्हपत्य, दक्षिणाग्नि, आवसथ्य और संभ्य हैं। उसमें ब्राह्मणों को पाँचों प्रकार का अनुष्ठान करने का विधान है। लेकिन वैश्यों के लिए तीन प्रकार का उपयोग माना गया है। क्योंकि प्रथम तीन अग्नियों का नित्य-नैमित्तिक श्रौतयज्ञ होते हैं। आवसथ्य से गृहस्थ के संस्कार किये जाते हैं और अध्ययान्त आचार्य विद्यादान के बाद जिसका प्रयोग करता है, उसे सभ्याग्नि माना गया है।

ब्रह्म क्षत्रं वैश्यवर्णं च शूद्रः क्रमेणैतान्न्यायतः पूज्यमानः ।
तुष्टेष्वेतेष्वव्यथो दग्धपापस्त्यक्त्वा देहं स्वर्गसुखानि भुङ्क्ते ॥ २८ ॥

शब्दार्थ—ब्रह्म क्षत्रं वैश्यवर्णञ्च = ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य को, शूद्रः = शूद्र, एतान् क्रमेण = इनको क्रमशः, न्यायतः पूज्यमानः = न्यायपूर्वक सत्कार करते हुए, एतेषु तुष्टेषु = इनके प्रसन्न होने पर, अव्यथः = दुःखी नहीं होता हुआ, दग्धतापः = नष्टपाप होकर, देहं त्यक्त्वा = देह छोड़कर, स्वर्गसुखानि = स्वर्ग के सुखों को, भुङ्क्ते = भोग करता है।

हिन्दी—शूद्र, ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य की क्रमशः न्याय से सेवा करता हुआ इनकी प्रसन्नता से स्वयं दुःख रहित होकर स्वर्ग के सुखों को भोगता है।

विशेष—भारतीय संस्कृति में वर्णव्यवस्था बहुत युक्तिसंगत है। इसमें कोई कर्म बड़ा-छोटा नहीं, अपितु 'स्वस्वकर्मण्यभिरतः श्रेयः परमवाप्स्यथ'। अर्थात् अपने-अपने कर्म में अभिरत मनुष्य परम श्रेय प्राप्त करता है। धन-संग्रह वैश्य का कार्य माना गया है, लेकिन वह धन स्व के लिए नहीं अपितु तीनों वर्णों का रक्षण और राष्ट्ररक्षण के लिए होता है। यहाँ राष्ट्रीयकरण नहीं अपितु समाजीकरण होता है। वर्ण, समाज और राष्ट्र एक-दूसरे के पूरक हैं, बाधक नहीं।

चातुर्वर्ण्यस्यैष धर्मस्तवोक्तो हेतुं चानुब्रुवतो मे निबोध।
क्षात्राद् धर्माद्धीयते पाण्डुपुत्रस्तं त्वं राजन् राजधर्मं नियुङ्क्ष्व ॥ २९ ॥

शब्दार्थ—राजन् = हे राजन्! चातुर्वर्ण्यस्य = चारों वर्णों का, एष धर्मः = यह धर्म, तव उक्तः = तुम्हें बताया है, हेतुं च = और कारण को, मे अनुब्रुवतः = मेरे बताने का, निबोध = जानो, क्षात्रात् धर्मात् = क्षत्रिय धर्म से, पाण्डुपुत्रः = पाण्डव युधिष्ठिर, हीयते = हीन हो रहा है, तं त्वम् = उनको तुम, राजधर्मे = राजधर्म में, नियुङ्क्ष्व = नियुक्त करो।

हिन्दी—हे राजन्! मैंने जिस कारण तुम्हें चारों वर्णों के धर्मों का वर्णन किया है उसका कारण तुम मुझसे सुनो। पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर क्षत्रिय धर्म से हीन हो रहा है, उसे तुम प्रजापालन रूप क्षत्रिय धर्म में लगा दो तथा उसका राज्य दे दो।

धृतराष्ट्र उवाच—

एवमेतद् यथा त्वं मामनुशासति नित्यदा।
ममापि च मतिः सौम्यः भवत्येवं यथात्थ माम् ॥ ३० ॥

शब्दार्थ—धृतराष्ट्र ने कहा—सौम्य = हे विदुर! एतत् एवम् = यह ऐसा ही है, यथा त्वम् माम् = जैसे तुम मुझे, अनुशासति = कहते हो, नित्यदा = सर्वदा, मयापि च मतिः = मेरी भी बुद्धि, एवं भवति = इसी प्रकार होती है, यथा माम् आत्थ = जैसे तुम कहते हो।

हिन्दी—हे सौम्य विदुर! जैसे तुम मुझसे नित्य कहते हो, उसी प्रकार मेरी भी बुद्धि वैसी ही होती है। अर्थात् मैं भी पाण्डवों को राज्य देना चाहता हूँ।

सा तु बुद्धिः कृताप्येवं पाण्डवान् प्रति मे सदा।
दुर्योधनं समासाद्य पुनर्विपरिवर्तते ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ—सा तु बुद्धिः=वह तो बुद्धि, सर्वदा=हमेशा, पाण्डवान् प्रति=पाण्डवों के प्रति, एवं कृतापि=इस प्रकार की हुई, मे सदा=मेरी हर समय, दुर्योधनं समासाद्य=दुर्योधन को प्राप्त करके, पुनः विपरिवर्तते=पुनः बदल जाती है।

हिन्दी—हे विदुर ! पाण्डवों के प्रति मेरी भी बुद्धि सदा ऐसी ही होती है कि उसका राज्य लौटा दूँ। परन्तु दुर्योधन को प्राप्त कर मेरी मति पुनः बदल जाती है।

न दिष्टमभ्यतिक्रान्तुं शक्यं भूतेन केनचित्।
दिष्टमेव ध्रुवं मन्ये पौरुषं तु निरर्थकम् ॥ ३२ ॥

इति महाभारते उद्योगपर्वणि प्रजागरपर्वणि विदुरनीतिवाक्ये चत्वारिंशोऽध्यायः।

इति विदुरनीतौ अष्टमोऽध्यायः।

शब्दार्थ—दिष्टमभ्यतिक्रान्तुम्=भाग्य को अतिक्रमण करने के लिए, केनचित् भूतेन=किसी प्राणी से, न शक्यम्=सम्भव नहीं है, दिष्टमेव=भाग्य को ही, ध्रुवं मन्ये=अचल मानता हूँ, पौरुषं तु निरर्थकम्=पुरुषार्थ तो निरर्थक है।

हिन्दी—भाग्य को बदलने में कोई प्राणी समर्थ नहीं है। मैं भाग्य को ही बलवान् मानता हूँ, पुरुषार्थ तो निरर्थक है।

विशेष—धृतराष्ट्र का यह कथन उचित नहीं है। कर्म और भाग्य में अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। क्योंकि पूर्वजन्म कृत कर्म इस जन्म में भाग्य के रूप में सामने आता है, अतः भाग्य पूर्वकृत कर्म ही है। परन्तु भाग्य के भरोसे जीने वाला सम्प्रति कर्म-विमुख क्या इस संसार में सब कुछ पा लेगा? कदापि नहीं। अतः उद्योगी पुरुष यथाशक्ति कर्म का निर्वाह कर उसके बाद भाग्याश्रित होते हैं। यही कर्म-सिद्धान्त है। क्योंकि यथाशक्ति कर्म करने के बाद भी कभी फल नहीं मिलता है, उसे भाग्याधीन माना जा सकता है। परन्तु वहाँ भी कार्य-कारणभाव सिद्धान्त सामने आता है अर्थात् कारण के बिना कार्य नहीं होता, कारण रहते पर कार्य अवश्य होता है। अतः पूर्व में किये गये कारणों में ही कहीं दोष मानकर फलप्राप्ति बाधक है—ऐसा मानना चाहिए।

यहाँ पर हताश भाग्यवादी धृतराष्ट्र पुत्रमोह में लिप्त है तथा राजा के कर्तव्य से विमुख हो रहा है, जिसका परिणाम सामने है। उसी के पुत्रमोह के कारण इस भव्य भारतवर्ष का सर्वस्व स्वाहा हो गया। उन्होंने अपने सामने ही सब पुत्रों की विनाश-लीला सुनी। इतिहास साक्षी है कि जब कोई गलती करता है तो उसे भोगना पड़ता है। भारतवासी ने धृतराष्ट्र के पुत्रमोह और दुर्योधन की हठवादिता के कारण अपना अस्तित्व गँवा दिया। यदि यही भाग्य है तो शास्त्रकारों को कभी स्वीकार्य नहीं है। शास्त्र मङ्गलमय भविष्य की शुभकामना करता है।

इस प्रकार डॉ० गुञ्जेश्वर चौधरी कृत विदुरनीति की शब्दार्थ-अर्थ-विशेष संवलित मनोरमा टीका सम्पन्न हुई।

इस प्रकार विदुरनीति के अष्टम अध्याय की हिन्दी समाप्त।

श्लोकानुक्रमणिका

श्लोकार्ध	अ०	श्लो०
अ		
अकर्मशीलं च महाशनं	५	३५
अकस्मादेव कुप्यन्ति	४	४१
अकामान् कामयति यः	१	३७
अकार्यकरणाद् भीतः	२	४३
अकीर्तिं विनयो हन्ति	७	४२
अक्रोधेन जयेत् क्रोधम्	७	७२
अगारदाही गरदः	३	४७
अग्निस्तेजो महल्लोके	५	६०
अग्निहोत्रफला वेदाः	७	६५
अग्नौ प्रास्तं तु पुरुषम्	८	१८
अजाश्च कांस्यं रजतं	८	९
अजोक्षा चन्दनं वीणा	८	१०
अतिक्लेशेन येऽर्थाः स्युः	७	७५
अतिमानोऽतिवादश्च	५	१०
अतिवादं न प्रवदेत्	४	११
अतीतायां शर्वयाम्	३	१२
अतीवगुणसम्पन्नो	७	१०
अतीव सर्वान् पुत्रांस्ते	२	८५
अतृणे पतितो वह्निः	१	५६
अत्यार्यमतिदातारम्	७	६३
अत्राप्युदाहरन्तीमम्	३	५
अत्रैवोदाहरन्तीमम्	१	१०८
,, ,,	४	१
अथ ये सहिताः वृक्षाः	४	६३
अथ यो नैव प्रब्रूयात्	३	३१
अथ सन्त्यजतो धर्मम्	२	२९
अदम्भ्योऽग्निर्ब्रह्मतः क्षत्रम्	६	१३
अधीत्य वेदान् परिसंस्तीर्य	८	२६
अध्वा जरा देहवतां	७	७७
अनधीत्य यथा वेदान्	६	२३

श्लोकार्ध	अ०	श्लो०
अनर्थकं विप्रवासं गृहेभ्यः	१	११३
अनर्थमर्थतः पश्यन्	२	६१
अनवाप्यं च शोकेन	४	४५
अनसूयाऽऽर्जवं शौचं	२	७२
अनसूयुः कृतप्रज्ञः	३	६६
अनाम्नायमला वेदा	७	७८
अनारम्भा भवत्यर्थाः	२	२०
अनार्यवृत्तमप्राज्ञम्	६	३४
अनाश्रिता दानपुण्यं	४	५३
अनाहूतः प्रविशति	१	४१
अनिज्यया कुविवाहैः	४	२५
अनिर्वेदः श्रियो मूलं	७	५७
अनीर्षुर्गुप्तदारश्च	६	१०
अनुक्रोशादानृशंस्यात्	२	८६
अनुबन्धं च सम्प्रेक्ष्य	२	९
अनुबन्धान् अपेक्षेत	२	८
अनृते च समुत्कर्षो	८	३
अन्यो धनं प्रेतगतस्य	८	१६
अन्योऽन्यसमुपष्टम्भात्	४	६५
अन्वालभे हिरण्मयं	३	१५
अपकृत्य बुद्धिमतो	६	८
अपनीतं सुनीतेन	७	५३
अप्युन्मत्तात् प्रलपतो	२	३२
अप्रशस्तानि कार्याणि	६	२१
अप्राप्तकालं वचनं	७	२
अभिप्रायं यो विदित्वा	५	२५
अभियुक्तं बलवता	१	१३
अभिवादनशीलस्य	७	७४
अभ्यावहति कल्याणं	२	७७
अमात्यलाभो भद्रं ते	५	५३
अमात्ये ह्यर्थलिप्सा च	६	१९

श्लोकार्धं	अ०	श्लो०
अमित्रं कुरुते मित्रं	१	३८
अमोघक्रोधहर्षस्य	६	२५
अरक्षितारं राजानं	१	८५
अरुन्तुदं परुषं रूक्षवाचं	४	८
अरोषणो यः समलोष्टा	६	६
अर्चयेदेव मित्राणि	४	४३
अर्थं महान्तमासाद्य	१	४५
अर्थसिद्धिं परामिच्छन्	५	४८
अर्थागमो नित्यमरोगिता च	१	८७
अवध्या ब्राह्मणा गावो	४	६६
अवलिप्तेषु मूर्खेषु	७	५१
अविक्रयं लवणं पक्वम्	६	५
अविद्यः पुरुषः शोच्यः	७	७६
अविसंवादको दक्षः	६	३६
अविसंवादनं दानं	६,	३५
अवृत्तिर्भयमन्त्यानां	२	५२
अव्याधिजं कटुकं शीर्षं	४	६८
अशिष्यं शास्ति यो राजन्	१	४४
अश्रुतश्च समुन्नद्धो	१	३५
अष्टौ गुणाः पुरुषं दीपयन्ति	१	१०४
,, ,,	३	५३
,, ,,	५	३१
अष्टौ नृपेमानि मनुष्यलोके	३	५५
अष्टौ पूर्वनिमित्तानि	१	९८
असंविभागी दुष्टात्मा	६	३८
असन्तोऽभ्यर्थिताः सद्भि	२	४५
असन्त्यागात् पापकृताम्	२	७०
असम्यगुपयुक्तं हि	७	३३
असूयको दन्दशूको	३	६५
असूयैकपदं मृत्युः	८	४
अस्माल्लोकादूर्ध्वममुष्य	८	१९
आ		
आक्रुश्यमानो नाक्रोशेत्	४	५
आक्रोशपरिवादाभ्यां	२	७४
आढ्यानां मांसपरमं	२	४९

श्लोकार्धं	अ०	श्लो०
आत्मज्ञानमनायासः	२	७३
आत्मज्ञानं समारम्भः	१	२०
आत्मनाऽऽत्मानमन्विच्छेत्	२	६४
आत्मनो बलमज्ञाय	१	४३
आत्मा नदी भारत पुण्यतीर्था	८	२१
आत्मानमेव प्रथमं	२	५७
आदेशकृद् वृत्तिहन्ता	५	१३
आनृशंस्यादनुक्रोशात्	१	१८
आपदर्थे धनं रक्षेत्	५	१८
आयत्यां प्रतिकारज्ञः	७	५४
आरोग्यमानृण्यमविप्रवासः	१	९४
आर्जवं प्रतिपद्यस्व	३	३
आर्जवेन नरं युक्तम्	७	६२
आर्यकर्मणि रज्यन्ते	१	३०
आलस्यं मदमोहौ च	८	५
आवां कुत्र गमिष्यावः	३	२१
आशा धृतिं हन्ति समृद्धि	८	८
इ		
इज्याध्ययनदानानि	३	५७
इदं च त्वां सर्वपरं	८	१२
इदं वचः शक्यसि चेद्	८	२०
इन्द्रियाणामनुत्सर्गो	७	५१
इन्द्रियैरिन्द्रियार्थेषु	२	५४
इमौ तौ सम्प्रदृश्येते	३	२४
इहैवावां प्रतीक्षाव	३	१०
ई		
ईर्ष्यी घृणी नसन्तुष्टः	१	९५
उ		
उक्तं मया जातमात्रेऽपि	७	५
उक्तं मया द्यूतकालेऽपि	५	२०
उत्तमानेव सेवेत	४	२०
उत्थानं संयमो दाक्ष्यम्	७	६८
उत्पाद्य पुत्राननृणांश्च	५	३९
उत्सृज्य विनिवर्तन्ते	८	१७

श्लोकार्ध	अ०	श्लो०
उदकं मधुपर्कं वा	३	२७
उदकं मधुपर्कं च	३	२८
उपस्थितस्य कामस्य	७	४४
ऊ		
ऊर्ध्वं प्राणा ह्युत्क्रामन्ति	६	१
ऋ		
ऋजुः पश्यति यः सर्वं	२	२३
ऋषीणां च नदीणां च	३	७३
ए		
एकं विषरसो हन्ति	१	५०
एकं हन्यान्न वा हन्यात्	१	४८
एकः क्षमावतां दोषो	१	५३
एकः पापानि कुरुते	१	४७
एकः स्वादु न भुञ्जीत	१	५१
एको धर्मः परं श्रेयः	१	५७
एकमेवाद्वितीयं तद्	१	५२
एकया द्वे विनिश्चित्य	१	४९
एत एवासयस्तीक्ष्णाः	५	११
एतत् कार्यममराः संश्रुतं	४	४
एतयोपमया धीरः	२	३७
एतान् गुणांस्तात महानु	३	५४
,, ,,	५	३२
एतान्यनिगृहीतानि	२	६०
एवं कृतपणो क्रुद्धो	३	२३
एवं मनुष्यमप्येकं	४	६४
एवं लोके यशः प्राप्तं	७	२१
एवमुक्तस्तु विदुरः	१	३
एवमेतद् यथा त्वं माम्	८	३०
एवमेव कुले जाता	५	६२
एषः प्रह्लाद पुत्रस्ते	३	३९
ऐ		
ऐश्वर्यमदपापिष्ठा	२	५३
क		
कच्चिदेतैर्महादोषैर्न	१	१४
कदर्यमाक्रोशकमश्रुतं च	५	३६
करिष्यन्न प्रभाषेत	६	१६
कर्णिनालीकनाराचान्	२	७९
कर्मणा तु प्रशस्तानाम्	६	२२
कर्मणा मनसा वाचा	७	५५
कांश्चिदर्थान् नरः प्राज्ञो	२	२२
काकैरिमांश्चित्रबर्हान्	४	२१
कान्तारे वनदुर्गेषु	७	६७
कामक्रोधग्राहवतीं	८	२२
किं वै सहैवं चरथो	३	२५
किन्नु मे स्यादिदं कृत्वा	२	१९
कृतज्ञं धार्मिकं सत्यम्	७	५०
कृत्यानि पूर्वं परिसंख्याय	५	२४
क्रोधो हर्षश्च दर्पश्च	१	२२
क्षमेदशक्तः सर्वस्य	७	५९
क्षिप्रं विजानाति चिरं	१	२७
क्षुद्राक्षेणेव जालेन	२	६६
ग		
गतिरात्मवतां सन्तः	२	४६
गन्धेन गावः पश्यन्ति	२	३४
गां प्रदद्यास्त्वौरसाय	३	३०
गिरिपृष्ठमुपारुह्य	६	१७
गुणा दश स्नानशीलं	५	३३
गुणाश्च षण्मितभुक्तं	५	३४
गुरुरात्मवतां शास्ता	३	७२
गृहीतवाक्यो नयविद्	५	१४
गोभिः पशुभिरश्वैश्च	४	३१
घ		
घृणी राजा पुंश्चली राज	५	३०
च		
चक्षुषा मनसा वाचा	२	२५
चत्वारि कर्माण्यभयङ्कराणि	१	७८
चत्वारि ते तात गृहे वसन्तु	१	७५

श्लोकार्धं	अ०	श्लो०
चत्वारि राज्ञा तु महाबलेन	१	७४
चत्वार्याह महाराज	१	७६
चरन्तं हंसरूपेण	४	२
चलचित्तमनात्मानम्	४	४०
चलचित्तस्य वै पुंसो	४	३९
चलानि हीमानि षडिन्द्रियाणि	४	४८
चातुर्वर्ण्यस्यैष धर्मस्तवोक्तो	८	२९
चिकित्सकः शल्यकर्त्ता	६	४
चिकीर्षितं विप्रकृतं च	१	१२४
ज		
जरा रूपं हरति हि	३	५१
,, ,,	५	८
जाग्रतो दह्यमानस्य	२	१
जाग्रतो दह्यमानस्य	१	११
जानाति मात्रां च तथा	१	११०
जानाति विश्वासयितुं	१	११०
जिता सभा वस्त्रवता	२	४७
जीर्णमन्नं प्रशंसन्ति	३	७०
ज्ञातयस्तारयन्तीह	७	२४
ज्ञातयो वर्धनीयास्तैः	७	१८
त		
तं द्रक्ष्यसि परिभ्रष्टं	६	४६
ततः प्रविश्य विदुरो	१	७
तत्त्वज्ञः सर्वभूतानां	१	३२
तत्र पूर्वचतुर्वर्गो	३	५८
तथा भद्रे करिष्यामि	३	११
तथैव योगविहितं	२	७
तन्तवो प्यायिता नित्यं	४	५९
तपो दमो ब्रह्मवित्तं वितानाः	४	२३
तपो बलं तापसानां	७	६९
तव पुत्रशतं चैव	५	४४
तवार्हते तु फलकं	३	१६
तस्मात् पापं न कुर्वीत	३	६२

श्लोकार्धं	अ०	श्लो०
तस्माद्राजेन्द्र ! भूम्यर्थे	३	४०
तस्माद् वक्ष्यामि ते राजन्	२	५
तस्याद्य कुरुवीरस्य	१	१०
तांस्त्वं पदे प्रतिष्ठाप्य	७	३१
तादृशैः सङ्गतं नीचैः	७	१६
तृणानि भूमिरुदकं	४	३४
तृणोल्कया ज्ञायते जातरूपं	३	५०
त्यजेत् कुलार्थे पुरुषं	५	१७
त्रय एवाधना राजन्	१	६९
त्रयोपाया मनुष्याणां	१	६७
त्रिविधं नरकस्येदं	१	७१
त्रिविधाः पुरुषा राजन्	१	६८
त्वं मां यथावद् विदुर	२	२
त्वरमाणश्च लुब्धश्च	१	१०७
द		
दम्भं मोहं मात्सर्यं	१	१२०
दानं होमं दैवतं मङ्गलानि	१	१२१
दिवसेनैव तत् कुर्याद्	३	६८
दुःखार्तेषु प्रमत्तेषु	७	६१
दुःशासनस्तूपहतोऽभिशस्तो	४	१८
दुर्बुद्धिमकृतप्रज्ञं	७	४८
दुर्योधने सौबले च	१	१९
दुर्योधनेन यद्येतत्	७	३०
दुष्कुलीनः कुलीनो वा	७	४६
दृश्यन्ते हि महात्मानो	२	६९
देवतानां च सङ्कल्पम्	१	७७
देवद्रव्यविनाशेन	४	२६
देशाचारान् समयाञ्जाति	१	११९
दैवतेषु प्रयत्नेन	६	२९
द्यूतमेतत् पुराकल्पे	५	१९
द्वाःस्थं प्राह महाप्राज्ञो	१	१
द्वाराण्येतानि यो ज्ञात्वा	७	३८
द्वाविमौ न विराजेते	१	६२
द्वाविमौ पुरुषौ राजन्	१	६३

श्लोकार्धं	अ०	श्लो०
द्वाविमौ पुरुषव्याघ्र	१	६६
द्वाविमौ पुरुषव्याघ्र	१	६०
द्वे कर्मणी नरः कुर्वन्	१	५९
द्वेष्यो न साधुर्भवति	७	४
ध		
धनेनाधर्मलब्धेन	३	७१
धर्ममाचरतो राज्ञः	२	२८
धर्मेण राज्यं विन्देत	२	३१
धार्तराष्ट्राः पाण्डवान्	४	७२
धूमायन्ते व्यपेतानि	४	६०
धृतिः शमो दमः शौचं	६	३७
धृत्या शिश्नोदरं रक्षेत्	८	२४
न		
न कश्चिन्नापनयते	७	२९
न कुलं वृत्तहीनस्य	२	४१
नगरे प्रतिरुद्धः सन्	३	३३
न च रात्रौ सुखं शेते	६	३९
न चातिगुणवत्स्वेषा	७	६४
न जीयते चानुजिगीषते	४	१५
न तत् परस्य सन्दध्यात्	७	७१
न तथेच्छन्ति कल्याणान्	५	४७
न दिष्टमभ्यतिक्रान्तुं	८	३२
न तद् बलं यन्मृदुना	४	७१
न तन्मित्रं यस्य कोपाद्	४	३७
न देवा दण्डमादाय	३	४१
न निह्नवं मन्त्रगतस्य	५	२९
न बुद्धिर्धनलाभाय	६	३२
न भृत्यानां वृत्तिसंरोधनेन	५	२३
न मनुष्ये गुणः कश्चिद्	४	६७
न मे सुधन्वना सख्यम्	३	२६
न योऽभ्यसूयत्यनुकम्पते च	१	११५
न राज्यं प्राप्तमित्येव	२	१२
नवद्वारमिदं वेश्म	१	१०५
न विश्वसेदविश्वस्ते	६	९

श्लोकार्धं	अ०	श्लो०
न विश्वासाज्जातु परस्य	५	२८
न वृद्धिर्बहु मन्तव्या	७	६
न वै भिन्ना जातु चरन्ति	४	५६
न वैरमुद्दीपयति प्रशान्तं	१	११७
न वै श्रुतमविज्ञाय	७	३९
न शत्रुर्वशमापन्नो	६	२८
न श्रद्दधाति कल्याणं	४	१९
नष्टं समुद्रे पतितं	७	४०
न सा सभा यत्र न सन्ति	३	५९
न स्याद् वनमृते व्याघ्रान्	५	४६
न स्वप्नेन जयेन्निद्रां	७	८०
न स्वे सुखे वै कुरुते	१	११८
न हृष्यत्यात्मसम्माने	१	३१
नाक्रोशी स्यान्नावमानी	४	६
नाग्निस्तृप्यति काष्ठानां	८	७
नातः श्रीमत्तरं किञ्चित्	७	५८
नानर्थकं सान्त्वयति	४	१७
नान्यत्र विद्यातपसोः	४	५१
नासुहृत् परमं मन्त्रं	६	१८
निजानुत्पतः शत्रून्	२	७१
नित्यं सन्तः कुले जाताः	६	१४
नित्योदकी नित्ययज्ञोपवीती	८	२५
नित्योद्विग्नमिदं सर्वं	४	५०
निरर्थं कलहं प्राज्ञो	६	३०
निश्चित्य यः प्रक्रमते	१	२९
निषेवते प्रशस्तानि	१	२१
नीवारमूलेङ्गुदशाकवृत्तिः	६	७
नैनं छन्दांसि वृजनात्	३	४३
नैनान् स्मरति कृत्येषु	१	१००
न्यायागतस्य द्रव्यस्य	१	६४
प		
पञ्च त्वानुगमिष्यन्ति	१	८१
पञ्च पश्वनृते हन्ति	३	३४
पञ्चाग्नयो मनुष्येण	१	७९

श्लोकार्ध	अ०	श्लो०
पञ्चेन्द्रियस्य मर्त्यस्य	१	८२
पञ्चैव पूजयंल्लोके	१	८०
परं क्षिपति दोषेण	१	४२
परश्चेदेनमभिविध्येत	४	९
परापवादनिरताः	७	११
परिच्छदेन क्षेत्रेण	७	४३
पर्जन्यनाथाः पशवो	२	३७
पश्चादपि नरश्रेष्ठ	७	२७
पश्य दोषान् पाण्डवैः	५	४२
पापं कुर्वन् पापकीर्तिः	३	६१
पापाशङ्की पापमेवानु	२	३
पापोदयफलं विद्वान्	७	३४
पितरं ते गमिष्यावः	३	२२
पितापुत्रौ सहासीतां	३	१७
पिता हि ते समासीनम्	३	१८
पितुरन्तःपुरं दद्यात्	६	१२
पीठं दत्त्वा साधवेऽभ्या	६	२
पुत्र एको मम ब्रह्मन्	३	२९
पुनर्नरो म्रियते जायते च	४	४६
पुरा ह्युक्तं नाकरोस्त्वं	४	७०
पुष्पं पुष्पं विचिन्वीत	२	१८
पूजनीया महाभागाः	६	११
पूर्वे वयसि तत् कुर्यात्	३	६९
प्रज्ञामेवागमयति यः	३	६७
प्रज्ञाशरेणाभिहस्तस्य	५	५८
प्रदायैतेषामुचितं तात	१	१२८
प्रमदाः कामयानेषु	१	९०
प्रयोजनेषु ये सक्ता	६	४३
प्रविशान्तःपुरं क्षत्तर्	१	६
प्रवृत्तवाक् चित्रकथ	१	३३
प्रवेशय महाप्राज्ञं	१	५
प्रसादं कुरु वीराणां	७	२०
प्रसादो निष्फलो यस्य	२	२१
,, ,,	६	३१

श्लोकार्ध	अ०	श्लो०
प्रहितो धृतराष्ट्रेण	१	२
प्राज्ञोपसेविनं वैद्यं	७	४५
प्राप्नोति वै वित्तमसद्बलेन	४	२१
प्राप्यापदं न व्यथते	१	११२
प्रायेण श्रीमतां लोके	२	५१
प्रियो भवति दानेन	७	३
ब		
बन्धुरात्माऽऽत्मनस्तस्य	२	६५
बलं पञ्चविधं नित्यं	५	५२
ब्रह्म क्षत्रं वैश्यवर्णं च	८	२८
ब्राह्मणं ब्राह्मणो वेद	६	२७
बुद्धिश्रेष्ठानि कर्माणि	३	७६
बुद्ध्या भयं प्रणुदति	४	५२
ब्राह्मणस्वानि चादत्ते	१	९९
ब्राह्मणानां परिभवात्	४	२७
ब्राह्मणेषु च ये शूराः	४	६१
ब्रूहि भूयो महाबुद्धे	३	१
भ		
भक्तं च भजमानं च	१	७३
भक्ष्योत्तमप्रतिच्छन्नं	२	१३
भावमिच्छति सर्वस्य	४	१६
भीष्मस्य कोपस्तव चैवेन्द्र	५	४३
भूयांसं क्लेशं लभते	२	३५
भ्रूणहा गुरुतल्पी च	३	४८
म		
मङ्गलालम्भनं योगः	७	५६
मत्या परीक्ष्य मेधावी	७	४१
मत्तः श्रेयान् अङ्गिरा वै	३	३६
मदं स्वप्नमविज्ञानम्	७	३७
मद्यपानं कलहं पूगवैरं	३	४४
मन्त्रभेदस्य षट् प्राज्ञो	७	३६
मया चापि हितं वाच्यं	७	२२
मर्माण्यस्थीनि हृदयं	४	७
महते योऽपकाराय	५	५६

श्लोकार्ध	अ०	श्लो०
महाकुलेभ्यः स्पृहयन्ति	४	२२
महानप्येकजो वृक्षो	४	६२
महान्तमप्यर्थमधर्मयुक्तं	८	२
महाबलान् पश्य महानु	८	१४
मा नः कुले वैरकृत् कश्चित्	४	३२
मानाग्निहोत्रमुत मानमौनं	३	४६
मार्दवं सर्वभूतानाम्	७	५२
मितं भुङ्क्ते संविभज्या	१	१२३
मिथ्योपेतानि कर्माणि	२	६
मृतं पुत्रं दुःखपुष्टं	८	१५
मेढीभूतः कौरवाणां	४	७३
य		
यं प्रशंसन्ति कितवा	६	४४
यः कश्चिदप्यसम्बद्धो	४	३८
यः काममन्यू प्रजहाति	१	१०९
यः पञ्चाभ्यन्तरान् शत्रून्	२	६८
यः प्रमाणं न जानाति	२	१०
यः सर्वभूतप्रशमे निविष्टः	१	१२५
य आत्मनाऽपत्रपते भृशं नरः	१	१२६
य एव यत्नः क्रियते	२	३०
यच्छक्यं ग्रसितुं ग्रस्यं	२	१४
यज्ञो दानमध्ययनं तपश्च	३	५६
यतः प्राप्तः सञ्जयः	१	१२
यतते चापवादाय	७	१५
यतो यतो निवर्तते	४	१४
यत्त्वस्य सहजं राजन्	५	५४
यत् पृथिव्यां व्रीहियवं	७	८३
यत्र स्त्री यत्र कितवो	६	४२
यत् सुखं सेवमानोऽपि	७	६०
यथा मधु समादत्ते	२	१७
यथा यथा हि पुरुषः	३	४२
यथाशक्ति चिकीर्षन्ति	१	२६
यदतप्तं प्रणमति	२	३६
यदि सन्तं सेवति यद्य	४	१०
यद्धर्ममवृणीथास्त्वं	३	३८
ययोश्चित्तेन वा चित्तं	७	४७
यश्च नो ब्राह्मणान् हन्याद्	४	३३
यश्चापि लब्ध्वा न स्मरामी	५	६
यश्चाभिजातः प्रकरो	५	४
यश्चाशिष्यं शास्ति वै यश्च	५	३
यस्तात न क्रुध्यति सर्व	४	२२
यस्तु पक्वमुपादत्ते	२	१६
यस्तु पूर्वकृतं पापम्	७	३५
यस्त्वेतानि प्रमाणानि	२	११
यस्मात् त्रस्यन्ति भूतानि	२	२६
यस्मिन् यथा वर्त्तते यो	५	७
यस्य कृत्यं न जानन्ति	१	२३
यस्य कृत्यं न विघ्नन्ति	१	२४
यस्य दानजितं मित्रं	७	८१
यस्य मन्त्रं न जानन्ति	६	१५
यस्य संसारिणी प्रज्ञा	१	२५
यस्यात्मा विरतः पापाद्	५	४९
यस्योदकं मधुपर्कं च	६	३
यां रात्रिमधिविन्ना स्त्री	३	३२
यादृशैः सन्निविशते	४	१३
यावत् कीर्तिर्मनुष्यस्य	३	४
येन त्वेतानि सर्वाणि	५	५५
ये पापा इति विख्याता	७	१३
येऽर्थाः स्त्रीषु समायुक्ताः	६	४१
येषां हि वृत्तं व्यथते	४	२४
येषु दुष्टेषु दोषः स्याद्	६	४०
यो जितः पञ्चवर्गेण	२	५५
यो ज्ञातिमनुगृह्णाति	७	१७
यो धर्ममर्थं कामं च	५	५०
यो नोद्धतं कुरुते जातु	५	११६
योऽभ्यर्चितः सद्भिरसज्ज	८	१
र		
रथः शरीरं पुरुषस्य राजन्	२	५९

श्लोकार्ध	अ०	श्लो०
राजन् भूयो ब्रवीमि त्वां	७	८४
राजा लक्षणसम्पन्नस्	१	१६
,, ,,	२	८४
रोगार्दिता न फलान्याद्रियन्ते	४	६९
रोहते सायकैर्विद्धं	२	७८
ल		
लताधर्मा त्वं सुपुत्रः	५	६३
व		
वध्वावहासं श्वसुरो	५	५
वनं राजंस्तव पुत्रो	५	६४
वनस्पतेरपक्वानि	२	१५
वने जाताः शापदग्धस्य	१	१२७
वरप्रदानं राज्यं च	१	७२
वश्येन्द्रियं जिताऽऽत्मानम्	२	५८
वाक्संयमो हि नृपते	२	७६
वाक्सायका वदनान्निष्प	२	७०
विदुरोऽहं महाप्राज्ञ	१	८
विदुरोऽयमनुप्राप्तो	१	४
विद्याशीलवयोवृद्धान्	६	३३
विपरीततरश्च त्वं	१	१७
विरोचन सुधन्वाऽयं	३	३७
विरोचनोऽथ दैतेयस्तदा	३	७
विरोचनो यत्र विभो	३	१३
वृत्तं यत्नेन संरक्षेत्	४	३०
वृत्ततस्त्वविहीनानि	४	२९
वृद्धप्रज्ञः पुण्यमेव	३	६४
वृद्धिः प्रभावस्तेजश्च	५	४१
वैश्योऽधीत्य ब्राह्मणान्	८	२७
श		
शतायुरुक्तः पुरुषः	५	९
शीलं प्रधानं पुरुषे	२	४८
शुभं वा यदि वा पापं	२	४
श्रद्धया परया राजन्	४	३५

श्लोकार्ध	अ०	श्लो०
श्राद्धं पितृभ्यो न ददाति	१	४०
श्रीमन्तं ज्ञातिमासाद्य	७	२६
श्रीर्मङ्गलात् प्रभवति	३	५२
श्रुतं प्रज्ञानुगं यस्य	१	३४
श्रोतुमिच्छामि ते धर्म्यं	१	१५
ष		
षडिमानि विनश्यन्ति	१	९१
षडिमान् पूरुषो जह्यात्	१	८४
षडिमे षट्सु जीवन्ति	१	८९
षडेते ह्यवमन्यन्ते	१	९२
षडेव तु गुणाः पुंसा	१	८६
षड् दोषाः पुरुषेणेह	१	८३
षण्णामात्मनि नित्यानाम्	१	८८
स		
संसारयति कृत्यानि	१	३९
सङ्क्लिष्टकर्माणमति	५	३७
सञ्जयो विदुर प्राप्तो	१	९
सत्कृताश्च कृतार्थाश्च	४	४२
सत्यं रूपं श्रुतं विद्या	३	६०
सत्येन रक्ष्यते धर्मो	२	३९
सदोषं दर्शनं येषां	७	१२
सन्तापाद् भ्रश्यते रूपं	४	४४
सन्धत्स्व त्वं कौरव पाण्डु	४	७४
सन्नियच्छति यो वेगम्	५	५१
सप्तदशेमान् राजेन्द्र	५	१
सप्त दोषाः सदा राज्ञा	१	९६
समये च प्रियालापः	१	१०३
समवेक्ष्येह धर्मार्थौ	२	६७
समागमश्च सखिभिः	१	१०२
समैर्विवाहं कुरुते न हीनैः	१	१२२
सम्पन्नं गोषु सम्भाव्यं	४	५८
सम्पन्नतरमेवान्नं	२	५०
सर्पाश्चाग्निश्च सिंहश्च	५	५९
सर्वं त्वमायतोयुक्तम्	७	९

श्लोकार्ध	अ०	श्लो०
सर्वतीर्थेषु वा स्नानं	३	२
सर्वैर्गुणैरुपेतास्तु	३	७८
सहायबन्धना ह्यर्थाः	५	३८
सा तु बुद्धिः कृताप्येवम्	८	३१
साध्या देवा वयमेते महर्षे	४	३
सामुद्रिकं वणिजं चोरपूर्वं	३	४५
सुखं च दुःखं च भवाभवौ च	४	४७
सुखार्थिनः कुतो विद्या	८	६
सुदुर्बलं नावजानाति कच्चिद्	१	१११
सुपुष्पितः स्यादफलः	२	२४
सुलभाः पुरुषा राजन्	५	१५
सुवर्णपुष्पां पृथिवीं	३	७५
सुवर्णस्य मलं रूप्यं	७	७९
सुव्याहृतानि सूक्तानि	२	३३
सूक्ष्मोऽपि भारं नृपते स्यन्दनो	४	३६
सेयं बुद्धिः परीता	२	८३
सोऽस्य दोषो न मन्तव्यः	१	५४
स्त्रीधूर्तकेऽलसे भीरौ	७	७३
स्त्रीषु राजसु सर्पेषु	५	५७
स्थानवृद्धिक्षययज्ञस्य	६	२४
स्रुवप्रग्रहणो व्रात्यः	३	४९
स्वधीतस्य सुयुद्धस्य	४	५४
स्वमर्थं यः परित्यज्य	१	३६
स्वास्तीर्णानि शयनानि	४	५५
ह		
हन्ति जातानजातांश्च	३	३५
हरणं च परस्वानां	१	७०
हिंसाबलमसाधूनां	२	७५
हितं यत् सर्वभूतानाम्	५	४०
हित्वा तान् परमेष्वासान्	६	४५
हिरण्यं च गवाश्वं च	३	१९
,, ,,	३	२०

R
Acc. 3006C / 30078